सिद्ध श्रीस्वतन्त्रानन्दनाथ - विरचित

श्रीमातृकाचक्र-विवेकः



श्री शिवानन्दकृत संस्कृत भाष्य

एवम्

वेदान्तशास्त्री पण्डित कृष्णानन्द बुधौलिया

M.A. (Sansk.), M.A. (Phil,) L.L.B., Advocate, भाँडेर

कृत हिन्दी भावानुवाद सहित



श्री पीताम्बरापीठ-संस्कृत-परिषद

दतिया (म.प्र.)

सिद्ध श्रीस्वतन्त्रानन्दनाथ - विरचित

श्रीमातृकाचक्र-विवेकः



श्री शिवानन्दकृत संस्कृत भाष्य

एवम्

वेदान्तशास्त्री पण्डित कृष्णानन्द बुधौलिया

M.A. (Sansk.), M.A. (Phil,) L.L.B., Advocate, भाँडेर

कृत हिन्दी भावानुवाद सहित



श्री पीताम्बरापीठ-संस्कृत-परिषद

दतिया (म.प्र.)

प्रकाशक :
पीताम्बरापीठ दतिया
(म.प्र.)

प्रथम संस्करण	:	१९७७
प्रथमावृत्ति	:	१०००
द्वितीय संस्करण	:	१९९८
द्वितीयावृत्ति	:	१०००
विजयादशमी	:	संवत् २०५५
मूल्य	:	४५ रुपिया

मुद्रक :
शिवशक्ति प्रेस प्रा.लि.
बैद्यनाथ भवन, ग्रेट नाग रोड,
नागपूर - ९



ब्रह्मलीन

श्री पीताम्बरा पीठाधीश्वर राष्ट्रगुरु परमपूज्य श्री १००८ श्री स्वामी जी
महाराज, वनखण्डेश्वर, दतिया (म०प्र०)

शुभाशीर्वाद

"श्री मातृका-चक्र-विवेक" नामक ग्रन्थ सबसे पहले कश्मीर प्रान्त में प्रकट हुआ। मंत्रशास्त्र की सभी रहस्यमय बातें इसमें आयी हुयी हैं। इसका प्रथम प्रकाशन काशी में हुआ जिसमें केवल संस्कृत टीका ही थी। प्रस्तुत प्रकाशन में हिन्दी भावानुवाद व्याख्या कर सुलभ बना दिया है।

आशा हैं, साधकों का इससे हित होगा।

पूज्यपाद श्री अनंत श्री राष्ट्रगुरु
श्रीस्वामीजी महाराज
श्रीपीताम्बरा-पीठ, दतिया (म. प्र.)

प्रकाशकीय

(प्रथम संस्करण)

राज-राजेश्वरी भगवती श्रीपीताम्बरा माई के अनुग्रह से **'श्रीमातृका-चक्र-विवेक'** ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए परिषद् परम प्रसन्न है।

मातृका शब्द ब्रह्म का व्यक्त स्वरूप है; एवं समस्त जगत् के व्यवहार का हेतु। साधना का समस्त क्रिया कलाप इसी वाङ्मयी मूर्ति के आश्रय पर ही पल्लवित, पुष्पित एवं फलीभूत है।

इस विषय पर अभी कोई ऐसा ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था।

यह ग्रन्थ मातृका के साधना-विज्ञान का सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्य का निरूपण करता है। इसके रचयिता श्री स्वतन्त्रानन्दनाथ एवं भाष्यकर्ता श्रीशिवानन्दनाथ दोनों ही अज्ञात विभूतियाँ हैं। ग्रन्थ ही इनका परिचय है।

पूज्य आचार्यचरण की आज्ञानुसार श्रीकृष्णानन्द बुधौलिया ने भावानुवाद किया है। ग्रन्थ का विषय गहन एवं दुर्बोध होने पर भी अनुवाद सरस सुबोध है। अनुवादक की भूमिका में विषय प्रवेश की सफलता सुन्दर है।

अपने पुण्यश्लोकी पूज्य पिता श्रीचतुर्भुज शर्मा की स्मृति में उरई निवासी श्री माणिकचन्द्र शर्मा ने प्रकाशन-व्यय सहर्ष वहन किया है। श्री ॐ नारायण शास्त्री ने ग्रन्थ की प्रतिलिपि की है।

इन सभी सहयोगियों को साभार धन्यवाद!

ब्रजनन्दन शास्त्री मन्त्री
श्रीपीताम्बरापीठ
दतिया (म.प्र.)

श्री गुरु पूर्णिमा
सं. २०३४

प्रकाशकीय

(द्वितीय संस्करण)

श्री मातृकाचक्र-विवेक ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण प्रकाशित करते हुये पीठ परिषद् परम संतोष का अनुभव कर रही है।

माया बलात्प्रथम भासि जडस्वभावं
विद्योदयादथ विकस्वर चिन्मयत्वम्। २।१ मातृकाचक्र विवेक

माया का बल मनुष्य में पूर्व से ही भाषित है लेकिन जब मातृकारूपी विद्या का उदय होता है तो चिन्मयत्व अर्थात ज्ञान का विकास होने लगता है। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्यपाद श्री स्वामीजी महाराज को अत्यन्त प्रिय था। इस ग्रन्थ के उपदेश से ही गुरुकृपा से अन्तरतम में प्रकाश छा जाता है। हम जैसे अकिंचन और अल्पज्ञ को भी महाराजजी ने इसका उपदेश करते समय संस्कृतज्ञों और शास्त्रीयों के बीच बैठा लिया और प्रतिदिन इसको सुनने का आदेश दिया। श्री मातृका चक्र-विवेक ग्रन्थ की एक प्रति ही पूज्यपाद के पास थी ओर वह भी बहुत प्राचीन संस्करण था तथा वह अप्राप्य हो गई थी। श्री महाराजजी ने यह ग्रन्थ लुप्त न हो, इसमें मन्त्रशास्त्र का रहस्य भरा पडा है इसके प्रकाशन की इच्छा प्रगट की, और उनकी कृपा से ग्रन्थ प्रकाशित हो गया। प्रस्तुत ग्रन्थ का जब उपदेश हो रहा था श्री कृष्णानंदजी बुधौलिया भी उसमें सम्मिलित होते थे वह श्रोताओं में विज्ञ और वरिष्ठ थे अत: महाराजजी ने पुस्तक के हिन्दी भाषानुवाद का भार उन्हें सौप दिया। श्री बुधोलियाजी ने बड़ी योग्यता से अपना कार्य निर्वहन किया उसके लिये हिन्दी भाषी जिज्ञासुजन उनके आभारी है।

श्री चक्र का जो पूजा रहस्य है वह मातृका रूप में ही है। पाँच अवस्थायें, तीन क्रम, और सभी आचार मातृका चक्र का ही विवेक है। अर्चन के बाद जो स्तुति है उसमें "प्रणमामि महादेवीं मातृकां परमेश्वरीम्" के द्वारा मातृका महादेवी को नमन किया गया है। आशा है इस दूसरे संस्करण से अधिक से अधिक साधक जन लाभान्वित होकर मन्त्रमातृका देवी की कृपा प्राप्त करेंगे।

निवेदक
हरिराम साँवला
कोषाध्यक्ष
श्री पीताम्बरा पीठ दतिया

श्रीगुरुपौर्णिमा
संवत् - २०५५

निवेदन-विशेष

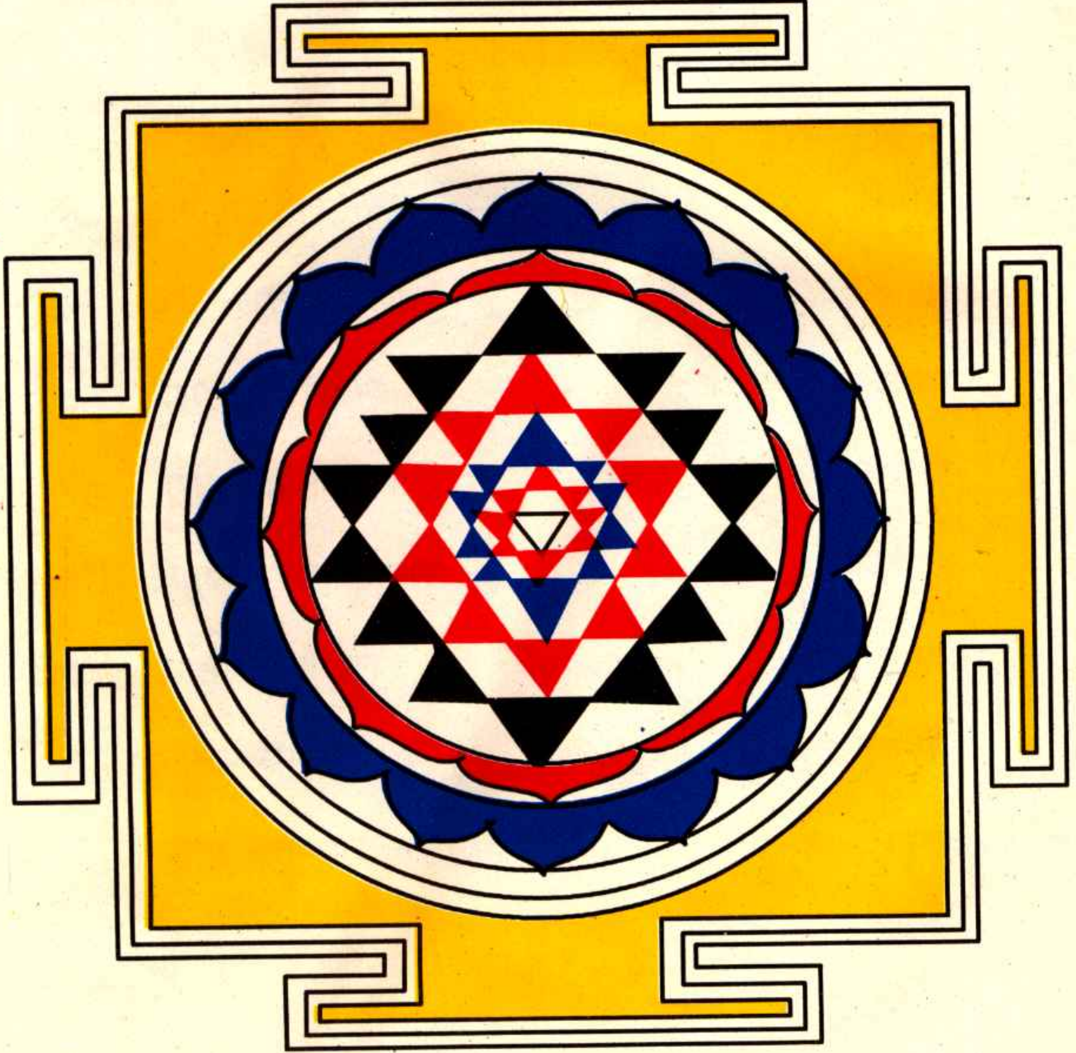
इच्छा होते हुए भी समयाभाव के कारण पूज्यपाद गुरुजी के सान्निध्य में ग्रन्थ के अध्ययन का अवसर प्राप्त न हो सका। जटिलता के कारण ग्रन्थ में प्रवेश मेरे लिए दुसह था। मेरे निवेदन करने पर श्रद्धेय गुरुजी ने अत्यन्त दयालु भाव से मेधाक्रम मन्त्र का जप करने का उपदेश किया। यद्यपि मैं नहीं जानता कि मैंने मन्त्र का यथाशक्ति एवं यथाविधि जप किया; तथापि यह निश्चय है कि मन्त्रोपदेश के दिनांक से ही ग्रन्थ की दुर्गमता समाप्त, बोध सुलभ, एवं कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो गया। पुस्तक का विषय इस प्रकार प्रतीत होने लगा जैसे मैं इससे पूर्व से परिचित हूं। मन्त्र का माहात्म्य विशेष है किन्तु गुरु कृपा सर्वोपरि है। शास्त्र में मन्त्र एवं देवता का तादात्म कहा गया है। अत: मैं गुरु की इच्छा को ही ज्ञान-क्रिया का स्रोत मानता हूं। इस में स्वयं का मेरा कोई पुरुषार्थ नहीं है। मैं तो अपने को केवल त्रुटियों का उत्तरदायी मानता हूँ।

जो पाठक संस्कृत भाषा के पण्डित है, उनके लिये हिन्दी टीका का कोई महत्त्व नहीं है, उनसे निवेदन है कि परीक्षक के नाते इस प्रयास का अवलोकन करने की कृपा करें। जिनको संस्कृत का अल्प ज्ञान है, उनके लिये हिन्दी टीका एवं भूमिका विशेषतया लाभप्रद सिद्ध हो सकती है। जिन पाठकों को संस्कृत भाषा के रसास्वादन का अवसर प्राप्त नहीं हुआ है तथा जो दार्शनिक चिन्तन में अभ्यस्त नहीं है, वह केवल प्रथम भूमिका का अवलोकन कर पुस्तक में विषय का प्राथमिक ज्ञान प्राप्त कर सकें इस उद्देश्य की पूर्ति की दृष्टि से भूमिका का कलेवर कुछ विस्तृत हो गया है। यदि पाठक इस प्रयास से लाभान्वित हो सके तो मैं अपने को धन्य मानूँगा। तथा उद्देश्य के औचित्य पर विचार कर पूज्यपाद गुरुवर स्वामीजी महाराज, उनकी इच्छा के विरुद्ध, भूमिका के विस्तृत कलेवर, के दोष से मुझे अवश्य क्षमा प्रदान करेंगे!

पाठकों से भी मैं क्षमा याचना करना चाहूंगा; कारण यह है कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं सरलीकरण के प्रयास में अधिक सफल नहीं हो सका हूं।

– **कृष्णानन्द बुधौलिया**

श्रीचक्र



बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्ममन्वश्रनागदलसंयुतषोडशारम् ।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः ।।

श्रीचक्र-चित्र-परिचय

१.	लाल बिन्दु	...	बिन्दु
२.	अधोमुख श्वेत त्रिकोण	...	त्रिकोण
३.	आठ लाल त्रिकोण	...	अष्टार
४.	दश नीले त्रिकोण	...	अन्तर्दशार
५.	दश लाल त्रिकोण	...	बहिर्दशार
६.	चतुर्दश काले त्रिकोण	...	चतुर्दशार
७.	लाल कमल-दल	...	अष्ट दल पद्म
८.	नीला कमल-दल	...	षोडश-दल-पद्म
९.	पीला चतुष्कोण	...	चतुरस्र

विषय-सूची

पृष्ठ क्र.

पृष्ठ क्र.

पृष्ठ क्र.

पृष्ठ क्र.

पृष्ठ क्र.



मातृकाचक्र-विवेकः

पृष्ठ सं.

✧ ✧ ✧

भूमिका

आनन्द की प्राप्ति ही परम पुरुषार्थ है। देवताओं से कीटपतंग पर्यन्त समस्त जीवात्मक सृष्टि आनन्द के साधनों की खोज में सर्वतो-भावेन सतत प्रयत्नशील रहती है। स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति आदि के उपभोग से जन्य सुख क्षणिक एवं सातिशय है। इसी प्रकार आमुष्किक एवं वैदिक सोम-याग आदि से जन्य स्वर्ग आदिक सुख भी क्षणिक एवं सातिशय हैं। श्रुति कहती है **''यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते तथाऽमुत्रपुष्य चितोऽपि।''** गीता का उपदेश भी है – **'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'** सहस्रों वर्ष पर्यन्त भोग करने पर भी मानव की तृप्ति नहीं होती है। श्रीमद्भागवत में ययाति का भी यही कथन है **'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।'**

वैदिक कर्मों के अनुष्ठान से आत्यन्तिक सुख की प्राप्ति नहीं होती है, अतः उपनिषदों में ज्ञान-मार्ग का उपदेश किया गया है। निगम द्वारा प्रतिपादित मार्ग से मानव परमानन्द-रस की प्राप्ति कर मोक्ष-लाभ करता है। **नितरां रामयति इति निगमः** व्युत्पत्ति के अनुसार निगम परम पुरुषार्थ का बोधक है। संसार से मुक्ति का एकमात्र साधन-ज्ञान है।

दूसरा मार्ग आगम द्वारा प्रतिपादित है। जिसके द्वारा अभ्युदय एवं निश्रेयस के उपायों का बुद्धि में आरोहण होता है वह शास्त्र आगम के नाम से प्रसिद्ध है। इस मार्ग में ज्ञान के साथ क्रिया का सामञ्जस्य निरूपित किया गया है। ज्ञान के बिना क्रिया तथा क्रिया के बिना ज्ञान की सत्ता असम्भव है। ज्ञान-क्रिया में अविनाभाव सम्बन्ध है।

निगम एवं आगम, भारतीय विचार-पद्धति के दो स्तम्भ हैं। आगम-शास्त्र वस्तुतः उपनिषदों में प्रतिपादित ज्ञान-मार्ग का वैज्ञानिक एवं विस्तृत स्वरूप है। जिन विषयों का वेद एवं उपनिषद्-ग्रन्थों में बीज-रूप से संकेत किया गया है, उन विषयों का आगमशास्त्र में स्पष्ट निरूपण उपलब्ध होता है। काल-चक्र के क्रम के अनुसार मानव की बुद्धि का विकास होने पर आगम के स्रोत से तन्त्र, मन्त्र, हठ-योग, कुण्डलिनी-योग एवं वज्र-यान, सहज-यान आदि बौद्ध-तन्त्र तथा जैन-तन्त्रों का उद्गम हुआ है।

वेदानुगामिनी-विचार-श्रृंङ्खला में प्रस्तुत आगम ग्रन्थ एक कड़ी है, जिसमें परम सत्य को शिव-शक्ति के सामरस्य के रूप में त्रिपुरेश्वरी के नाम से संबोधित किया गया है। त्रिपुर-सुंदरी के सायुज्य से अर्थात् सम्यक् ज्ञान से धर्म आदि चतुर्विध पुरुषार्थ की अकारण अर्थात सहज प्राप्ति हो जाती है। भगवत्-पाद श्री शङ्कराचार्य ने भी, सौन्दर्य-लहरी में, इसी अर्थ का समर्थन किया है –

"परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद् भजनवान्।"

प्रस्तुत मातृका-चक्र-विवेक को विद्वत् शिरोमणि पं. गोपीनाथ कविराज ने फिलोसोफी ऑफ गोरक्षनाथ नामक पुस्तक की भूमिका में सिद्ध-मत का ग्रन्थ प्रतिपादित किया है। विद्वान कविराज ने **'भारतीय संस्कृति एवं साधना'** नामक ग्रन्थ में सिद्ध-सिद्धान्त एवं सहज-यान नामक बौद्ध-सम्प्रदाय की तुलना करते हुए दोनों मार्गों में एकरूपता का दिग्दर्शन कराया है; साथ ही मार्कण्डेय प्रोक्त हठयोग को दोनों मार्गों का प्रेरणा-स्रोत निरूपित किया है। इतना ही पर्याप्त नहीं है अपितु प्रस्तुत ग्रन्थ में टीकाकार शिवानन्द ने अनेक मार्मिक स्थलों पर शिव-शक्ति के यामल तत्व, सामरस्यात्मक स्वरूप, समयाचार, सिद्ध-मार्ग, एवं रहस्य-सम्प्रदाय की चर्चा करके समय-पद्धति का ही प्रतिपादन किया है। अतएव यह ग्रन्थ वस्तुत: समयाचार का प्रतिपादक है।

त्रिपुर-तापनी एवं कौल आदि उपनिषदों तथा तन्त्र-शास्त्र के ग्रन्थ भगवती त्रिपुर-सुन्दरी की उपासना के मूल स्रोत हैं। त्रिपुरा-रहस्य, योगिनी-हृदय, वामकेश्वर आदि तन्त्रों में त्रिपुरा-सम्प्रदाय के दर्शन का अन्वीक्षण किया गया है; किन्तु तान्त्रिक सङ्केत एवं मन्त्र-मात्रिकाओं के रहस्य तथा शब्द एवं अर्थ में व्यङ्ग्य-व्यञ्जक सम्बन्ध का उद्घाटन इन ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है, जिसके कारण चक्र, यन्त्र एवं देवता तथा मन्त्र-साधना के अन्य उपयोगी तत्त्वों का ज्ञान स्पष्ट नहीं होता है। अत: तन्त्र-गत उपासना की वास्तविक महत्ता एवं गौरव का बौद्धिक समाधान नहीं हो पाता है। इस दृष्टि से सिद्ध श्री स्वतन्त्रानन्दनाथ का यह प्रयास अद्वितीय है। श्री शिवानन्द मुनि ने टीका के द्वारा ग्रन्थ की ग्रन्थियों को सुलझा कर मन्त्र के रहस्य का जो उद्घाटन किया है, उससे उपासना का दार्शनिक स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। यह प्रयास भी अद्वितीय है। टीकाकार के मतानुसार ग्रन्थ में प्रतिपादित विषय कहीं अन्यत्र उपलब्ध नहीं है, अतएव टीका में सिद्धान्त के समर्थन के हेतु किन्हीं अन्य

पुस्तकों के उद्धरणों का आश्रय नहीं लिया गया है। ग्रन्थ के विषय का प्रतिपादन पूर्णतया मौलिक है।

संप्रदाय में प्रचलित, ग्रंथ के अवतरण की पारंपरिक कथा का, टीकाकार ने अपनी पद्यबद्ध भूमिका में, उल्लेख किया है। सिद्ध श्री स्वतन्त्रानन्दनाथ को मातृका के अर्थ का बोध आदिनाथ देव देव महादेव की कृपा से प्राप्त हुआ तथा आदेश मिला कि इस रहस्य को योग-मार्ग के साथ संयोजित करो। भगवान महादेव की आज्ञा के अनुसार सिद्ध ने प्रथम माहेश्वर सूत्रों के आधार पर मातृका के अर्थ के रहस्य को प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया; किन्तु इस दिशा में वे असफल रहे। अत: पुन: कनकाचल की कन्दरा में प्रविष्ट होकर सिद्ध ने समाहित चित से चिन्तन किया तब शिव द्वारा प्रेरित श्रीचक्र उनके समक्ष आकाश से अवतरित हुआ; जिसके अवलोकन से सिद्ध की प्रतिभा जाग्रत हो गई एवं मातृका के अर्थ के प्रतिपादक, प्रस्तुत सूत्रों का आविर्भाव हुआ।

माहेश्वर-सूत्रों के आधार पर पाणिनी ने व्याकरण-शास्त्र की रचना की है; किन्तु उक्त सूत्रों से मातृका के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं होता है। श्रीचक्र द्वारा अनुमोदित मातृका-महामन्त्र में वर्णों को जिस क्रम से निबद्ध किया गया है, उसके द्वारा सम्पूर्ण वर्णमाला, महाशक्ति त्रिपुरेश्वरी के स्वरूप की साङ्गोपाङ्ग अवबोधक सिद्ध होती है।

ग्रन्थ का नाम है 'श्री मातृका-चक्र-विवेक'। टीकाकार श्री शिवानन्द ने मातृका शब्द की द्विरुक्ति का संकेत किया है; जिससे मातृका एवं मातृका-चक्र उभय की उपलब्धि होती है। इससे तात्पर्य है कि ग्रन्थ में मातृका एवं मातृका-चक्र दोनों के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। मातृका शब्द से पर शिव के प्राणों की ईश्वरी महाशक्ति का ही बोध होता है। प्रथम खण्ड के द्वितीय सूत्र में मातृका महाशक्ति को मन्त्र समुदाय की जननी कहा गया है – **''मन्त्रोत्करस्य जननीं मनसा विशाम:''** अन्यत्र मातृका को वर्ण रूपिणी भी प्रतिपादित किया गया है।

– **''मातृका वर्ण-रूपिणी''**।

मातृका-चक्र का अर्थ है मातृका वर्ण के सन्निवेश से सम्भूत चक्र अथवा वह चक्र जिसमें मातृका महाशक्ति ही चक्र के आकार में सन्निविष्ट है। इस प्रकार व्युत्पत्ति के अनुसार टीकाकार ने मातृका-पद को वर्णात्मक मूल-मन्त्र एवं मातृका-चक्र-पद को श्रीचक्र के नाम से स्वीकार किया है। **''श्रीचक्र नवत्रिकोणश्लेष विशिष्टं यंत्र, मूल मनु मातृका''**। (खंड १, सूत्र १)

ग्रन्थ में मातृका-महामन्त्र को पाँच भागों में विभाजित किया गया है-

स्वर – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, लॄ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः।

स्पर्श – **क वर्ग** – क, ख, ग, घ, ङ।
च वर्ग – च, छ, ज, झ, ञ।
ट वर्ग – ट, ठ, ड, ढ, ण।
त वर्ग – त, थ, द, ध, न।
प वर्ग – प, फ, ब, भ, म।

अन्तःस्थ – **य वर्ग** – य, र, ल, व, श

उष्माण – **श वर्ग** – श, ष, स, ह

कूटस्थ – **क्ष कार**

इस प्रकार वर्ण माला में एकावन अक्षर हैं; जिनमें लकार का दो बार प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त मकार से क्षकार पर्यन्त अर्थात म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष दश वर्णों के समूह को व्यापक वर्ग नाम से भी व्यवहृत किया है। इस व्यवस्था के अनुसार स्वर, स्पर्श एवं व्यापक वर्ग सहित महामन्त्र का स्वरूप केवल त्रिखण्डात्मक रह जाता है।

विषय-प्रवेश

रहस्य-सम्प्रदाय के अनुसार शिव-शक्ति का सामरस्यात्मक स्वरूप उपास्य है। जिसको पर-शिव नाम से व्यवहृत किया गया है। पर-शिव का ही शिव एवं शक्ति नामक दो धारों में आविर्भाव होता है। मातृका-महामन्त्र शिव-शक्ति के स्वरूप का बोधक है एवं श्रीचक्र महाशक्ति का प्रतिबिम्ब है जिसको यन्त्र के रूप में चित्रित किया है। चक्र का अर्थ है क्रिया का साधन 'क्रियतेऽनेनेति'। इसका अर्थ है कि प्रमेय, प्रमाण एवं प्रमातृ रूप सकल भेद, अभेद, एवं उभय रूप शिव-शक्त्यात्मक चित्-चैत्य रूप जगत का प्रतिबिम्बभूत नव चक्रात्मक श्रीचक्र श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरी का शरीर है। कहा भी है **"शिव-शक्तिमयं ज्ञेयं श्री चक्रं शिवयोर्वपुः"**। योगिनी हृदय में श्रीचक्र को आत्मा का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है :-

"श्री चक्र नाम नान्यत्किञ्चित, अपितु संविद्देवतायाः प्रसर रूपान्तःकरण-चतुष्टयाव्यक्त महहङ्कृति तन्मात्र-दशेन्द्रिय तद्वृत्ति तद्विषय तत्पुर्यष्टक षोडश-विकार धातु प्रपञ्च एवं श्रीचक्रात्मना स्फुरति"।।

सूत्रकार ने अखण्ड-रूपिणी महाशक्ति का परं शिव की प्राणेश्वरी के रूप में परामर्श किया है। जब परं शिव के अन्तः में महाशक्ति लीन रहती है, तब यह अखण्ड पद परं-शिव के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इच्छा रूपिणी ईक्षणात्मिक महाशक्ति के द्वारा जब प्राण का संचालन होता है तब परं-शिव का शिव एवं शक्ति के रूप में आविर्भाव होता है।

शक्ति का स्वरूप

प्राण की विभिन्न अवस्थायें ही शक्ति का स्वरूप हैं। सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत्, तुर्य, एवं तुर्यातीत नामक पाँच अवस्थाओं को शक्ति के वाम, दक्षिण, योनि, मुख एवं हृदय नामक अङ्गों के रूप में प्रतिपादित किया गया है। प्रत्यक्षतः अनुभव होता है कि दक्षिण अङ्ग सक्रिय होता है एवं जाग्रत् दशा भी प्रत्यक्षतः क्रियात्मक होती है। अतः जाग्रत अवस्था को महाशक्ति का दक्षिण अंग निरूपित किया गया है। वाम अंग निष्क्रिय होता है तथा सुषुप्ति अवस्था भी निष्क्रिय होती है; अतएव सुषुप्ति दशा महाशक्ति का वाम अंग है। योनि उत्पत्ति का कारण है। सर्व प्रथम विकल्प की उत्पत्ति स्वप्न में होती है, अतः स्वप्न-दशा की महाशक्ति का योनि-भाग निरूपित किया गया है। यह तीन अवस्थाएँ जीवात्मक है, जो शरीर-चक्र के अन्तर्गत शाक्त-त्रिकोण के नाम से व्यवहृत हैं। चतुर्थ अवस्था तुर्य है। इस अवस्था में चित् का अनुसन्धान होता है, अतः यह शिवात्मक दशा है। इस दशा में यद्यपि जाग्रत आदि तीनों दशाओं की अभेद अनुभूति होती है; तथापि सर्वत्र चिद्रूपता के कारण तुर्य-दशा को एक रूप ही प्रतिपादित किया गया है। इस दशा में जाग्रदादि-गत वैचित्र्य का अभाव होता है; अतः यह दशा भेद-रहित एक-रस निरूपित है।

तुर्य अवस्था जाग्रत आदि समस्त दशाओं को आत्मसात् कर लेती है, अतः इसको महाशक्ति का मुख-भाग निरूपित किया है। यद्यपि तुर्य में अनुभूति एक-रस होती है, तथापि इस दशा का अनुभव जाग्रत में होता है एवं अनुभूति का स्वरूप सुषुप्ति-आत्मक होता है, अतः यह अवस्था भी संसार-कलङ्क से मुक्त नहीं है। यहाँ भी जाग्रत आदि दशात्रय की अनुभूति अभेद-रूप में होती रहती है। अतएव अन्तिम अवस्था तुर्यातीत है, जो शुद्ध अन्तर्मुख है तथा संसार-कलङ्क से सर्वथा मुक्त है।

तुर्यातीत दशा में तुर्य सहित जाग्रत आदि समस्त दशाओं की प्राणरूप होने से तुर्यातीत को महाशक्ति का हृदय-प्रदेश निरूपित किया गया है। जिस प्रकार हृदय से समस्त नाड़ियों का निर्गमन होता है एवं हृदय में ही समावेश हो जाता है, उसी प्रकार विश्रान्ति-रूप तुर्यातीत नामक हृदय-प्रदेश से प्राण-कला के रूप में परम शिव के प्राणों की ईश्वरी अर्थात् सत्ता-सम्पादिनी महाशक्ति का स्फुरण होता है तथा तुर्यातीत में ही लय हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार सर्वत्र चिन्मय प्रवाह के कारण यदि तुर्य को एकरूप स्वीकार किया जावे, तब महाशक्ति के जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुर्य – चार अङ्ग निरूपित होते हैं, अतः महाशक्ति को चार अङ्गों से सम्पन्न होने के कारण चतुरङ्ग निरूपित किया जाता है। यदि जाग्रत आदि की अभेद अनुभूति के कारण तुर्य को भी त्रिविध स्वीकार किया जावै, तब महाशक्ति को भेद-जाग्रत, भेद-स्वप्न, भेद-सुषुप्ति तथा अभेद-जाग्रत, अभेद-स्वप्न एवं अभेद-सुषुप्ति रूप छै अङ्गों से युक्त अर्थात् षडङ्ग निरूपित किया जाता है।

सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत क्रम से भेद-रूप संसरण जीवात्मक है, तथा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति क्रम से अभेद-रूप संसरण शिवात्मक है। भेद-संसरण का नाम प्रवृत्ति एवं अभेद-संसरण का नाम निवृत्ति है। भेदाभेद-रूप यह संसरण महाशक्ति का स्वभाव है।

बोध्य-बोधक सम्बन्ध

परम शिव की पञ्चावस्थात्मक पञ्चाङ्गी शक्ति का बोध मातृका महामन्त्र से होता है। जिस प्रकार दशाओं के सुषुप्ति आदि पाँच भेद है उसी प्रकार महामन्त्र भी स्वर आदि पाँच भागों में विभाजित है। महामन्त्र के स्वर-स्पर्श अन्तःस्थ-ऊष्माण एवं कूटस्थ वर्णों से क्रमशः सुषुप्ति, जाग्रत, स्वप्न, तुर्य एवं तुर्यातीत दशाओं का बोध होता है। दशाएं एवं वर्ण प्राण की ही परिणति है। मूलाधार में स्थित प्राणात्मिक परावाक् नामक शक्ति का जब उत्थान होता है, तब प्राण वायु नाभि आदि विभिन्न चक्रों में होकर मुख के कण्ठ तालु आदि स्थानों से आहत होकर बर्हिनिर्गमन करती है जिससे शब्द का उच्चारण होता है। उच्चारण के हेतु किये इस प्रयत्न से प्राण वायु का कण्ठ आदि स्थानों से संघट्टन अथवा विघट्टन होता है जिसके कारण वर्णों के आकार में प्राण की परिणति हो जाती है। व्याकरण शास्त्र में यह उच्चारणात्मक प्रयत्न दो प्रकार का निरूपित किया गया है। (१) **अभ्यन्तर प्रयत्न** एवं

(२) **बाह्य प्रयत्न**। अभ्यन्तर प्रयत्न पुन: चार प्रकार का है - १) विवृत २) स्पृष्ट, ३) ईषत् स्पृष्ट ४) एवं ईषत्-विवृत। कण्ठ-तालु आदि के ऊर्ध्व एवं अधो भागों के संघट्ट का नाम स्पृष्टता है तथा कण्ठ आदि अवयवों के भागद्वय के पुन: विघट्टन का नाम विवृतता है। स्वरों के उच्चारण में विवृत प्रयत्न, स्पर्श वर्णों के उच्चारण में स्पृष्ट प्रयत्न, अन्तस्थ वर्णों के उच्चारण में ईषत्-स्पृष्ट एवं ऊष्माण वर्णों के उच्चारण में ईषत्-विवृत प्रयत्न घटित होता है। जिस प्रकार उच्चारण-प्रयत्न से प्राण-वायु का संकोच एवं विकास होता है उसी प्रकार अवस्थाओं के स्फुरण के समय भी वायु का संकोच एवं विकास होता है। प्राण के संकोच-ग्रहण एवं संकोच-त्याग रूप सादृश्य के कारण वर्णों तथा दशाओं में व्यङ्ग्य-व्यञ्जक अर्थात् बोध्य बोधक सम्बन्ध निरूपित किया गया है। सुषुप्ति अवस्था में प्राण की पूर्ण विवृतता एवं जाग्रत में पूर्ण संकोच होता है, अत: इन दो दशाओं को पूर्ण दशा में निरूपित किया है, तथा स्वप्न में प्राण का ईषत्-संकोच तथा तुर्य में ईषत् विवृता होती है अत: यह दशायें अपूर्ण निरूपित की गई हैं।

उपर्युक्त प्रतिपादन अभ्यन्तर प्रयत्न पर आधारित है। बाह्य प्रयत्न के द्वारा कण्ठतालु आदि उच्चारण स्थान के उच्चय एवं अपचय के आधार पर दशाओं के उच्चय एवं अपचय का प्रतिपादन तथा वर्णों के द्वारा पृथ्वी से शिव पर्यन्त छत्तीस तत्त्वों की बोधकता का निरूपण किया गया है। इस प्रकार अभिधेय त्रिपुरसुन्दरी एवं अभिधान महामन्त्र के अभेदात्मक स्वरूप अर्थात् शब्द एवं अर्थ की एकरूपता प्रतिपादित करना प्रस्तुत ग्रन्थ का लक्ष्य है।

दशाओं का वर्गीकरण

दशाओं के विवेचन से विदित होता है कि स्वप्न की अनुभूति यद्यपि सुषुप्ति दशा में होती है तथापि यह अनुभूति जाग्रत अवस्था की अनुभूति के समान ही होती है। अर्थात् जाग्रत में जगत की घट-पट आदि वस्तुओं का जिस रूप में अनुभव होता है, स्वप्न दशा में भी उसी रूप में समस्त पदार्थों की कल्पना होती है। अतएव स्वप्न दशा वस्तुत: जाग्रत का ही भेद है। इसी प्रकार तुर्य की अनुभूति यद्यपि जाग्रत में होती है तथापि यह अनुभूति सुषुप्ति के समान विश्रान्ति रूप है, अत: यह तुर्य दशा वस्तुत: सुषुप्ति का ही भेद है। इस प्रकार वर्गीकरण की दृष्टि से जाग्रत एवं सुषुप्ति दो ही मूल दशाएँ हैं, स्वप्न एवं तुर्य इनके अन्तर्गत विभावित है।

दशाओं के बोधक वर्णों का स्वरूप ज्ञानात्मक निरूपित है। अत: जब जाग्रत् एवं सुषुप्ति मूल दशाओं का प्रथम अभ्यन्तर में, ज्ञान रूप में उदय होता है तब इनको ही स्वप्न एवं तुर्य नाम से सम्बोधित किया जाता है तथा जब इनका बाह्य इन्द्रियों में क्रिया के रूप में उदय होता है तब इन दो दशाओं को जाग्रत एवं सुषुप्ति नाम से सम्बोधित करते हैं। इस का अर्थ है कि अभ्यन्तर इन्द्रियों का अनुसन्धान ज्ञान-रूप है एवं बाह्य इन्द्रियों का अनुसन्धान क्रियारूप है। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त भी प्रतिपादित होता है कि संसृति एवं विश्रान्ति सर्व प्रथम अभ्यन्तर इन्द्रियों की अनुसंहिता है तदनन्तर इनका बाह्य इन्द्रियात्मक अनुभूति में अवतरण होता है।

दशाओं के रूप में समस्त भाव शिव-शक्त्यात्मक है। शिव एवं शक्ति का स्वरूप ज्ञान-क्रियात्मक है अतएव इससे सिद्ध होता है कि अन्ततोगत्वा ज्ञानात्मक एवं क्रियात्मक समस्त दशाओं का प्रवर्तन कालचक्र की नाभी में होता है; जिसको तुर्यातीत नाम से सम्बोधित किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि तुर्यातीत नामक प्राण-कला से महा शक्ति के स्वरूप का, अवस्थाओं के रूप में, स्फुरण होता है तथा तुर्यातीत में ही लय हो जाता है।

भेदाभेद सृष्टि

दशाओं का स्फुरण-भेद एवं अभेद दो रूपों में होता है। भेद-सृष्टि पुन: द्विविध निरूपित है। (१) जाग्रत (२) स्वप्न। भेद-सृष्टि का बाह्य विलास जाग्रत एवं अन्त: उल्लास स्वप्न है। अर्थात जगत् की बाह्य अनुभूति का नाम जाग्रत एवं अन्त: अनुभूति का नाम स्वप्न है। जाग्रत एवं स्वप्नात्मक सृष्टिद्वय की उत्पत्ति एवं विश्रान्ति भूमि सुषुप्ति है।

बिन्दू-विसर्ग

शिव नाम से व्यवहत चित् अर्थात प्रकाश तत्त्व के द्वारा प्रकृति की बाह्य सृष्टि का नाम विसर्ग है। यद्यपि विसर्ग को बाह्य सृष्टि कहा है किन्तु वस्तुत: यह सृष्टि शिव से बाहिर नहीं है। शिव-रूप उपादान से संलग्न रहने पर ही सृष्टि के अस्तित्व की सिद्धि होती है। शिव रूप उपादान के बिना सृष्टि का अस्तित्व असम्भव है; अतएव बाह्य-सृष्टि का अर्थ है बाह्य इव अर्थात् प्रकृति की यह सृष्टि केवल शिव से बाहिर प्रतीत होती है,

वस्तुतः बाहिर नहीं है। इस प्रकार शिव का यह बाह्यतः चमत्कार नैसर्गिक है, जिसको विमर्श नाम से सम्बोधित किया है। विमर्श अवस्था में शिव चित्-रूप होते हुए भी अपने प्रमातृ-रूप वैभव से च्युत हो जाता है तथा प्रमेयत्व को प्राप्त कर जीव नाम से व्यवहृत होता है; जब वही प्रकाशात्मक शिव प्रपञ्च का संहार करने की इच्छा से विमर्श रूपिणी प्रकृति को पुनः अपने अन्तः में लीन कर लेता है तब उसका बिन्दू नाम से व्यवहार होता है।

इसका तात्पर्य है कि विमर्श का स्वभाव संसरणात्मक है एवं प्रकाश का स्वभाव विश्रमणात्मक है। बिन्दू एवं विसर्ग शब्दों को प्रकाश एवं विमर्श की परिभाषा के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

विमर्श का संसरण

विमर्श का तीन प्रकार से संसरण होता है – १) **द्वैत संसरण** २) **अद्वैत संसरण** एवं ३) **द्वैताद्वैत रूप मिश्र-संसरण।** विसर्ग अर्थात विमर्श का अविद्या के रूप में भेदात्मक संसरण, विद्या के रूप में अभेदात्मक संसरण, एवं विद्या-अविद्या के रूप में द्वैताद्वैत रूप उभयात्मक संसरण होता है। शिव, जीव एवं पर शिव, क्रमशः अद्वैत, द्वैत एवं द्वैताद्वैत पदों के अधिष्ठाता होने के कारण संसरण शील हैं।

संसार-कलङ्क से अस्पृष्ट शुद्ध अन्तर्मुख विश्रान्ति-रूप चतुर्थ पद है; जिसमें उपर्युक्त द्वैत आदि तीनों प्रकार के संसरणों का अन्त हो जाता है। यह चतुर्थ-पद तुर्य नाम से प्रसिद्ध है। विन्दू-पद समस्त संसार के उपादान भूत पूर्ण विमर्श का स्वरूप होने से यद्यपि महा विश्रान्ति पद है, तथापि इस पद में भी प्रपञ्च कला के अनुसन्धान की गन्ध शान्त नहीं होती है; अतः परम-व्योमात्मक, निष्कल महा-बिन्दू ही परम तत्त्व है, जिसमें तुर्य सहित त्रिविध संसरणों का लय हो जाता है। महा-विन्दू ही तुर्यातीत द्वैताद्वैत विवर्जित परम पद है जो रहस्य सिद्धान्त के अनुसार राज मार्ग प्रतिपादित किया गया है।

चित्-चैत्य रूप जगत्

परिभाषा के अनुसार बिन्दू अभेद्य पद है, स्वभाव से अपरिच्छिन्न है; अतएव वेदकात्मक प्रकाश तत्त्व को बिन्दू कहा गया है। विमर्श वेद्यात्मक है इसको विसर्ग नाम से व्यवहार किया है।

यद्यपि बिन्दू अपरिच्छेद्य है तथापि बिन्दू के गर्भ में गुणों का समावेश रहता है अतएव विन्दू रूप संवित्ति शिव का ही स्वरूप है तथा विसर्ग जीव का स्वरूप है इस प्रकार पृथकता होने पर भी बिन्दू की सत्ता से ही विसर्ग की सत्ता सिद्ध है; अत: जगत् का स्वरूप प्रकाश-विमर्श उभय तत्त्वों से युक्त है। जगत् का आधा अंश प्रकाशमय एवं आधा अंश विमर्शमय है। प्रकाश चित् रूप है; चित् से प्रादुर्भूत तत्त्व को चैत्य कहा गया है अत: चैत्य विमर्श का पर्याय है। विमर्श की उत्पत्ति प्रकाश से होती है एवं प्रकाश में ही लय हो जाता है अत: विमर्श चित्-प्रकाश का धर्म है। सिद्धान्तत: जिस वस्तु का स्फुरण नहीं होता है उस वस्तु की सत्ता का अभाव कहा जाता है। स्फुरण प्रकाश के अधीन है अत: प्रकाश कारण-रूप है एवं विमर्श कार्य-रूप है।

यद्यपि विमर्श की अनुभूति प्रकाश से होती है तथापि प्रकाश के परिज्ञान का कारण भी विमर्श है। यदि प्रकाश का जगत् के रूप में अविमर्श न हो तब प्रकाश के इदं, इत्थं का निर्देश भी असम्भव है, अत: प्रकाश भी विमर्श का धर्म सिद्ध होता है। इस प्रकार चित्-चैत्य में अन्योन्य धर्म-धर्मी सम्बन्ध निरूपित है।

शिव-जीव भाव

समान रूप से धर्म-धर्मी भाव के कारण चित्-चैत्य का परस्पर पदाक्रमण स्वाभाविक है। प्रवृत्ति रूप संसरण में चैत्य के द्वारा चित् आवृत हो जाता है। अत: चित् को जीव अथवा पशु नाम से व्यवहार करते है। निवृत्ति रूप विन्दू व्याप्ति में चित चैत्य को आवृत कर लेता है तब चैत्य को शिव नाम से सम्बोधित किया जाता है। इसका तात्पर्य है कि एक ही तत्त्व निवृत्ति एवं प्रवृत्ति के कारण शिव एवं जीव पृथक नामों से सम्बोधित है।

चित् चैत्य का नैसर्गिक स्फुरण जब स्तम्भित हो जाता है तब उभय तत्त्वों के मध्य में पर शिव के स्वरूप का आविर्भाव होता है। यह सम पद है जिसमें जीव एवं शिव का एक साथ अनुसन्धान होता है।

ज्ञान-क्रिया

उपर्युक्त प्रकार से चित् चैत्य एवं उभयात्मक संस्करणों में तीन प्रकार से शिव का ही स्फुरण होता है। शिव ही ज्ञान-क्रिया स्वरूप है। चित् का नाम

ज्ञान है। घट-पट आदि भिन्न वस्तुओं का ज्ञान अभेदात्मक एक रूप होता है, जब कि घट पट आदि वस्तुओं का स्वरूप अन्योन्य व्यावृत होता है अत: इनकी अनुभूति भेद रूपा होती है। इसका अभिप्राय है कि पारमार्थिक दृष्टि से वस्तुत: ज्ञान-क्रिया एक रूप है एवं चित्-चैत्य का भेद भी आभास मात्र है। पारमार्थिक दृष्टि से चित्-चैत्य एक है। स्पष्टतया इस प्रकार कहा जा सकता है कि ज्ञान जब काठिन्य गुण को ग्रहण करता है तब क्रिया रूप हो जाता है एवं जब क्रिया काठिन्य का परित्याग कर विश्रान्ति रूप बिरलिमा को ग्रहण करती है तब इसका नाम ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार ज्ञान का बाह्य रूप क्रिया है एवं क्रिया का आन्तर रूप ज्ञान है। अर्थात एक ही वस्तु का विभिन्न दृष्टि कोणों से ज्ञान एवं क्रिया नाम हो जाता है। दोनों का अर्थ एक ही है।

शिव-शक्ति के स्वरूप भूत ज्ञान एवं क्रिया की समान रूप से प्रधानता है। क्रिया के बिना ज्ञान की सिद्धि सम्भव नहीं है एवं ज्ञान के बिना क्रिया की सिद्धिं नहीं होती है। ज्ञान-क्रिया में अविनाभाव सम्बन्ध है अर्थात ज्ञान का कारण क्रिया एवं क्रिया का कारण ज्ञान; है जिसको अन्योन्य कारण सम्बन्ध कहा जाता है। यही सिद्ध मत है जिसमें ज्ञान-क्रिया की यामलता प्रतिपादित है। यामलता का अर्थ है युगपत् सिद्धि। यह सिद्धान्त मन्त्र का हृदय है। यामलता के कारण ज्ञान-क्रिया में पौर्वापर्य अर्थात् पूर्वत्व एवं अपरत्व का निरूपण नहीं किया जा सकता है। ज्ञान-क्रिया के पर्यायवाची वेद्य वेदक, प्रकृति-पुरुष, देह-आत्मा, शब्द-अर्थ में भी पौर्वापर्य संकलन सम्भव नहीं है।

इच्छा

उपर्युक्त प्रकार से प्रतिपादित अविनाभाव से सम्बन्धित ज्ञान-क्रिया की समष्टि का नाम इच्छा है। शिव के आधे दक्षिण भाग को क्रिया तथा शेष आधे वाम भाग को ज्ञान निरूपित किया है। क्रिया विमर्श रूप होने से शक्ति तथा ज्ञान प्रकाश रूप होने से शिव है। ज्ञानक्रिया का समत्व इच्छा है। इच्छा स्वभाव से स्तम्भित होने के कारण ज्ञान-क्रिया के मध्य में बीज के रूप में प्रतिपादित है। बीज मध्य में निश्चल रहता है तथा मूल एवं अंकुर का क्रमश: बीज के नीचे के भाग में तथा ऊपर बाह्य भाग में प्रसार होता है उसी प्रकार बीज के समान की इच्छा की ज्ञानक्रिया के मध्य में निश्चल स्थिति है तथा मूल के समान ज्ञान का अन्त: में तथा क्रिया का बाह्यत: प्रसार होता है। पर-शिव की भी, इसी प्रकार प्रकाश-विमर्श के अर्थात् शिव-

शक्ति के मध्य में अचल रूप में प्रतिष्ठा है तथा चित्-चैत्य के मध्य में उभयात्मक चित-चैत्य स्वरूप का मध्य में अवस्था है। इस प्रकार ज्ञान-क्रिया के मध्य में अवस्थान होने के कारण इच्छा का स्वरूप पर-शिवात्मक निरूपित है। समय मत का भी यही सिद्धान्त है। समय का अर्थ है **''शम्भोः साम्यं याति इति''**। प्रकाश-विमर्श का परशिव के अन्तर्गत युगपत् सम अवस्था में अन्तर्भाव रहता है। इच्छा का स्वरूप भी ज्ञान-क्रिया का समत्व है। इच्छा को टीकाकार ने सुषुम्ना का पर्याय (सूत्र सत्तरह की टीका में) कहा है। इस प्रकार ज्ञान चन्द्र-नाडी का स्वरूप एवं क्रिया सूर्य-नाडी का स्वरूप सिद्ध होता है। हठ योग में भी सूर्य चन्द्र नाडियों के समत्व को सुषुम्ना कहा गया है। अतएवं साधारण रूप में सिद्ध मत, समय मत तथा हठ योग का मत समत्व सिद्धान्त के सम्बन्ध में एक समान प्रतीत होता है। समत्व के सिद्धान्त को टीकाकर ने "रहस्य समय सारावबोधक कहा है।"

इच्छा-ज्ञान-क्रिया की त्रिगुणात्मकता

हरि, हर, हिरण्यगर्भ नामक त्रिमूर्ति इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक निरूपित है। सृष्टि, स्थिति, एवं संहार का कारण भी इच्छा-ज्ञान क्रिया है, अतः इनका स्वभाव त्रिगुणात्मक है। इच्छा-ज्ञान-क्रिया का स्वरूप होने से समस्त संसार त्रिगुणात्मक है, अतएव शिव-जीव के संसरण से आविर्भूत सुषुप्ति आदि दशाएं भी इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक होने से त्रिगुणात्मक हैं। अर्थात् सुषुप्ति आदि प्रत्येक दशा इच्छा-ज्ञान क्रियात्मक होने से त्रिकोण-भाव को प्राप्त है एवं प्रत्येक दशा में इच्छा-ज्ञान-क्रिया का भाव सम्भावित है। इस प्रकार सुषुप्ति-जाग्रत-स्वप्न प्रत्येक दशा इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक होने से दशाओं का नव त्रिकोणों के रूप में आविर्भाव होता है जिनको पांच शाक्त त्रिकोण एवं चार शिव त्रिकोण के रूप में श्री चक्र के अन्तर्गत दर्शाया गया है। रहस्य सिद्धान्त के अनुसार शिवशक्ति के सामरस्यात्मक स्वरूप के परिज्ञान के हेतु श्रीचक्र सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है।

श्रीचक्र

सुषुप्ति आदि दशा-त्रय शिव एवं जीव के संसरण एवं विश्रमण का स्वरूप है। प्रकाश में वासना रूप से विमर्श का नित्य अवस्थान है तथा विमर्श में प्रकाश की वासना नित्य है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रकाश

विमर्श का उपादान है एवं विमर्श प्रकाश का उपादान है। इस प्रकार प्रकाश-विमर्श दोनों में जड एवं अजड की व्यवस्था के कारण यह सिद्ध होता है कि इनसे उद्भूत सुषुप्ति आदि दशाओं में भी वासना रूप से जड के अन्तः में अजड एवं अजड के अन्तः में जड का स्फुरण होता है। माया के प्राबल्य से शिव का प्रथम जीव रूप में संसरण होता है तदनन्तर जीव का शिव रूप में संसरण होता है। अतः सुषुप्ति आदि दशाओं में यह द्वि-रूप (प्रवृत्ति-निवृत्तिमय) संसरण अन्योन्य श्लिष्ट है। प्रमाण रूप श्रीचक्र के अन्तर्गत मातृकाओं की व्यवस्था के अवलोकन से सिद्ध होता है कि चतुर्दशार आदि प्रत्येक स्कन्ध में त्रिकोणों का जो श्लेश है वह चिद्रूप में अवस्थित शिव-जीव की दशाओं के अन्योन्य श्लिष्ट स्फुरण का द्योतक है। इसके अतिरिक्त मूल मातृका मन्त्र के स्वर स्पर्श एवं व्यापक खण्डों के अनुलोम एवं विलोम प्रवर्तन से आविर्भूत प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप व्यवस्था के कारण अन्योन्य लीन जीव-शिव की दशाओं के पर्यायात्मक उल्लास का ज्ञान होता है। अर्थात् जाग्रत आदि दशाओं की प्रवृत्ति के बाद निवृत्ति एवं निवृत्ति के अनन्तर प्रवृत्ति का क्रम निरन्तर प्रवाहित रहता है।

जीवात्मक जड संसरण में इच्छा सुषुप्ति है, ज्ञान स्वप्न है तथा क्रिया जाग्रत है। शिवात्मक अजड संसरण में अभेद जाग्रत इच्छा है, अभेद स्वप्न ज्ञान है, एवं अभेद सुषुप्ति क्रिया है। वह अभेद पद तुर्य नाम से व्यवहृत है। प्रथम विसर्ग की व्याप्ति होती है जिसमें प्रवृत्ति अभिमुख शिव का सुषुप्ति से जाग्रत पर्यन्त संसरण होता है। इस संसरण में अभेद रूप प्रकाशात्मक शिव ही जीव के रूप में परिणत हो जाता है। तद्नन्तर जीव जब निवृत्ति मार्ग ग्रहण करता है तब जाग्रत से सुषुप्ति पर्यन्त अभेद संसरण होता है। निवृत्ति रूप संसरण में जीव पुनः शिव स्वरूप हो जाता है तथा शिव नाम से व्यवहृत होता है। परम गुरु सिद्ध स्वतन्त्रानन्दनाथ का यह अकाट्य सार-भूत सिद्धान्त है।

इस प्रकार जीव एवं शिव में कोई भेद नहीं है, केवल दशाओं के प्रवर्तन के कारण भेद प्रतीति मात्र होती है। दशाओं के रूप में शिव का संसरण नैसर्गिक है। फल स्वरूप प्रवृत्ति एवं निवृत्ति से प्रादुर्भूत भेदाभेद रूप दशाओं का अन्योन्य श्लेष भी नैसर्गिक प्रतिपादित किया गया है। इस प्रकार अभेदात्मक शिव एवं भेदात्मक शक्ति का श्लिष्ट स्वरूप सिद्ध होता है अर्थात् शिव के अभ्यन्तर में शक्ति एवं शक्ति का अवस्थान है।

श्री चक्र का स्वरूप

शिव-शक्ति के स्वरूप का श्लेषात्मक स्वभाव श्रीचक्र में चित्रित किया गया है। शिव की अभेदात्मक जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति दशाओं के बोधक तीन शैव त्रिकोण है एवं भेदात्मक सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत अवस्थाओं को तीन त्रिकोणों के द्वारा चित्रित किया गया है जो शाक्त त्रिकोण के नाम से व्यवहृत है। यह शिव त्रिकोण एवं शाक्त त्रिकोण अन्योन्य श्लिष्ट चित्रित है। जब विसर्ग का उन्मेष होता है तब कारण रूप चित्-तत्त्व कार्य रूप चैत्य से आवृत हो जाता है, अतः चित् रूप तत्त्व की प्रच्छन्नता को प्रदर्शित करने के हेतु शिव त्रिकोणों को अधःमुख व्यञ्जित किया जाता है एवं क्रियात्मक विसर्ग शक्ति के भेद रूप बहिर उल्लास को ऊर्ध्व-मुख शाक्त त्रिकोणों के द्वारा व्यञ्जित करते हैं। इस प्रकार सृष्टि क्रम से श्रीचक्र का चित्रण करने से ज्ञानात्मक विन्दू के आवृत हो जाने के कारण शिव चक्रों की अधोमुखता का सम्पादन किया गया है। संहार क्रम से श्रीचक्र का चित्रण करने पर विन्दू के उन्मेष के कारण क्रिया-शक्ति का संहार हो जाता है अर्थात् विन्दु के अन्तः में लय हो जाता है अतएव शक्ति की लयवस्था (अपकर्ष) को प्रदर्शित करने के हेतु शक्ति-चक्रों की अधोमुखता प्रतिपादित की जाती है एव उत्कर्षता के कारण शिव त्रिकोणों को ऊर्ध्व-मुख निरूपित किया जाता है।

श्रीचक्र के अन्तर्गत शाक्त एवं शिव-त्रिकोणों के श्लेष से अष्टकोण, दशार-द्वय, एवं चतुर्दशार के स्वरूप का आविर्भाव होता है। विसर्ग व्याप्ति में शिव जब प्रवृत्ति मार्ग ग्रहण करते है तब भेदात्मक सुषुप्ति, जाग्रत एवं स्वप्न के द्योतक चतुर्दशार, दशार-द्वय, एवं अष्टार चक्र क्रमशः निरूपित किये जाते हैं जो शाक्त-त्रिकोण के नाम से व्यवहृत हैं। जब विन्दु व्याप्ति में निवृत्ति की ओर संसरण होता है तब वही अष्ट-कोण, दशार-द्वय, एवं चतुर्दशार चक्र अभेद-जाग्रत अभेद-स्वप्न, एवं अभेद-सुषुप्ति के द्योतक हो जाते हैं। तथा शिव-त्रिकोणों के नाम से व्यवहृत किये जाते हैं।

पशु दशा में जडत्व के कारण सुषुप्ति की शशि, प्रकाशात्मकता के कारण जाग्रत को सूर्य एवं चैत्य के संहारक होने से स्वप्न को अग्नि-रूप प्रतिपादित किया गया है, तथा शिव दशा में अभेद अर्थात एक रस जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति को सकल विश्व की संहारात्मक दशा होने के कारण अग्नि रूप निरूपित किया गया है। पशु दशा में शशि प्रमाता, वह्नि प्रमेय

एवं क्रियात्मक सूर्य प्रमाण पद है। शिव दशा में इसके विलोम क्रम के कारण अग्नि प्रमाता, शशि प्रमेय एवं ज्ञानात्मक तुर्य-रवि प्रमाण पद है। इस प्रकार निरूपण से पशु पद में सुषुप्ति के द्योतक चतुर्दशार को प्रमातृ पुर, सुषुप्ति पद, अथवा सौम्य खण्ड के नाम से प्रतिपादित किया जाता है। दशार द्वय को जाग्रत खण्ड, प्रमाण पद अथवा सौर खण्ड तथा अष्टार को प्रमेय पद, अग्नि अथवा प्रमेय पुर कहा जाता है।

जडात्मक संसरण की अन्तिम सीमा जाग्रत है जहाँ जीव की प्रतिष्ठा है एवं अजड अभेदात्मक संसरण की सीमा सुषुप्ति है जहाँ शिव पद व्यवस्थापित है। जाड्य से रहित तुर्यात्मक परशम्भू पद सम पद है। अत: यह जाग्रत एवं सुषुप्ति के मध्य में निरूपित किया गया है। यह मध्य पद सन्धि रूप है जो विकल्प एवं अविकल्प के मध्य में व्यवस्थित है। अभेद विकल्प पद जाग्रत है एवं निर्विकल्प अवस्था सुषुप्ति है; अत: विकल्प एवं निर्विकल्प के मध्य में समान रूप से व्यापक होने के कारण पर-शम्भू रूप तुर्य की अनुभूति जाग्रत एवं सुषुप्ति के मध्य में होती है। यह मध्य पद प्राणापान की सन्धि अवस्था ही है। रहस्य मार्ग, सिद्धमत, समयाचार तथा हठ योग का यही लक्ष्य है ऐसा मेरा मत है तथा योगवशिष्ठ में भी कहा है –

"प्राणक्षय पदान्तस्थमपानक्षयकोटिगम्।
अपान प्राणर्योमध्यं चितादात्मानमुपास्महे।।"

विकल्पाविकल्प उभयात्मक मध्य पद से ही विकल्प एवं निर्विकल्प का आविर्भाव होता है। सुषुप्ति खण्ड के पञ्चम एवं षष्ठम् सूत्र में मध्य पद को सम पद एवं दो प्रकार के विषम पदों के रूप में प्रतिपादित किया गया है तथा तृतीय खण्ड के चतुर्थ एवं पञ्चम सूत्रों में परा-वागात्मक विमर्श को अहंता तथा इदमत्ता के समत्व के रूप में प्रतिपादित किया है। श्रीचक्र के अन्तर्गत यह सम पद विन्दु-त्रिकोण चक्र के द्वारा प्रदर्शित है। यह उभयात्मक चक्र विन्दु एवं विसर्ग अर्थात शिव-शक्ति के सामरस्यात्मक स्वरूप का बोधक है। शिव का बोधक वर्ण क्ष एवं शक्ति का जीव रूप में बोधक मकार है, अतएव मध्य पद को पञ्चम खण्ड में त्रिपुरेश्वरी के रूप में प्रतिपादित किया है तथा मकारात्मक जीव एवं क्षकारात्मक शिव का सामरस्य होने से त्रिपुरेश्वरी को क्ष्मात्माङ्गिनी नाम से व्यवहृत किया है।

रहस्य सिद्धान्त के अनुसार सुषुप्ति, जाग्रत, एवं स्वप्न प्रत्येक अवस्था में एक रस चित्-अचित् तत्त्वों का जडात्मक एवं अजडात्मक दो प्रकार का स्पन्द होता है। यह दो प्रकार का स्पन्द युगपत् प्रवर्तित होने से यामल नाम से सम्बोधित है। जडात्मक एवं अजडात्मक स्पन्द अन्योन्य व्यापी अर्थात् एक रस होता है जिसको सामरस्य नाम से व्यवहृत किया है। इस प्रकार प्रत्येक दशा में स्पन्द-द्वय, यामलत्व एवं सामरस्य का सर्वत्र आविर्भाव होता है। इस सिद्धान्त को श्रीचक्र में सुषुप्ति आदि दशाओं के बोधक चतुर्दशार आदि चक्रों में रहस्य रूप में समाविष्ट किया गया है। चक्रों का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत करते हैं –

चतुर्दशार चक्र

चतुर्दश+अर = चतुर्दशार; चतुर्दश का अर्थ है चौदह तथा अर माने अक्षर, वर्ण। चतुर्दशार सुषुप्ति दशा की प्रतिकृति है, सुषुप्ति के बोधक स्वर वर्ण है। अतः यह चक्र अ से औ पर्यन्त चौदह वर्णों से समाविष्ट होने के कारण चतुर्दशार चक्र नाम से व्यवहृत है। चतुर्दशार जड एवं अजड दो भागों में विभाजित है प्रथम भाग में अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ ह्रस्व वर्णों का विन्दू की कलाओं के रूप में प्रदर्शित किया है तथा दूसरे भाग में जडात्मक विसर्ग की कलाओं के रूप में सात दीर्घ स्वर आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ, ऐ, औ को समाविष्ट किया है। अजड एवं जड पदों के प्रमाता-द्वय विन्दू-विसर्ग को कलाओं के सहित अष्ट-दल-पद्म एवं षोडश-दल-पद्म चक्रों के द्वारा पृथक से दर्शाया गया है।

जब विसर्ग का प्राधान्य होता है तब विसर्ग का बाह्यतः प्रसार होता है एवं विन्दू उसके अन्तः में व्याप्त रहता है। जब बिन्दू के उन्मेय होने पर विन्दू का प्राधान्य होता है तब विसर्ग का विन्दू के अन्तः में समावेश एवं विन्दू का बाह्यतः अवस्थान होता है। इस प्रकार विन्दू एवं विसर्ग की बाह्य एवं अन्तः स्थिति को प्रवृत्ति एवं निवृत्ति-रूप संसरणों में दर्शाने के हेतु तथा व्याप्ति क्रम में विन्दू-विसर्ग के स्वरूप के प्रतिपादन के हेतु इनको अष्टदल एवं षोडश दल चक्रों के रूप में पृथक से प्रदर्शित किया है।

सुषुप्ति विश्रान्त अवस्था है जिसके अन्तर्गत सकल विश्व वासना रूप में स्थित रहता है। सकल विश्व इच्छा, ज्ञान, क्रिया का स्वरूप है। विसर्ग की इच्छा को इकार, विन्दू की इच्छा को उकार एवं ज्ञान-क्रिया को ऋकार

एवं लृकार के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। संकोच एवं संकोच-त्याग के वश अकार ही विन्दू एवं विसर्ग के रूप में परिवर्तित हो जाता है। (संकोच का अर्थ है भेद-रूपता एवं संकोच-त्याग का अर्थ है अभेद रूपता) इससे स्पष्ट होता है कि अकार ही भेद रूप विसर्ग है एवं अकार ही अभेद रूप विन्दू तथा विन्दू-विसर्ग का सामरस्य पद भी अकार ही है। अकार के आश्रय के बिना विन्दू (अं) एवं (अः) विसर्ग का उच्चारण सम्भव नहीं है।

निष्पन्द सामरस्य-पद अकार से इच्छा, ज्ञान, क्रिया के द्योतक इकार, उकार एवं ऋकार, लृकार का स्पन्द होता है। जब यह स्पन्द विसर्ग रूप में होता है तब प्रमातृ भूत विसर्ग के अकार के साथ ही इकार, ऋकार का विसर्ग प्रमाता की इच्छा, ज्ञान, क्रिया के बोधक के रूप में बाह्य अर्थात् बहिर्मुख स्पन्द होता है। जब विन्दू रूप अकार का स्पन्द होता है तब निवृत्ति रूप वर्ण चतुष्टय (अ,इ,ऋ,लृ) का अकार के गर्भ से ही आविर्भाव होता है। अतएव उपनिषद निरूपित करता है कि अकार से ही विन्दू-विसर्ग का अन्तः एवं बाह्य स्पन्द होता है, तथा सकल संसार की कलाप भूत पञ्च भूतात्मक उत्पत्ति अकार से ही होती है तथा मातृका वर्णों का उदय एवं विश्रान्ति भूमि भी अकार ही है।

द्वितीय खण्ड के तृतीय सूत्र में प्राण वायु की अल्प वृत्ति एवं महावृत्ति के सादृश्य के आधार पर वर्णों एवं पञ्च महाभूतों में सादृश्य सम्बन्ध तथा उच्चारण स्थानों के अपचय एवं उपचय का निरूपण किया गया है। इस सिद्धान्त के आधार पर कण्ठज वर्ण अकार में प्राण की महावृत्ति निरूपित है। अतएव अकार को, प्रथम उच्चारित होने के कारण एवं महावृत्ति रूप होने से शिव स्वरूप निरूपित किया है। कहा भी है **"अकारः सर्व वर्णाग्र्य प्रकाशः परमः शिवः"**। भर्तृहरि ने भी वाक्य प्रदीप नामक ग्रन्थ में अकार को शब्दब्रह्म रूप स्वीकार किया है। कहा है –

"अनादि निधनं ब्रह्म शब्द तत्त्वं प्रचक्षते।
विवर्ततेऽर्थ भावेन प्रक्रिया जगतोयथा।"

श्रुति भी कहती है **"अकारः वै सर्वावाक।"** तथा तन्त्र में भी अकार को देवी का अक्षय स्वरूप स्वीकार किया गया है –

वन्दे तामहमक्षय्यामकाराक्षर रूपिणीं।

सम-विषम पद

चतुर्दशार चक्र द्वारा बोधित सुषुप्ति पद सम पद है। यह निष्पन्द स्थिति है। इस पद में विन्दू एवं विसर्ग प्रमाता द्वय के सहित इच्छा द्वय एवं ज्ञान रूप इन्द्रियों तथा क्रिया रूप कर्मेन्द्रियों के साथ छः पद है जिनको अ,इ,उ,ऋ,लृ,अ वर्णों से दर्शाया गया है। इस सम पद से स्पन्द एवं अस्पन्द नामक द्विविध विषम पदों का आविर्भाव होता है। विसर्ग व्याप्ति में जब चैत्य का उत्कर्ष होता है तब विन्दू के अकार का लोप हो जाता है तथा इच्छा रूप उकार ही विन्दू का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार यह स्पन्द विषम पद अ,इ,उ,ऋ,लृ पाच वर्णों से युक्त होने से पञ्चाङ्गक पद कहा गया है। जब चित् विन्दू का उत्कर्ष होता है तब विन्दू के अन्तः में विसर्ग का लय हो जाने से विसर्ग के अकार का लोप हो जाता है एवं विन्दू की इच्छा के बोधक उकार का विन्दू के बोधक अकार में अन्तर्भाव हो जाता है। अतएव यह दुसरा विषम पद अ,इ,ऋ,लृ चार वर्णों से युक्त प्रतिपादित है; अतः इसको चतुरङ्ग कहा गया है।

पञ्चाङ्गक विसर्ग पद में सुषुप्ति जाग्रत, स्वप्न, तुर्य, तुर्यातीय पाँच अवस्थाओं का आविर्भाव होता है जो चतुर्दशार, दशार द्वय, अष्टकोण, त्रिकोण एवं विन्दू चक्रों के द्वारा श्रीचक्र के अन्तर्गत प्रदर्शित है। विसर्गात्मक यह पाँच त्रिकोण शाक्त त्रिकोणों के नाम से प्रसिद्ध हैं। निवृत्ति रूप चतुरङ्ग विन्दू पद में अभेद-जाग्रत, अभेद-स्वप्न, अभेद-सुषुप्ति के बोधक अष्टार, दशार द्वय, चतुर्दशार नामक तीन चक्र है एवं तुर्य नामक चतुर्थ विन्दू चक्र है। यह चार चक्र शिव-त्रिकोणों के नाम से व्यवहृत हैं। इस प्रकार पाँच शाक्त एवं चार शिव-त्रिकोणों के योग से श्रीचक्र के नव त्रिकोणों का सम्पादन किया गया है।

सम विषम रूप पदत्रय के अन्तर्गत निष्पंद विश्रांति रूप समपद में निर्विकार अनुभूति होती है अतः यह मूल प्रकृत पद है। विषम पद चमत्कार मात्र है। सम पद विषमात्मक स्पन्द द्वय का उपादान है। यहाँ स्पंद एवं अस्पंद रूप दो विरोधी प्रवाहों का निष्पंद सम पद में सामान्याधिकरण प्रतिपादित किया गया है। सार रूप में कहा जा सकता है कि निष्पंद तत्त्व की अनुभूति के साथ ही, चित् एवं अचित् व्याप्ति के उत्कर्ष एवं अपकर्ष के कारण, स्पंद एवं अस्पंद रूप दो प्रकार के स्फुरणों की व्यावृत्ति रूप अनुभूति होती है।

सामरस्य

ह्रस्व स्वर रूप अष्ट-दल-पद्म के बिम्ब के रूप में प्रतिपादित विन्दू को अनल अर्थात अग्नि रूप कहा जाता है। आठ दीर्घ स्वरों की सोलह मात्राओं से युक्त षोडश दल पद्म के द्वारा चित्रित विसर्ग चन्द्र रूप है। प्रत्येक वर्ण में दो मात्राओं के योग से दीर्घ स्वर वर्णों की मात्राओं का योग सोलह हो जाता है। विन्दू की सत्ता से ही विसर्ग की सत्ता का सम्पादन होता है, अत: षोडश मात्राओं में विन्दू की आठ मात्राएं भी सम्मिलित है तथापि विन्दू को पृथक से अष्ट दल पद्म में प्रदर्शित करने के कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि विसर्ग पद विन्दू से पृथक है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि विसर्ग एवं विन्दू के मिश्र पद में विन्दू का रूप अर्कात्मक है न कि अनलात्मक अर्क का भेदात्मक चमत्कार होता है अत: अर्क में सविशेष जगत आत्मसात होता है तथा अनल में अभेदात्मकता के कारण निर्विशेष जगत् आत्मसात होता है। इस प्रकार अभेद पद के अधिष्ठाता विन्दू को अर्क रूप में टीकाकार ने प्रतिपादित किया है। चन्द्र एवं अर्क रूप विसर्ग विन्दू की मात्राओं का योग चौबीस होता है, जो विन्दू की आठ मात्राओं की तीन गुणित है। प्लुत में तीन मात्राएं होती है जिससे चौबीस मात्राओं में आठ प्लुत बनते हैं। इस प्रकार सामरस्य पद में चन्द्रार्करूप विसर्ग विन्दू की मात्राओं के योग से चौबीस मात्राओं का सम्पादन होता है एवं यह सामरस्यात्मक पद ही महाविन्दू है जो अनल का स्वरूप है। इस पद को सूर्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती है, अपितु इस पद में चन्द्र एवं अर्क का योग होने से इस को अनलात्मक निरूपित करना ही युक्ति युक्त है।

प्लुत नासान्तर्वर्ति नाद है। अनुनासिक वर्णों का मुख एवं नासिका से उच्चारण होता है। इस कारण भी प्लुत को सामरस्यात्मक निरूपित किया गया है। प्रवृत्यात्मक एवं निवृत्यात्मक स्पन्द द्वय का उपादान भूत सामरस्यात्मक निष्पन्द तत्त्व ही शाश्वत महातत्त्व है, जिसको अनुमानत: श्रीचक्र के अन्तर्गत वृत्तत्रय के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। अर्थात एक मात्रिक अर्क विन्दू मात्र द्वयात्मक (विसर्ग) चन्द्र एवं प्लुतात्मक अनल को एक वृत्त के द्वारा प्रदर्शित करने के हेतु वृत्तत्रय का चित्रण किया गया है।

इस प्रकार अविभेद, विभेद एवं मिश्र अङ्गों से घटित स्वर वर्ग की अर्थमयी एक शाङ्करी मूर्ति महात्माओं के हृदय में सुशोभित होती है। मध्य में

विमिश्रपद का लक्षक पूर्ण विन्दू ऊर्ध्व भाग में चित् पद का लक्षक खण्ड विन्दू एवं अध: तल में अचित् पद का लक्षक खण्ड विन्दू अवस्थित है।

यह पर-शिव की सूर्य चन्द्र एवं अग्नि रूप श्रीपादुका की उपासना है।

दशारद्वय

श्रीचक्र के अन्तर्गत दश दश वर्णों के दो दशकों से सम्पादित दशार-द्वय जाग्रत अवस्था का प्रतिविम्ब है। यह दशा विसर्गात्मक संसरण की अन्तिम सीमा है। इस अवस्था में शिव पूर्ण संकोच ग्रहण कर जीव भाव में अवतरित होता है। पृथ्वी आदि पञ्च महाभूत, गन्ध आदि पञ्च तन्मात्राएं, कर्मेन्द्रियाँ एवं ज्ञानेन्द्रियाँ जाग्रत तत्त्व के अवयव हैं, जिनका बोध क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग में व्यवस्थित ककार से नकार पर्यन्त वर्णों के द्वारा होता है, अतएव जाग्रत तत्त्व के प्रतिबिम्ब रूप दशार द्वय में क से न पर्यन्त वीस वर्णों का समावेश है। माया के प्राबल्य से प्रथम जड़ का आभास होता है अत: पञ्चभूत एवं पञ्च तन्मात्राओं के बोधक क वर्ग एवं च वर्ग को जड़ स्पन्द के रूप में महामन्त्र के अन्तर्गत प्रथम व्यवस्थापित किया गया है एवं श्रीचक्र में प्रथम दशार के रूप में प्रदर्शित है। जड़ात्मक स्पन्द से वेद्य जगत् की उत्पत्ति होती है। तदनन्तर वेदक अजड़ तत्त्व का दशेन्द्रियों के रूप में आविर्भाव होता है। महामन्त्र में ट वर्ग कर्मेन्द्रियों का एवं त वर्ग ज्ञानेन्द्रियों का बोधक है, जिसको श्रीचक्र के अन्तर्गत द्वितीय दशार के द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

स्वभावतया भूत अर्थात प्राणियों का पृथ्वी आदि पञ्च भूतों के स्वरूप में विलास होता है। सुषुप्ति एवं स्वप्न दशाएँ पूर्ण संकोच का विषय नहीं है, अत: इन अवस्थाओं में स्थूल रूप में पञ्चभूतों का उन्मेष नहीं होता है। जाग्रत अवस्था पूर्ण संकोच-पद है अत: इस अवस्था में ही पञ्च भूतों का उन्मेष होता है।

विश्रान्ति-रूप सुषुप्ति से जाग्रत एवं स्वप्नात्मक दो प्रकार का संसरण होता है। अतएव कारण-रूप सुषुप्ति के बोधक अ,इ,उ,ऋ,लृ वर्ण पञ्चक से ही जाग्रत एवं स्वप्न-पद के बोधक स्पर्श एवं अन्त:स्थ वर्णों की उत्पत्ति निरूपित की गई है। 'अकार आदि वर्ण-पञ्चक ईषत्-स्पृष्टता अर्थात ईषत-संकोच के कारण यकार आदि अन्त:स्थ वर्णों के रूप में परिणत हो जाता है। इकार का यकार, ऋकार का रेफ, लृकार का लकार, उकार का वकार

रूप में ईषत्-संकोच हो जाता है। अकार विसर्ग-प्रमाता का स्वरूप है अतः अकार का संकोच नहीं होता है। यही वर्ण पञ्चक नितान्त संकुचित होने पर क वर्ग आदि वर्ग पंचक के रूप में परिणत हो जाता है। इकार, ऋकार, लृकार का संकुचित रूप क्रमशः च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग है तथा उकार का संकोच प वर्ग में होता है। ईषत्-विवृति का विषय अंङ्कुरित होने पर यही स्वर वर्ण-पंचक श,ष,स, ह ऊष्माण वर्णों का रूप धरण कर लेता है। इसका तात्पर्य है कि स्पर्शवर्ण पंचक के रूप में संकुचित अकार आदि वर्ण ही ऊष्माण रूप ग्रहण करते हैं। अतएव च वर्ग का ईषत्-पूर्ण रूप शकार, ट वर्ग का ईषत-पूर्ण रूप षकार, त वर्ग का ईषत-पूर्ण रूप सकार, क वर्ग का ईषत-पूर्ण रूप हकार है। निष्कर्ष के रूप में यह सिद्ध हो जाता है कि कारण रूप अकार आदि वर्ण-पंचक की दशा विशेष ही कार्य रूप समस्त वर्ण है।

ग्रन्थ के द्वितीय-खण्ड के तृतीय-सूत्र में वर्णित प्रक्रिया के अनुसार कण्ठ आदि स्थानों के उच्चय एवं अपचय क्रम की पर्यालोचना से प वर्ग प्रमातृ स्थान निरूपित किया गया है। अवरोह क्रम में मकार से पकार पर्यन्त वर्ण अर्थात म,भ,ब,फ,प वर्ण क्रमशः आत्मा, मन, बुद्धि, अहङ्कार एवं प्रकृति के बोधक हैं। प वर्ग पृथ्वी आदि पञ्च-तत्त्वों का बोधक भी है। इस कारण प्रकृति पृथ्वी का अंश, अहंकार जल का अंश, बुद्धि अग्नि का अंश मन वायु का अंश एवं पुरुष आकाश का अंश है। इसी प्रकार क वर्ग आदि चारों वर्गों में भी प्रथम वर्ण से अन्तिम वर्ण तक पृथ्वी आदि तत्त्वों का रूप प्रतिपादित है। शिव से क्षिति पर्यन्त छत्तीस तत्त्व सम्प्रदाय में निरूपित है। इनके बोधक वर्णों को तालिका के रूप में पृथक से दिया है; एवं चतुर्थ-खण्ड के चतुर्थ-सूत्र में इसका प्रतिपादन है।

प वर्ग से प्रतिपादित प्रकृति आदि पद सूक्ष्म-रूप हैं, अतः यह स्थूल-रूप पार्थिव अण्ड के कारण हैं। अर्थात् प,फ,ब,भ वर्ण चतुष्टय क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग द्वारा बोध्य पृथ्वी आदि तत्त्वों के बीज हैं। अतएव श्रीचक्र के अन्तर्गत प वर्ग के चार वर्णों को रवि के (प्रमाण-पद के) बिम्ब स्वरूप होने के कारण पृथक से चतुरस्त्र चक्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है। दशार युग्म में प्रदर्शित कलाएं सूर्य की रश्मियों का स्वरूप हैं; तथा चतुरस्त्र में प्रदर्शित कलाएं बिम्ब रूप हैं। इस प्रकार स्पर्श कदम्बक के चौबीस वर्णों को प्रथम दशार, द्वितीय दशार एवं चतुरस्त्र नामक तीन चक्रों के द्वारा प्रदर्शित

किया गया है प्रथम दशार अचित् स्पन्द, द्वितीय दशार चित् स्पन्द एवं चतुरस्र चिदचित् उभयात्मक स्पन्द है।

जाग्रत अवस्था में अनुभूति भेदात्मक होती है। इस अवस्था में विन्दू यद्यपि विसर्ग के अन्त: में लीन रहता है तथापि बिन्दू का पूर्ण अवच्छेद नहीं होता है। कारण यह कि विन्दू की सत्ता से ही विसर्ग का अस्तित्व सिद्ध है। अत: विसर्गावस्था में, विन्दू एवं विसर्ग की पृथकता के कारण, भेदात्मक अनुभूति होती है। इसी कारण जाग्रत रूप सूर्य की कलाओं की वेद्य एवं वेदक दशारों के एक एक वर्ण के योग से बारह संख्या निरूपित की गई। इसमें प वर्ग के चार वर्णों से सम्पादित दो कलाएं भी सम्मिलित है।

चतुर्दशार की भांति जाग्रदात्मक सौर खण्ड में भी विन्दू एवं विसर्गात्मक प्रमाता द्वय को चतुरस्र चक्र द्वारा पृथक से चित्रित किया है।

अष्टार चक्र

स्वप्न अवस्था का प्रतिबिम्ब अष्टार चक्र है, जिसमें य कार से श कार पर्यन्त आठ वर्णों का सन्निवेश है। यह आठ वर्ण अग्नि की आठ कलाओं का रूप है। यह संहार दशा है जिसमें जाग्रत आदि की क्रिया के स्वरूप का संहार हो जाता है। अष्टार के भी जड एवं अजडात्मक दो शिलष्ट भाग है; जिनके द्वारा चित् एवं चैत्यात्मक स्पन्द-द्वय का बोध होता है। य,र,ल,व वर्ण वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी के बीज है; एवं ईषत-सृष्टि के कारण जडात्मक होने से भेद रूप है। श,ष,स,ह शुद्ध विद्या, ईश्वर, सदाशिव, एवं शक्ति तत्त्वों के बोधक हैं। एवं ईषत् विवृति के कारण चित् रूप है। अष्टार प्रमातुपुर स्वप्न-पद अथवा आग्नेय-खण्ड नाम से प्रसिद्ध है।

अष्टार चक्र के प्रमाता द्वय विन्दू एवं विसर्ग को विन्दू एवं त्रिकोण चक्रों के द्वारा पृथक से श्रीचक्र में प्रदर्शित किया है। विन्दु-त्रिकोण अग्नि का बिम्ब रूप है तथा अष्टार अग्नि की रश्मि रूप कलाओं का चक्र है। इस प्रकार सुषुप्ति, जाग्रत स्वप्न, तुर्य, तुर्यातीत अवस्थाओं के बोधक चतुर्दशार, दशारद्वय, अष्टार चक्र एवं त्रिकोणविन्दू चक्र है; जो केवल चार दशाएं ही स्वीकार करते हैं उनकी दृष्टि से विन्दू-त्रिकोण एक चक्र है तथा जो पांचवी अवस्था भी स्वीकार करते है तथा तुर्य को विकल्प-श्लेष के कारण पूर्णतया निर्विकल्प नहीं मान्य करते हैं उनकी दृष्टि में तुर्यातीत नामक

पांचवी दशा भी है जो सर्वथा निर्विकल्प है। ऐसी दशा में त्रिकोण एवं बिन्दू पृथक चक्र है तथा त्रिकोण तुर्य का एवं बिन्दू तुर्यातीत का द्योतक है। टीकाकार के मत से चार अवस्थाओं को स्वीकार करना ही युक्ति युक्त है। विशेष विवरण पञ्चम खण्ड के १९ तथा २० सूत्रों में देखना चाहिये।

ग्रन्थ में यन्त्र का उद्धार उपलब्ध नहीं है, अतएव अन्य मतों में ग्राह्य श्रीयन्त्र के स्वरूप को यहाँ उद्धृत करते हैं। इसके प्रमाण में निम्न पद्यों का उल्लेख है –

श्री चक्र का स्वरूप

"विन्दु त्रिकोण संयुक्तं वसुकोण समन्वितम्।
दश कोण द्वयोमेतं भुवनार समन्वतिम्।।
दलाष्टकमलोपेतं दलषोडशकान्वितम्।
त्रिवृत्तं भूपुरयुतं सोमसूर्याग्नि रूपिणाम।।"

श्रीमद्भगवत्पाद श्री शङ्कराचार्य जी ने आनन्द लहरी में श्रीयन्त्र का स्वरूप **"चतुर्भि : श्री कण्ठैशिवयुवतिभि पञ्चभिरपि** श्लोक में निरूपित किया है।
(सौन्दर्य लहरी - ६)

यामल तन्त्र में यन्त्र के स्वरूप को निम्नलिखित पद्य में उद्धृत किया है –

"विन्दु त्रिकोण वसुकोण दशार युग्म,
मन्वस्र नाग दल संयुत षांडशारम्।
वृत्तत्रयं च धरणी सदनत्रयं च
श्रीचक्रराजमुदितं परदेवतायाः।।"

"शिव शक्तिमयं ज्ञेयं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः" श्रीचक्र शिवशक्ति का वपु है। शिव एवं शाक्त चक्रों को अन्य ग्रन्थों में निम्नाङ्कित नामों से सम्बोधित किया गया है –

"त्रिकोणमष्टकोण च दशकोण द्वयं तथा।
चतुर्दशारं चैतानि शक्ति चक्राणि पञ्च च।।
विन्दुश्चाष्टदलं पद्म पद्मं षोडश पत्रकम्।
चतुरस्रं च चत्वारिं शिवचक्राण्यनुक्रमात्।।"

प्रस्तुत ग्रन्थकार के मत में शिव चक्रों का रूप किञ्चित भिन्न है, जिसको

उपर्युक्त प्रकार से विस्तारपूर्वक उद्धृत किया है। वृत्त त्रय का विवरण सूत्रों में उपलब्ध नहीं है। अतः भूमिका में सौन्दर्य लहरी के टीकाकार लक्ष्मीधर के मतानुसार वृत्तत्रय को विन्दू, विसर्ग एवं सामरस्य की समष्टि के रूप में संकेत कर दिया है।

परावाकात्मक विमर्श

विमर्श ही कार्य एवं कारण दोनों रूपों में स्फुरित होता है। जो विमर्श परावाक् के रूप में सुषुप्ति के अन्तर्गत विलीन रहता है; व्युत्थान दशा में उसी विमर्श का विषय एवं इन्द्रियों के रूप में प्रादुर्भाव होता है, कारण-रूप सुषुप्ति के अन्तर्गत परावाक्-रूप विमर्श प्रमाण है अतः कार्य-रूप जाग्रत् एवं स्वप्न में भी विमर्श को प्रमाण-रूप प्रतिपादित करना उचित है, क्योंकि कारण के क्रम के समान ही कार्य का क्रम भी होता है। कार्यात्मक जाग्रत एवं स्वप्न दशाओं में इन्द्रियां एवं मन से विश्व की अनुभूति होती है अतः यह विमर्शात्मक सिद्ध हैं।

सूत्रकार ने चित्-प्रकाश को चैत्यात्मक विमर्श का धर्म एवं विमर्श को चित्-प्रकाश का धर्म निरूपित किया है। इस दृष्टि से अन्योन्य धर्म-धर्मी सम्बन्ध के कारण चिदचित् का सामरस्य-रूप विश्रान्ति-गगन भी विमर्श का धर्म सिद्ध हो जाता है। अतः विमर्शात्मक परा-वाणी समस्त चिदचित् जगत् की कारण सिद्ध होने से शास्त्र में उपासनीय प्रतिपादित है। सिद्धान्तः चैतन्य रूप परम व्योम की उपासना का ही शास्त्र में प्रतिपादन है, अतएव यहाँ उपासनीयता का निरूपण कर सूत्रकार ने परावाक् को निर्विमर्श, जाड्य-रहित चैतन्य कला का स्थान-निरूपित किया है। व्युत्थान दशा में भी परावाक् प्रमाण रूप है अतः श्रीचक्र के अन्तर्गत इसको प्रमाणात्मक चतुरस्र चक्र के रूप में प्रदर्शित किया गया है। चतुर्थ खण्ड के सोलहवें सूत्र में तथा पञ्चम खण्ड के अन्तिम चार सूत्रों में चतुरस्र का स्वरूप एवं उपासनीयता का विशेष प्रतिपादन अवलोकनीय है।

चित्-अचित् की सामरस्य रूपिणी अभेदात्मक परावाक् के इदं एवं अहं नामक दो अंश हैं। जब इदं अंश का प्रधान रूप से स्फुरण होता है अर्थात् जब जीव स्वय को देह रूप समझता है तब इस इदमाकार प्रतीति में परावाक् बन्धकर्तृ निरूपित है। जब अहं अंश का प्राधान्य होता है तब परावाक् का स्वरूप मोक्ष दायक निरूपित है। सर्वत्र अहं अंश की प्रतीति का नाम मोक्ष है।

इदं एवं अहमांत्मक स्फुरण द्वय के समत्व एवं असमत्व के आधार पर परावाक् तीन रूपों में विभक्त है। इदं एवं अहं अंश के समत्व से एक भाग, विषम रूप इदं अंश के प्राधान्य से दुसरा भाग, तथा अहं अंश के प्राधान्य से तीसरे भाग का निरूपण किया गया है। त्रिरूप विमर्श संगति वश धर्मी की भी तीन रूपों में सिद्धी होती है। जब विमर्श में अहंता का प्राधान्य होता है तब चित् तत्त्व व्यापक होने के कारण धर्मी होता है; जब इदं का प्राधान्य होता है, तब अचित् व्यापक होने के कारण धर्मी होता है, तथा जब चित् चैत्य उभय का प्राधान्य होता है तब धर्मी चित्-चैत्य रूप होता है जो निस्पन्द पद है।

तात्पर्य यह है कि सुषुप्ति दशा में जो विमर्श नि:शब्दता के कारण चित्-चैत्य रूप धर्मी के आश्रित रहता है वही विमर्श संसार पद में विकल्प का मूल होने से चित् एवं चैत्य रूप प्रमाता द्वय का आश्रय बन जाता है अर्थात् चित् एवं चैत्य प्रमाताओं का आश्रय होने से विमर्श का ही, बाह्य से अन्त: में एवं अन्त: से बाह्य पद में स्वरस प्रवाह होता है।

स्वप्न दशा में विमर्श का मन एवं बुद्धि आत्मक अन्त: इन्द्रियों के रूप में स्फुरण होता है। स्वप्न शब्द प्रकृति संसार का भी उपलक्षक है अत: प्रकृति संसार में भी विमर्श का मनो बुद्ध्यात्मक स्वरूप है। तदनन्तर सुषुप्ति की निवृत्ति होने पर जाग्रत दशा में विमर्श का श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियों के रूप में एवं वाक् आदि कर्मेन्द्रियों के रूप में स्फुरण होता है। (ख.२ सू.७, ख.३)

विपरीत-प्रतीति

स्वप्न दशा में विमर्श का चमत्कार माया के कारण होता है अत: इसको मायाण्ड के नाम से सम्बोधित किया जाता है। जाग्रत में घट पट आदि वस्तुओं की प्रत्यक्ष अनुभूति होने के कारण विमर्श का पूर्ण संकोच हो जाता है अत: यह क्रियात्मक पूर्ण पद है। सुषुप्ति में घट पट आदि की प्रतीति न होने से यह विश्रान्ति रूप पूर्ण पद है किन्तु स्वप्न में विमर्श का ईषत् संकोच होता है। इस प्रकार तीनों अवस्थाओं में माया के कारण विमर्श की ही विपरीत प्रतीति होती है अर्थात् सुषुप्ति में जिस विमर्श की अनुभूति विश्रान्ति रूप में होती है, वही विमर्श ईषत् संकोच के कारण ज्ञान रूप से अन्त: में अविर्भूत होता है तथा पूर्ण संकोच के कारण वही विमर्श

जाग्रत में क्रिया रूप होने से जीव के रूप में प्रकट होता है। वस्तुत: माया अथवा विद्या नामक कोई पृथक तत्त्व नहीं हैं अपितु इदंता के औल्वण्य (दीप्ति) का नाम है तथा अहंता के औल्वण्य का नाम विद्या है।

मन का स्वरूप

स्वप्नात्मक अन्त:करण-संसार में मन ही ज्ञान रूप प्रमाण है। इस अवस्था में इन्द्रियों का स्वतन्त्र रूप से अपने अपने विषयों में प्रवर्तन नहीं होता है। बर्हि उन्मीलित श्रोत्र आदि इन्द्रियों का जब अन्त: में प्रवर्तन होता है तब श्रोत आदिक के आन्तरिक रूप को मन नाम से व्यवहार किया जाता है। जब इन इन्द्रियों का बर्हिप्रवर्तन होता है इनको श्रोत्र आदि के नाम से व्यवहृत किया जाता है। स्वप्नावस्था में ज्ञानेन्द्रियों के द्योतक लकार को मन कहा गया है तथा रेफ की बुद्धि। अत: कर्मेन्द्रियां जो बुद्धि का स्वरूप है स्वप्नावस्था में उनका भी आन्तरिक रूप ही है। स्वप्नावस्था में मन का ही प्रमाता आदि त्रिपुटी के रूप में चमत्कार होता है। इस अवस्था में कोई तात्त्विक देहात्मक प्रमाता नहीं होता है। स्वप्न में अनुभूत अर्थों का ही वस्तुत: जाग्रत में अनुभव होता है।

स्वप्न अवस्था में महाशक्ति विमर्श का त्रिपुटी के रूप में जो स्फुरण होता है वह मन का ही विलास है तथा मन ही श्रोत्रादि के रूप में बाह्य विषयों के आकार में विलसित होता है। अर्थात् जाग्रत अवस्था में इन्द्रियों के प्रकाश के कारण ही विश्व की अनुभूति अन्त: में होती है। अत: वस्तुत: इन्द्रियां ही विश्व का कारण हैं तथा बाह्य जगत् इन्द्रियों के प्रकाश का रूपान्तर है, एवं इन्द्रियों में ही लीन हो जाता है। अर्थात इन्द्रियों के प्रकाश के उन्मेष से जगत का स्फुरण होता है तथा इन्द्रियों के प्रकाश का उन्मेष न होने पर जगत का उन्मेष नहीं होता है। अत: अन्वय व्यतिरेक से इन्द्रिय प्रकाश ही विश्व का कारण है। कणाद द्वारा प्रतिपादित अणु विश्व का कारण नहीं है। (ख.३ सू.९, ख.४. सू.१२)

जिस प्रकार स्वप्नात्मक पशु दशा में विमर्श की विपरीत प्रतीति होती है, उसी प्रकार जाग्रत में भी विमर्श की प्रतीति विपरीत होती है। चित् व्याप्ति में ज्ञानेन्द्रिय वर्ग का वायु रूप है जो पशु दशा में पृथ्वी के संकोचात्मक रूप में परिवर्तित हो जाता है। ज्ञानेन्द्रियों का बोधक त वर्ग है। विपरीत वायु के द्वारा अन्त: में प्रादुर्भूत वर्गात्मक इन्द्रियों का च वर्गात्मक शब्दादि के रूप में

परिवर्तन हो जाता है। च वर्ग की अपेक्षा त वर्ग अल्पवृत्ति है अत: त वर्ग द्वारा प्रतिपादित इन्द्रियों का रूप स्थूल है तथा च वर्ग द्वारा प्रतिपादित तन्मात्राओं का रूप सूक्ष्म है। अतएव श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियों की शब्द आदि तन्मात्राओं के रूप में प्रतीति होने लगती है।

इसी प्रकार काठिन्य के कारण ट वर्ग द्वारा प्रतिपाद्य कर्मेन्द्रियों के स्वरूप की पृथ्वी आदि के रूप में विपरीत प्रतीति का प्रतिपादन किया गया है। तात्पर्य यह कि पशु दशा में ज्ञानेन्द्रियों द्वारा शब्द आदि विषयों का किञ्चित ज्ञान होता है। चित् व्याप्ति में आत्मा ज्ञान की साधन भूत इन्द्रियों को आत्मसात कर लेता है अत: अशेष ज्ञेय के स्वात्मीकारण के कारण सर्वज्ञ हो जाता है। इसी प्रकार पशु दशा में कर्मेन्द्रियों में केवल वाक् आदि के रूप में किञ्चित कर्तृत्व शक्ति होती है। महाकाश आदि की रचना करने की शक्ति नहीं होती है। चित् व्याप्ति में आत्मा कर्म की साधन भूत समस्त इन्द्रियों को आत्मसात् कर लेता है अत: अशेष कार्य वेद्य के स्वात्मीकरण के कारण आत्मा में सर्वकर्तृत्व शक्ति उत्पन्न हो जाती है। (ख.४, सू.१३-१४)

आवरण

विमर्शात्मक मन से अन्त: प्रपञ्च एवं बहि: प्रपञ्च की उत्पत्ति होती है, जिसके कारण अहं अंश की न्यूनता हो जाने से विमर्श की विपरीत रूप में प्रतीति होने लग जाती है, किन्तु यह प्रतीति पारमार्थिक नहीं है, विद्या के उदय होने पर विमर्श के चमत्कार का पर्यवसान हो जाता है। स्वप्न एवं जाग्रत उभय अवस्थाओं में विमर्श का स्वयं अपनी ही धर्मभूत मन: शक्ति से इस प्रकार आच्छादन हो जाता है, जिस प्रकार मध्यम-दितीय सूर्य स्वयं अपने ही रश्मि-पटल से आच्छादित होकर दृष्टिगत नहीं होता है। स्वप्नावस्था में माया, अविद्या, राग, काल एवं नियति पांच कञ्चुक है, जिनसे विमर्श आच्छादित हो जाता है। प्राकृत-अण्ड-पद में आत्मा, देह, अहङ्कार, बुद्धि, मन तथा पार्थिव अण्ड पद में आकाश, वायु आदि पञ्च-महाभूत आवरण कहे गये हैं। अन्त: कक्षा में चिदात्मक निर्विकल्प परामर्श के कारण शिव का नित्य निरावरण भास होता है, परन्तु प्रवृत्ति रूप स्पन्द के कारण वही शिव अन्त:कक्षा में प्रकृति आदि अन्त:करणात्मक देह से तथा बर्हि कक्षा में पृथ्वी आदि भूतात्मक देह से बन्ध को प्राप्त होकर अपने प्रमातृत्व के वैभव से च्युत हो जाता है एवं प्रमेय रूप में भासित होता है।

इस प्रकार स्वयं की विमर्श-शक्ति से शिव का मूल रूप आवृत्त हो जाता है। (ख.३ सू.९,१५ तथा ख.४ सू.१२,१३,१८)

मनोबुद्धि रूप विमर्श के गर्भ से पिण्डाण्ड एवं महान ब्रह्माण्ड का अविर्भाव होता है। अर्थात् अन्तः प्रपञ्च के उन्मीलन के अनन्तर विमर्श के गर्भ से ही बाह्य प्रादुर्भाव का उन्मीलन होता है। अत्यन्त लौकिक दृष्टि से भी यह सिद्ध है कि स्वप्न में ब्रह्माण्ड की अनुभूति का कारण पिण्डाण्ड है तथा जाग्रत अवस्था में पिण्डाण्ड की अनुभूति का कारण ब्रह्माण्ड है। यह लौकिक प्रतीति दक्षिण मार्गियों का मत है। वाम मार्गीय योगियों का मत है कि पिण्डाण्ड ही ब्रह्माण्ड का कारण है। यामल नामक सिद्ध मत अन्योन्य कारणत्व का प्रतिपादन करता है। अर्थात् अन्तः अनुभूति में पिण्डाण्ड का अङ्ग ब्रह्माण्ड है तथा बाह्य अनुभूति में ब्रह्माण्ड का अङ्ग पिण्डाण्ड है। इस प्रकार शक्त्यात्मक मार्ग पिण्डाण्ड एवं ब्रह्माण्ड में अविनाभाव सम्बन्ध प्रतिपादित करता है।

विचित्रता यह है कि पशु पद में पिण्डाण्ड के अन्तः स्थित ब्रह्माण्ड इस प्रकार प्रतीत होता है जैसे वह पिण्ड से बाहिर स्थित हो। इसका कारण यह कि जीव, शिव स्वरूप होते हुए भी, पिण्ड में स्थित अपने अङ्गों की शक्ति को ब्रह्माण्ड की अपेक्षा अल्प मान्य करता है। अपकर्षात्मक यह संकल्प ही अन्तर्बन्ध है जो कला आदि शब्दों के नाम से व्यवहृत है। इसका तात्पर्य है कि जीव अपने ही संकल्प से बद्ध है।

शिव की, सर्वकर्तृता, सर्वज्ञता, पूर्णता, नित्यता, विभुता नामक पाँच शक्तियाँ हैं। पाँचों शक्तियों से युक्त शम्भू का स्वरूप पूर्ण है तथा इन शक्तियों के संकोच से शिव का स्वरूप संकुचित हो जाता है एवं जीव नाम से व्यवहृत होता है। विमर्श के चमत्कार से विमोहित जीव को अन्तःस्थ ब्रह्माण्ड की बाह्यतः प्रतीति होती है। जब ज्ञान के उदय होने पर वही जीव, पिण्डाण्ड-रूप निज स्वरूप को ब्रह्माण्ड से अधिक समझने लगता है, तब स्वरूप की वास्तविक अनुभूति के कारण विश्वमय एवं विश्वोत्तीर्ण शिवत्व की प्राप्ति होती है।

बीज एवं तत्त्व-बोधक तालिका

बीज	तत्त्व	बीज	तत्त्व
१) कः	पृथ्वी	१३) डः	पाणी
२) खः	जल	१४) ढः	पादौ
३) गः	तेज	१५) णः	वाक्
४) घः	वायु	१६) तः	घ्राणः
५) ङ	आकाश	१७) थः	जिह्वा
६) चः	गन्ध	१८) दः	चक्षुः
७) छः	रस	१९) धः	त्वक्
८) जः	रूप	२०) नः	श्रोत्रम्
९) झः	स्पर्श	२१) पः	प्रकृति
१०) ञः	शब्द	२२) फः	अहंकार
११) टः	पायु	२३) बः	बुद्धि
१२) ठः	उपस्थ	२४) भः	मनः
२५) मः	पुरुषः		
२६) यः	कला (बन्ध)	वायु की सर्व कर्तृत्व शक्ति का संकुचित रूप।	
२७) रः	अविद्या (अल्पज्ञता)	अग्नि की सर्वज्ञता-शक्ति का संकुचित रूप।	
२८) लः	राग	पृथ्वी के पूर्णत्व का संकुचित रूप।	
२९) वः	कालः	सलिल की नित्यत्व शक्ति का संकुचित रूप, अनित्यता।	
३०) लः	नियति	आकाश की व्यापक शक्ति का संकुचित रूप।	
३१) शः	शुद्धविद्या	३२) षः	ईश्वर
३३) सः	सदाशिव	३४) हः	शक्ति
३५) क्षः	विन्दुरूप शिव		

३६) अकार स्वरा :- सकल विश्व-बीज-की भूत कला।

प्रवृत्यात्मक संसरण की चरम सीमा जाग्रत अवस्था है। इस अवस्था में जीव स्वयं को शिव से पृथक, सीमित तथा बद्ध मानने लगता है। तुर्य

दशा की अनुभूति होने पर जीव बन्धन से मुक्त होकर पुनः शिव स्वरूप की प्राप्ति करता है।

तुर्य एवं तुर्यातीत

तुर्य पद के चार अङ्ग है, १) शुद्ध विद्या, २) ईश्वर ३) सदाशिव, ४) शक्ति। सुषुप्ति, जाग्रत एवं स्वप्न दशाओं में प्राण के संङ्कोच की अनुभूति होती है; जो तुर्य दशा में संकोच से मुक्त हो जाता है। प्राण की इस संकोच-त्याग रूप अवस्था के बोधक ईषत्-विवृत श,ष,स,ह वर्ग ऊष्माण वर्ण हैं।

श कार शुद्ध विद्या का बोधक है। शुद्ध विद्या तत्त्व में वेद्य का विलय हो जाता है। पशु दशा में इन्द्रियों के प्रकाश की सहायता से वेद्य विश्व अर्थात् पृथ्वी आदि तत्त्वों का भास होता है। जब इस वेद्य का इन्द्रियों में विलय हो जाता है तब उस अवस्था को शुद्धविद्या नाम से सम्बोधित किया जाता है। गुरु की कृपा से, व्यामोहकारिणी पशु दशा में जब शुद्ध-विद्या का उदय होता तब इदं-प्रत्यय (अर्थात् विश्व प्रतीति) का स्वात्मेन्द्रिय प्रकाश से तादात्म्य होने पर अहं प्रत्यय के विषय का आविर्भाव होता है। पाशव दशा की निवृत्ति के प्रारम्भ में ही प्रमाता का स्वरूप माया से उत्तीर्ण हो जाता है।

शुद्ध-विद्या तत्त्व में इदमात्मक प्रतीति का किञ्चित अंश शेष रह जाता है अतः अहं प्रतीति के पूर्ण उदय होने पर ईश्वर की सर्वकर्तृत्व शक्ति का अविर्भाव होता है। निवृत्ति मार्ग का यह दूसरा पद है। श्रीचक्र के अन्तर्गत विश्व अभिमानी ईश्वर के बोधक अष्टार चक्र को जीवाभिमानवान पशु के बोधक दशार द्वय से संलग्न दर्शाया गया है। इससे तात्पर्य है कि पशु-जाग्रत का शिव-जाग्रत पद से श्लेष है। ईश्वर-तत्त्व का बोधक षकार है।

निवृत्त्यात्मक तीसरा पद सदा-शिव तत्त्व है। इस पद में ज्ञानेन्द्रियों का विलय आत्मा में हो जाता है। ज्ञानेन्द्रियों के तादात्म्य के प्रतिपादक सदाशिव तत्त्व का बोधक सकार है (स)।

तुर्यात्मक अनुभूति का चतुर्थ पद शक्ति तत्त्व है। इस पद में आत्मा एवं देह उभयात्मक स्वरूप के तादात्म्य का आविर्भाव होता है। यह अपरिच्छिन्न चित्-अचित् का सामरस्यात्मक पूर्ण विश्रान्ति पद है। शक्ति का बोधक हकार है।

श वर्ग स्पर्श एवं अन्तःस्थ वर्णों के संङ्कोच-त्याग का स्वरूप है। इसका तात्पर्य है कि श वर्ग द्वारा बोधित अभेद-जाग्रत एवं अभेद-स्वप्न रूप तुर्य पद में तथा स्पर्श एवं अन्तःस्थ द्वारा प्रतिपादित जाग्रत एवं स्वप्न दशाओं में आश्रय रूपसाम्य है।

क्रिया प्रधान बहिर दशा में ईश्वर तत्त्व का प्राधान्य होता है अतः सदाशिव ईश्वर का अङ्ग निरूपित है तथा अन्तः दशा में ज्ञान रूप सदाशिव का प्राधान्य होता है अतः ईश्वर तत्त्व सदाशिव तत्त्व का अंग है।

शिव की ज्ञान-शक्ति की लीला का विलास सदाशिव तत्त्व है तथा क्रिया-शक्ति की लीला का विलास ईश्वर तत्त्व है। इस आधार पर सदा शिव एवं ईश्वर का अङ्ग-अङ्गी भाव निरूपित है। ज्ञान के अन्तः में क्रिया एवं क्रिया के अन्तः में ज्ञान का स्फुरण होता है। इच्छा का ज्ञान एवं क्रिया के मध्य में स्फुरण निरूपित किया है, अतएव शक्ति शिव की इच्छा का स्वरूप है। इच्छा शक्ति ज्ञान एवं क्रिया का सम पद है। इच्छा के बिना न ज्ञान का प्रवर्तन होता है और न ही क्रिया प्रवर्तित होती है अतएव इच्छा ही कूटस्थ रूप है। इस कारण ज्ञान-क्रिया का मूल होने से इच्छा का उभय तत्त्वों में प्राधान्य निरूपित किया गया है। ज्ञान-एवं क्रिया उभय पदों में इच्छा अङ्गी है तथा ज्ञान-क्रिया इच्छा के अङ्ग हैं।

क्रम-प्रवृत्ति

विसर्ग पद में शुद्ध विद्या आदि के अन्तर्गत जो विन्दु का उन्मेष होता है उससे वेद्य का केवल अंश मात्र ही प्रभावित होता है, शुद्ध विद्या प्रमाता में इन्द्रियाँ लय के अभ्यास में दक्ष नहीं होती है अतः भेदानुभूति पूर्णतया शान्त न होने से विसर्ग का स्फुरण किंचित् होता रहता है, अतएव यह दशा वस्तुतः विन्दु विसर्ग की संसृष्टि ही है। इसी प्रकार ईश्वर-प्रमाता एवं सदाशिव-प्रमाता पदों में भी इन्द्रियों की अदक्षता के कारण विसर्ग अनुभूति का लेश रहता है। केवल अपरिच्छिन्न रूपा शक्ति दशा में ही अभेद के पूर्ण साम्राज्य का उदय होता है। अतएव शक्ति की उपासना का निरूपण किया गया है।

शुद्ध-विद्या में ईश्वर-दशा, ईश्वर-दशा में सदाशिव दशा, तथा सदाशिव दशा में शक्ति-दशा नियत नहीं होती है, किन्तु उत्तर दशाओं में पूर्व दशा

नियत होती है अर्थात् ईश्वरदशा में शुद्ध-विद्या दशा अन्तर्भूत है, सदाशिव-दशा में ईश्वर-दशा, एवं शक्ति-दशा में सदाशिव-दशा अन्तर्भूत रहती है। अतएव वेद्य के उपक्रम से जब संवित् का उदय होता है तब श,ष,स,ह वर्णों में संवित् के निर्बाध प्रसार के कारण एक साथ ही प्राण के सङ्कोच भाव का त्याग हो जाता है। अर्थात वेद्य के एक भाग में भी संवित का उदय हो जाने से प्रमाण आदि समस्त पद संवित् से भासित हो जाते हैं।

इसका तात्पर्य है कि जब वेद्य के उपक्रम से विन्दू का उन्मेष होता है तब भाग्यवश शक्ति पात की तीव्रता के कारण साधक (प्रमाता) में क्वचित शुद्ध-विद्या आदि दशाओं की, काल विलम्ब के बिना ही क्षण मात्र में (अर्थात युगपत) अनुभूति सम्भव हो जाती है। शक्ति-पात वश क्रमात्मक नियम का सर्वथा उल्लङ्घन हो जाता है, तथा कभी किसी साधक को शक्ति पात के अभाव से अभ्यास के द्वारा शुद्ध-विद्या आदि तत्त्वों के क्रमिक अनुभूति होती है। (ख.५, सू.७,८)

प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता सिद्ध श्री स्वतन्त्रानन्दनाथ के सम्प्रदाय में रहस्य सिद्धान्त के अनुसार क्रम मार्ग का अनुमोदन किया गया है (ख.५ सू.९) अर्थात् पार्थिव अण्ड में विन्दु के उन्मेष होने पर भी शुद्ध विद्या प्रमाता में भेद का आभास शेष रह जाता है। यह भेदाभास केवल ईश्वरत्व के उन्मेष से ही शान्त होता है। अतएव प्राकृत अण्ड में जो चित् का उन्मेष होता है उस को ही ईश्वरता प्रतिपादित किया गया है। ईश्वर-दशा में प्रमाता का पार्थिव देहाभिमान शमन हो जाता है तथा विश्वमयता की अनुभूति होती है। इस दशा के अनन्तर सदाशिव तत्त्व का उदय स्वप्नात्मक मायाण्ड में होता है। इस दशा में ईश्वरता में अनुभूत विश्वमयता की अनुभूति भी शमन हो जाती है तथा प्रकाशात्मकता का उदय होता है अर्थात् साधक विश्वमय अनुभूति से उत्तीर्ण होकर आत्मा को प्रकाशमय अनुभव करने लगता है। यही सदाशिव पद है। इस प्रकार स्थान की त्रिविधता के कारण पार्थिव, प्राकृत एवं मायात्मक अण्डों में त्रिरूप शुद्ध-विद्या आदि प्रमाताओं की क्रमिक सिद्धि होती है। अत: रहस्य सिद्धान्त के गुरुजनों ने तुर्य की क्रमिक सिद्धि का ही प्रतिपादन किया है। घोष एवं नादात्मक बाह्य प्रयत्न के आधार पर प्रकृति अण्ड के बोधक प वर्ग एवं क वर्ग की तुर्यात्मक श वर्ग के रूप में परिणति का विस्तृत प्रतिपादन भी पञ्चम खण्ड के नवम सूत्र की टीका में देखना चाहिये।

उपर्युक्त प्रकार से विन्दु की क्रमिक व्याप्ति के कारण विन्दु के अन्तर्गत विसर्ग का एकरस अभेदात्मक समावेश हो जाता है। एवं विसर्ग की स्थिति की अनुभूति पृथक से नहीं होती है। अर्थात् विन्दु के गर्भ से बाह्यत: विसृष्ट विसर्ग पुन: विन्दु के गर्भ में ही समाविष्ट हो जाता है। विसर्ग व्याप्ति में वही विन्दु विसर्ग के अन्त में प्रविष्ट होता है, किन्तु इस अवस्था में बिन्दु विसर्गात्मका प्रकृति के सम्मुख स्थित होते हुए भी प्राकृति में लीन नहीं होता अपितु विभक्त रूप में स्थित रहता है। महामन्त्र में जीव के बोधक मकार की स्थिति प्रकृति के बोधक पकार के समीप नियत नहीं की गई है जिससे ज्ञात होता है कि जीव प्रकृति के समीप स्थित होते हुए भी प्रकृति के साथ एक-रस नहीं है। अत: विसर्ग में विन्दु का पूर्ण लय न होने से विसर्ग-व्याप्ति के (बाह्यपद) में प्रकृति, पुरुष एवं अहंकार, बुद्धि, मन रूप अन्त:करण के सहित पांच अंग निरूपित हैं। अन्त: पद में विन्दु के अन्तर्गत विसर्ग का पूर्णत: लोप हो जाता है अत: चित्त-चैत्य की एकरूपता के कारण अन्त: पद के केवल चार अंग निरूपित किये गये हैं। अन्त:पद में चित् की सर्व व्यापकता के कारण अन्त:करण भी चिद्रूप में परिणत हो जाता है अत: अन्त:करण स्थानीय च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग वर्णों के संकोच-त्याग रूप श,ष,स वर्णों का हकार में निमज्जन हो जाता है। अर्थात शुद्ध-विद्या आदि का शक्ति तत्त्व में लय हो जाता है। इस प्रकार चित् शक्ति पद में शुद्ध-विद्या आदि के विज्ञान का आविर्भाव न होने से यह पद एक रूप अभेदात्मक निरूपित है।

शिव का निरूपण

ज्ञान-क्रिया की ओर उन्मुख अद्वय इच्छा को विश्रान्ति रूप में प्रतिपादित किया गया है। ज्ञान-क्रिया की अधिष्ठातृ होने के कारण शक्ति ही अद्वय-इच्छा है एवं मध्य में स्थित होने से इसी पद की कूटस्थता निरूपित की गई है। आगम शास्त्र में शक्ति नाम से घोषित तत्त्व का स्वरूप जब द्वैत-स्पृष्टि से रहित होता है तब इसको महाविश्रान्ति नाम से सम्बोधित किया जाता है। महाविश्रान्ति का अन्त:मुख एवं बहिर्मुख दो रूपों में स्फुरण होता है। प्रपञ्च से पराङ्मुख अन्त: अनुभूति होती है। अत: इस दशा को शिव तत्त्व निरूपित किया गया है। ल कार एवं क्ष कार कूटस्थ वर्णों का तादात्म्य शिव पद का बोधक है जाग्रत अवस्था में सोम आदि की साधना से अनुभूत अथवा स्वत: प्रवृत्त अन्तर्मुखी विश्रान्ति शिवतत्त्व है एवं बहिर्मुखी विश्रान्ति शक्ति तत्त्व है।

व्यापक वर्ग में व्यवस्थित मकार जीव का द्योतक एवं क्षकार शिव का द्योतक है। जीव एवं शिव के बोधक मकार एवं क्षकार को श्रीचक्र के अन्तर्गत त्रिकोण-विन्दु के द्वारा श्लिष्ट रूप में दर्शाया गया है। भेद का स्वरूप त्रिगुणात्मक है अतएवं त्रिकोण को त्रिगुणावच्छिन्न भेद-प्रमाता जीव का स्वरूप निरूपित किया है तथा अभेद-पद निगुण एक रूप है, अत: अभेद-प्रभाता शिव का विन्दु मात्र स्वरूप है।

त्रिपुरेश्वरी का स्वरूप

व्यापक वर्ग के अन्तर्गत व्यवस्थित य वर्गात्मक अन्त:स्थ पद ईषत्-स्पृष्टता का विषय होने से जाग्रत एवं सुषुप्ति का समवाय कहा है तथा इसी प्रकार ईषत्-विवृता का विषय होने से श वर्गात्मक ऊष्माण पद भी जाग्रत एवं सुषुप्ति का समवाय है। अतएव दश अक्षरों से युक्त यह व्यापक वर्ग स्वर एवं स्पर्श वर्गों में समान रूप से व्यापक होने के कारण व्यापक-वर्ग नाम से सम्बोधित किया गया है, एव मध्य पद के रूप में निरूपित है। दशार-युग्म एवं चतुर्दशार के अन्तर्गत व्यापक अष्टार चक्र की अधिष्ठातृ होने से त्रिपुरेश्वरी को ग्रन्थकार ने मध्य-चक्र-निलया अर्थात् मध्य-चक्र निवासिनी प्रतिपादित किया है। श्रीचक्र में अष्टारात्मक मध्य चक्र के अन्तर्गत शिव एवं जीव के बोधक त्रिकोण एवं विन्दु-चक्रों की व्यवस्था की गई है, पुरत्रयात्मक श्रीचक्र प्रमेय-प्रमाण-प्रमातृ लक्षण से लक्षित है अर्थात् प्रमेय आदि पद श्रीचक्र के तीन पुर है जिस से मध्यवर्ती अष्टार प्रमातृ-पुर है, अतएव श्रीचक्र की प्रमाता त्रिपुरेश्वरी को मध्य-चक्र निलया कहा गया है। विन्दु एवं विसर्ग अष्टार के अधिष्ठाता है जिनके बोधक मकार एवं क्षकार वर्ण है। अतएव त्रिपुरेश्वरी को मकार एवं क्षकार का सामरस्य रूप प्रतिपादित किया है।

त्रिपुरेश्वरी के चार बाहु

सम्प्रदाय के अनुसार जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति एवं तुर्य नामक चार दशाओं को समस्त श्रीचक्र की अर्थ स्वरूपिणी त्रिपुरेश्वरी के चार बाहुओं के रूप में प्रतिपादित किया है। त्रिपुरेश्वरी के चार अङ्ग दशाओं के उपलक्षण मात्र है, न कि पारमार्थिक स्वरूप। सुषुप्ति आदि तीन दशाएं बन्ध कारिणी है, अत: इनके आयुध इक्षु-चाप, पुष्प-वाण, एवं पाश कहे गये हैं।

इक्षु चाप रसमय मधुर होता है, एवं सुषुप्ति अवस्था विश्रान्ति रूप होने से एक रस है, जिसमें जीव शिवत्व की मधुर अनुभूति करता है;

अत: सुषुप्ति रूप बाहु का आयुध इक्षु-चाप निरूपित है। जाग्रत अवस्था में प्रपञ्च का प्रसार होता है। इस अवस्था का मुख्य व्यापार वशीकरण है; जिसमें जीव माया के वश में हो जाता है। पुष्प-वाण का व्यापार भी वशीकरण है अत: जाग्रत रूप बाहु का आयुध पञ्च-वाण निरूपित है। स्वप्न दशा किंचित् सूक्ष्म रूप है, अत: यह वायु तत्त्व है। वायु के प्रकोप से झंझावात के उदय के कारण स्वप्न दशा भ्रामक कही जाती है, इसमें जीव को भेदाभेद भ्रान्ति की अनुभूति होती है अत: स्वप्नात्मक बाहु के आयुध को पाश के रूप में प्रदर्शित किया है।

चतुर्थ बाहु ज्ञानात्मक तुर्य दशा है जिसमें जीव शिवत्व की प्राप्ति कर मुक्त हो जाता है। अतएव ज्ञानात्मक सदाशिव को अङ्कुश के रूप में चतुर्थ आयुध निरूपित किया है। जिस प्रकार गज रूपी महा पशु का नियंत्रक अङ्कुश होता है उसी प्रकार चैत्य रूप महा पशु का नियन्त्रण ज्ञान रूप सदाशिव तत्त्व से होता है।

तुर्यातीत

सूत्रकार ने पञ्चम खण्ड के उन्नीसवें सूत्र में त्रिपुरेश्वरी को क्ष्माङ्गिनी नाम से सम्बोधित किया है। अर्थात क्षकार एवं मकार त्रिपुरेश्वरी के बीज मन्त्र हैं। शिवात्मक निर्विकल्प पद का बोधक क्षकार है अतएव त्रिपुरेश्वरी के तुर्य पद का बीज भी क्षकार है। सुषुप्ति आदि अवस्थाओं में जीव की स्थिति प्रतिपादित है। जीव का बोधक मकार है। अत: मकार विकल्प पद का बीज है। त्रिपुरेश्वरी का स्वरूप सविकल्प एवं निर्विकल्प उभयात्मक है अत: क्षकार एवं मकार उभय बीजों के योग से त्रिपुरेश्वरी को क्ष्माङ्गिनी प्रतिपादित किया है।

त्रिपुरेश्वरी का नवचक्रात्मक रूप

दशाओं के रूप में प्रतिपादित देहात्मिका महाशक्ति को त्रिपुरेश्वरी नाम से सम्बोधित किया है। त्रिपुरेश्वरी का अर्थ है तीन पुरों की ईश्वरी, अत: निष्कर्ष रूप में महाशक्ति के तीन रूप ही मुख्य हैं। परा वाक् नामक महाशक्ति का दशाओं के रूप में प्रवाह स्वरस अर्थात अन्य किसी की प्रेरणा के बिना ही होता है। अतएव प्रवृत्ति रूप संसार, निवृत्ति रूप संसार, एवं उभयात्मक संसार की कारण त्रिपुरेश्वरी ही है जिसका अविर्भाव शब्द एवं उभय रूपों में होता है। अत: त्रिपुरेश्वरी का स्वरूप शब्द एवं अर्थ सामरस्य है।

प्रमाण-प्रमेय एवं प्रमाता के रूप में त्रिपुरेश्वरी का ही स्फुरण होता है। प्रमाण आदि प्रत्येक पद चन्द्र, सूर्य एवं अनलात्मक निरूपित है। (ख.१ सूत्र ३३) अत: प्रमाण, प्रमेय, प्रमाता पद त्रय में से प्रत्येक पद चन्द्रात्मक, सूर्यात्मक एवं अनलात्मक होने से त्रिपुरेश्वरी का नवधा विभाजन हो जाता है, जो श्रीचक्र के अन्तर्गत नव त्रिकोणों द्वारा प्रदर्शित है। अर्थात जडत्व के कारण प्रमेय रूप चतुर्दशारात्मक सुषुप्ति का विसर्ग की प्रधानता से, विन्दू की प्रधानता से, एवं उभय की प्रधानता से त्रिरूप में आविर्भाव होता है। इसी प्रकार प्रमाण रूप दशारद्वयात्मक जाग्रत पुर, एवं प्रमातृ रूप अष्टारात्मक स्वप्न पुर भी विसर्ग-विन्दु एवं उभय की प्रधानता से तीन रूपों में संसृत होने के कारण प्रत्येक त्रिधा विभाजित है। दशाओं के नवधा विलास के कारण त्रिपुरेश्वरी के प्रतिबिम्ब भूत श्रीचक्र का नव कोणात्मक स्वरूप निरूपित है।

चैतन्य

शिव एवं शक्ति उभय तत्त्वों की उपासना का विधान है अत: उभय तत्त्व चैतन्य रूप प्रतिपादित किये गये है। प्रकाश तत्त्व चैतन्य भी है, जड भी है। इसी प्रकार शक्ति तत्त्व जड भी है चैतन्य भी है। इस चमत्कार का कारण उभय तत्त्वों की अन्योन्य व्याप्ति है। जो चैतन्य व्यापक है वह व्याप्त भी है अतएव चित एवं अचित् रूप चमत्कार का आविर्भाव होता है।

प्रकाश एवं विमर्श उभय तत्त्व इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक हैं। विमर्श-व्याप्ति में सुषुप्ति चन्द्र एवं स्वप्न अग्नि का स्वरूप है। अत: चन्द्र विसर्ग-प्रमाता की इच्छा का रूप है। प्रकाश-व्याप्ति में अग्नि विन्दु की इच्छा का स्वरूप है। प्रकाश एवं विमर्श उभयात्मक व्याप्ति में ज्ञान-क्रिया अर्थात् ज्ञातृत्व एवं कर्तृत्व का युगपत् इच्छा के रूप में आविर्भाव होता है। अत: तीनों प्रकार के संसरण इच्छा रूप होने से चैतन्य सिद्ध होते है। अतएव शिव अथवा शक्ति किसी भी तत्त्व को जड कहना दुराग्रह मात्र है।

उपास्यत्व

विसर्ग-व्याप्ति में चित् तत्त्व का चैत्य के अन्तर्गत निमज्जित अर्थात् लय हो जाता है अत: चैत्य के उत्कर्ष के कारण शाक्त सुषूप्ति के बोधक चतुर्दशार चक्र की प्रधान रूप में पूजा करते हैं। विन्दु-व्याप्ति में चैत्य तत्त्व चित् के अन्त: में निमज्जित हो जाता है अत: चित तत्त्व के उत्कर्ष के

कारण शैव अष्टार चक्र का प्रधानता से पूजन करते हैं। जाग्रत्-व्याप्ति में चित् एवं चैत्य उभय तत्त्वों का समान रूप से युगपत् उदय होता है, अत: प्रस्तुत सम्प्रदाय में चित्-चैत्य उभय तत्त्वों के समान उत्कर्ष के कारण जाग्रत के प्रदर्शक चतुरस्र चक्र को प्रथम पूजनीय निरूपित किया है। इस संप्रदाय में यद्यपि सुषुप्ति, स्वप्न एवं जाग्रत तीनों अवस्थाओं को समान रूप से प्रधान स्वीकार किया है तथापि चित् एवं चैत्य उभय तत्त्वों का चतुरस्र चक्र में प्रत्यक्षत: दर्शन होता है इस कारण प्रथम पूजनीय निरूपित करने के हेतु चतुरस्र को श्रीचक्र के अन्तर्गत बाह्यत: मुख्य प्रदेश में प्रदर्शित किया गया है।

निर्मलता एवं स्वच्छता के कारण चित् तत्त्व गंगा के समान है एवं संसार-पङ्क से कलङ्कित होने के कारण चैत्य तत्त्व यमुना के नील जल के समान है, अत: गंगा-यमुना के संगम के समान चित्-चैत्य के संश्लेष अर्थात संगम को परम पवित्र तीर्थराज प्रयाग के समान निरूपित किया है। चित् एवं चैत्य तत्त्वों के संश्लिष्ट स्वरूप का बोधक चतुरस्र चक्र है अत: इसका महत्त्व प्रयाग के समान प्रतिपादित किया गया है।

काशीतल-वाहिनी गंगा शिव की जटाओं में समाविष्ट होने से चित् अर्थात् ज्ञान स्वरूप है जिसको इडा नाम से कहा गया है। यमुना सूर्य-तनया होने से सूर्य नाड़ी है जिसको पिङ्गला नामसे भी सम्बोधित किया जाता है। जहाँ इडा एवं पिङ्गला का युगपत् समावेश होता है वह नाडी सुषुम्ना के नाम से प्रसिद्ध है। भ्रू मध्य-गत सुषुम्ना ही चतुरस्र चक्र है, जहाँ शिव-शक्ति के संश्लिष्ट स्वरूप का बोध होता है, जिसको पवित्र प्रयाग के समान पूजनीय कहा है।

साधक को गंगा-यमुना का यह संगम नित्य निरन्तर सुलभ है। पवित्र प्रयाग खोजने के लिये कहीं अन्यत्र भटकने की आवश्यकता नहीं है।

श्री गुरु पुर्णिमा — **कृष्णानन्द बुधौलिया**
संवत २०३४
स्थान - भांडेर (म.प्र.)



ॐ श्रीगणेशायनमः

ॐ गुं गुरुभ्योनमः

श्रीमातृकाचक्र विवेकः

प्रथम खण्डः

नमस्तेज त्रयीसर्गविश्रान्त स्थानशक्तये।
तदुत्तीर्णोर्ध्वविश्रान्ति स्फूर्तये गुरुमूर्तये।।१।।

स्वतन्त्रो नाम सिद्धोऽभूदादि नाथस्य लोचनात्।
मातृकार्थोपदेशेन लोकाननु जिघृक्षतः।।२।।

प्रभवाद्देवदेवस्य ससद्यो मातृकार्थवित्।
रहस्यमेतद्योगेषु योजयेतीति शासितः।।३।।

सविसृष्टस्ततस्तेन कनकाचल कन्दरे।
समाहितमनाश्चक्रे मातृकार्थ प्रचिन्तनम्।।४।।

तस्यमूलमनोरर्थं तत्सूत्रैसंजिघृक्षतः।
व्यामूढ प्रतिभा शक्तेः प्रमेयार्जव निश्चये।।५।।

पपातगगनादग्रे श्रीचक्रंशिव चोदितम्।
शैव शाक्त चतुः पञ्च त्रिकोणश्लेष जीवितम्।।६।।

मन्वस्रादिगरद्वन्द्व नागास्र त्र्यस्रविन्दुभिः।
स्पष्टैर्विभाव्यैर्वेदास्र नृपनाग दलैर्युतम्।।७।।

नवचक्रात्मकं यन्त्रमितिचक्रस्य तत्त्रयम्।
तथालोक्य महाबिम्ब मातृकार्थ प्रकाशकम्।।८।।

सजात प्रतिभः सद्यो विद्यामाद्यामनेकधा।
व्याचष्टे सुगमै सूत्रैस्तानि सिद्धेषु चार्पयत्।।९।।

ते च सिद्धास्तदादेशात् मूलमन्त्रार्थ शासनम्।
पात्रेषु न्यक्षिपन् गुप्तं पारम्पर्य प्रवृत्तये।।१०।।

एवं परम्परा प्राप्त महामन्त्रार्थ शासने।
श्लाघ्यते मातृकाचक्र विवेको नाम संग्रहः।।११।।

ग्रन्थोऽयमुपदेशैक बोध्य सिद्ध जनप्रियः।
वृत्त्या विविच्यते लघ्व्या शिवानन्दात्मनामया।।१२।।

आदि सिद्धोपदेशोऽयमनिर्वाह्यः परोक्तभिः।
ततः संवाद सन्नाहैर्नादृतो ग्रन्थ विस्तरः।।१३।।

प्रथमं सूत्रम्

जाग्रत्-सुषुप्तिकृत्-दक्षिण-वाम-भागाम्।
स्वप्न स्वभाव-परिक्लृप्त-जघन्य-भागाम्।

तुर्यातितुर्य-घटितानन-हृत्प्रदेशाम् ।
प्राणेश्वरीं परशिवस्य परामृशामः।।१।।

व्याख्या

ये खलु परम भट्टारकस्य प्राणभूतया विद्याविद्योभय चमत्कारमय्या स्वरस वाहिन्या विमर्श शक्त्या समुन्मीलितासु वाह्याभ्यन्तर विविध विचित्र सिद्धान्त विप्रतिपत्तिषु विलुठतो लोकस्यानुग्रहाय शिवप्रयुक्तः स्वतन्त्रानन्द नामा महासिद्धः स्वर सिद्धतया निखिल वाङ्मय निदानतया च महाप्रमाणस्य मातृकामहामन्त्रस्यार्थोपदेशेन निखिल संशय निरास निराकुलं परमार्थ स्वरूपं निरूपयितु काम आदौ महामन्त्रार्थ रूपिणीं भगवतो महादेवस्य महाशक्तिं ग्रन्थस्य

पारम्पर्य-प्रवृत्ति-रूपाभीष्ट-सिद्धये परामृशति जाग्रत् इत्यादिना।

सुप्ति निवृत्तौ घटपटादीनां चिद्वेदनानुसंधान दशा जाग्रत् सुषुप्तिर्जड निद्रा क्रमेण ताभ्यां कृतौ दक्षिणवामपार्श्वौ यया ताम्। जाग्रतः क्रियारूपतया दक्षिणभागत्वं कर्म प्रधानः खलु दक्षिणभागः शरीरेऽनुभूयते। निद्रात्मिकायाः सुप्तेर्वामभागत्वं वाम भागः खलु निष्क्रियः स्त्री भागः। स्वप्नेत्यादिअनिवृत्तायां सुप्तौ मानसिको भेदः संसारः स्वप्नः स एव स्वभावोऽवस्था विशेषः तेन परिक्लृप्तो जघन्यभागो योनिभागो ययाताम्। सुषुप्ति जाग्रन्मध्य दशायाः स्वप्नस्य मध्याङ्गौचित्त्ये विकल्पोदये स्थानत्वाद्योनित्वमुक्तम्। एवञ्च सुषुप्तिः संसारस्य गर्भदशा स्वप्नः प्रसवदशा जाग्रत् प्रबृद्धिदशेति वेदितव्यम्। एवं जीवावस्थात्रयात्मकं त्रिकोणं शरीरचक्रस्थितमनुसन्धाय तत्रैव स्थितं शिवत्रिकोणमनुसन्धत्ते।

तुर्येति - तुर्य चतुर्थ दशा। चेत्य व्याप्तिमती जीवावस्थात्रये चित्कारणकस्य चास्य चिन्मयानुसन्धानदशातुर्यम्। तत्रापि चिद्व्याप्ति विषयभूत जाग्रदाद्यवस्थात्रयवशादवस्थात्रय संभवा तथापि सर्व व्याप्तिमत्वाच्चितेरैक्येन वैचित्राभावादेक विधित्वमुक्तम् तुरीयस्य। अतीत तुरीयं तुर्यातीतं संसार कलङ्कास्पृष्ट शुद्धान्तर्मुख चिद्विश्रान्तिः। ताभ्यां क्रमेण घटितमुखहृदयभागाम्। तुर्यस्यजाग्रदादिदशा विजृम्भमाण चेत्यकवलनान्मुखत्वमुक्तम्। मुखं हि चर्वण व्यापारवत्। अतितुर्य निखिलदशाप्राणभूतमिति हृदयत्वेनोक्तम्। एवञ्च जाग्रदादि दशा चतुष्टयात्मक चतुरस्रचक्रस्य अथवा जाग्रदाद्युपाधिवशात् तुर्यस्यापि त्रैविध्याभिमाने शिवजीव त्रिकोणद्वयश्लेष संभावित षट्कोण चक्रस्य वा शरीररूपेणावस्थितस्य मध्ये चक्र नाभि पदे हृदयदेशे तुर्यातीत विश्रान्त्यात्मना प्राणकलया स्फुरन्तीं चतुरङ्गांषड्ङ्गां वा परमशिवस्य प्राणेश्वरीं सत्ता सम्पादिनीम्। अनेन पञ्चावस्थोत्तरा सार्वत्रिकतया अखण्ड रूपिणी परमशिवदशा काचिदङ्गीकृतेति शिवाधिक्यमुक्तम्। प्राणेश्वरीमित्यनेन यद्यपि सा परमशिवदशा सम्भवति तथापि तस्याश्चित्सारभूतविमर्श शक्त्यधीना सत्तेति शक्त्युत्कर्षः परिग्रहीत इति विज्ञेयम्। परामृशाम इत्यनेन नमस्कारादेः सर्वस्यापि क्रियायाः पर्यालोचनेविमर्श मात्रत्वमेवेति सूचितम्।

भाषा टीका

परम भट्टारक शिव की प्राणभूत, विद्याविद्योभय चमत्कारमयी स्वरस प्रवाहिणी विमर्श-शक्ति के द्वारा समुन्मीलित वाह्य एवं आभ्यन्तर विविध-

विचित्र सिद्धान्तों के विज्ञान में निष्णात शिवस्वरूप स्वतन्त्रानन्द नामक महासिद्ध ने स्वर-सिद्धि एवं निखिल वाङ्मय के निदान एवं महाप्रमाणभूत मातृका महामन्त्र के उपदेश के द्वारा समस्त संशय से निर्मुक्त परमार्थ-स्वरूप के निरूपण की कामना से लोक-संग्रह एवं ग्रन्थ की परम्परागत प्रवृत्ति रूप अभीष्ट की सिद्धि के हेतु भगवान शिव की महामन्त्रार्थ रूपिणी महाशक्ति का विमर्श रूप में मंगल कामना के लिये निर्वचन प्रस्तुत किया है।

सूत्रसार -

महाशक्ति के स्वरूप का निरूपण करते हैं। महामन्त्रार्थ रूपिणी शक्ति का दक्षिण भाग जाग्रत, वाम भाग सुषुप्ति, योनि भाग स्वप्न, एवं मुख भाग तुर्य तथा हृदय भाग तुर्यातीत अवस्था है। इस प्रकार जाग्रदादि अवस्थाओं से घटित अवयवों से युक्त प्राणेश्वरी महाशक्ति को पर शिव के विमर्श के रूप में निरूपित किया है।

जाग्रदित्यादि -

सुषुप्ति की निवृत्ति के उपरान्त जिस अवस्था में घट पट आदि वस्तुओं की चिदात्मक सम्वेदना का अनुसन्धान होता है उस अवस्था को जाग्रत् कहा गया है। सुषुप्ति जड़ात्मक निद्रा है। जाग्रत् एवं सुषुप्ति अवस्थाएं महाशक्ति के क्रमशः दक्षिण एवं वाम अङ्ग हैं।

जाग्रदावस्था में कर्म की प्रधानता होती है एवं शरीर में दक्षिण अङ्ग कर्म प्रधान होता है। अतः जाग्रत् को महाशक्ति का दक्षिण अङ्ग निरूपित किया गया है। निद्रात्मक सुषुप्ति में शरीर निष्क्रिय रहता है, तथा शरीर का वाम भाग निष्क्रिय होता है अतः सुषुप्ति अवस्था को महाशक्ति का वाम अङ्ग कल्पित किया गया है।

स्वप्नेत्यादि -

सुषुप्ति के अन्तर्गत किन्तु जाग्रत् से पूर्व अर्थात् सुषुप्ति एवं जाग्रत् के मध्य में स्वप्न की स्थिति है तथा ज्ञान का उदय सर्व प्रथम स्वप्न में होता है। अतएव विकल्पोदय की जननी होने के कारण स्वप्न को महाशक्ति का योनि भाग निरूपित किया गया है।

इस प्रकार संसार की गर्भ-दशा सुषुप्ति, प्रसव-दशा स्वप्न, एवं प्रवृद्धि-दशा जाग्रत् है। शरीर चक्र के अन्तर्गत स्थित त्रिकोण में जीव की जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति तीन अवस्थाओं का योग है। यह जीव-त्रिकोण नाम से प्रसिद्ध है। इसी शरीर चक्र में शिवत्रिकोणात्मक दो अवस्थाएं तुर्य एवं तुर्यातीत हैं। इस प्रकार जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्य, एवं तुर्यातीत अवस्थाओं से युक्त शिव-शक्ति की पञ्चाङ्गी मूर्ति का निरूपण किया गया है। शिवात्मक तुर्य एवं तुर्यातीत अवस्थाओं का विवेचन आगे किया जाता है।

चेत्य-व्याप्तिमती तुर्य नामक चौथी अवस्था है। जीवात्मक जाग्रदादि अवस्थाओं का कारण चित् तत्त्व है। तुर्य दशा में चित् का अनुसन्धान होता है। चिद्-व्याप्ति में अर्थात् जब जीव का प्रवाह शिवत्व की ओर होता है, तब जाग्रदादि दशाओं की (अभेद) अनुभूति होती है इस कारण शिवात्मक तुर्य दशा जाग्रदादि भेद से यद्यपि तीन प्रकार की कही जा सकती है, तथापि सर्वत्र व्याप्तृत्व के कारण चित् एक है अर्थात् चित् में वैचित्र्य का अभाव है, अतएव तुर्य को एक प्रकार का ही निरूपित किया गया है।

संसार रूप कलङ्क के स्पर्श से मुक्त, शुद्ध, अन्तर्मुख विश्रान्ति रूप तुर्यातीत अवस्था है। तुर्य एवं तुर्यातीत अवस्थाएं क्रमशः महाशक्ति का मुख एवं हृदय भाग हैं। मुख का कार्य चर्वण क्रिया है, तुर्य अवस्था में जाग्रत् आदि अवस्थाओं का चर्वण (अर्थात् लय) हो जाता है। अतएव तुर्य को महाशक्ति का मुख भाग कहा गया है। तुर्यातीत दशा अन्य समस्त दशाओं का प्राण है। अतः इस अवस्था को महाशक्ति हा हृदय प्रदेश कहा गया है।

इस प्रकार श्रीचक्र के अन्तर्गत चित्रित चतुरस्र में महाशक्ति के जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, एवं तुर्य नामक चार अङ्गों का निरूपण है। अथवा यदि जाग्रदादि उपाधि के कारण तुर्य को त्रिविध स्वीकार किया जावे तब जाग्रदादि तीन शिवात्मक अवस्थाओं तथा-जाग्रदादि रूप तीन जीवात्मक त्रिकोण की अवस्थाओं के योग से महाशक्ति के छै अङ्गों का सम्पादन होता है।

जिस प्रकार शरीर के मध्यभाग में हृदय प्रदेश से प्राण का संचार होता है उसी प्रकार विश्रान्ति रूप हृदय-भूत तुर्यातीत अवस्था से प्राणकला के रूप में महाशक्ति के जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुर्यात्मक चार अङ्गों का, अथवा तुर्यात्मक जाग्रदादि त्रिकोण एवं जीवात्मक त्रिकोण के योग से छै अङ्गों का स्फुरण होता है। अतएव परम शिव की प्राणेश्वरी महाशक्ति

को चतुरङ्ग (चार अङ्गों से युक्त) अथवा षडङ्ग (छै अङ्गों से युक्त) प्रतिपादित किया गया है।

सूत्र में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तुर्य एवं तुर्यातीत नामक पांच अवस्थाओं की ही चर्चा की गई है, किन्तु टीकाकार ने महाशक्ति को छै अङ्गों से युक्त प्रतिपादित करके एक छटवीं अतिरिक्त अवस्था का संकेत किया है। अतः यह दशा शिव से परे है। ऐसी कल्पना का आविर्भाव होता है। इसका निराकरण करते हुए टीकाकार का कथन है कि यद्यपि प्राणेश्वरी शब्द के प्रयोग से यह पर शिव की ही दशा अङ्गीकार की जावेगी; तथापि इस दशा की सत्ता, चित्सारभूत विमर्श शक्ति के अधीन है अतएव इस छटवीं दशा की कल्पना से शक्ति के केवल उत्कर्ष का ही अभिव्यंजन होता है। यह शिव से उत्कृष्ट कोई अन्य तत्त्व नहीं है।

परमृशाम इस शब्द के प्रयोग से नमस्कार आदि क्रियाओं के पर्यालोचन से विमर्श मात्रत्व की ही सूचना होती है। अर्थात् महाशक्ति का स्वरूप केवल शिव का विमर्श है। सूत्र का यह तात्पर्य है।

द्वितीयं सूत्रम्

स्पर्श स्वरोल्लिखित जागरसुप्त्यवस्था-
मन्तस्थ सूचित सुषुप्त्युदित प्रबोधाम्।
उष्मोक्त जागरदशोदित सुप्त्यवस्थां-
मन्त्रोत्करस्य जननीं मनसा विशामः।।२।।

व्याख्या

अथेयमेव पञ्चावस्थात्मक पञ्चावयव मूर्तिः सकल सिद्धान्त समष्टिरूपिणी परम शिव शक्तिर्मातृका महामन्त्रेणीच्यते। इत्याह :- स्पर्शेत्यादि :- कादयो मावसाना स्पर्शाः सृष्टि प्रलय विषयत्वात् अकारादि विसर्गान्ताः स्वराः उच्चारणे संकोच विकास बाहुल्यान्नादकल्पाः नादा एवेत्यर्थः। स्वरो नादः। स्पर्शैः स्वरैश्च क्रमेणोल्लिखिते बोधिते जागर सुप्तिदशे ययाताम्। स्पर्शैः जागरं स्वरैः सुप्तिं च व्यञ्जयन्तीमित्यर्थः। अन्तस्थ इत्यादि य र ल वा अन्तथाः स्वरस्पर्शयोरन्तरमध्ये तिष्ठन्तीति तथोक्ताः। तैः सूचितः बोधितः सुषुप्त्युदितः

सुषुप्तिदशायामेवोदितः न तु जागरवत् सुप्ति विरामे। प्रबोधः घटपटाद्यनुसंधानरूपो बोधः स्वप्नमिति यावत् यया ताम्। अन्तस्थ वर्णेषु स्वप्नदशामपगमयन्तीमित्यर्थः। ऊष्मेत्यादि। शषसहा ऊष्माणः। पारिभाषिकोऽयं शब्दः। अथवा संकुचित रूपतया जडानां स्पर्शवर्गाणां पुनः संकोचत्यागरूप ऊष्मादि विकृतताप्रारम्भलक्षणः प्रयत्न विशेषः एषु वर्णेष्विति ऊष्माणस्तैरुक्ता। जागरदशायामेवोदिता उत्थिता सुषुप्त्यवस्था जागरादूर्ध्व सुप्तेः प्राग्भवन्ती योग निद्राख्या जीवावस्था तुरीयं यया ताम्। मन्त्रोत्करस्य बाला, – श्रीविद्या, परा, महार्थ शाम्भवी चरण विद्यादि पारलौकिकस्य पञ्चाक्षर्यष्टाक्षर्यादिः लौकिकस्य मन्त्रसमुदायस्य जननीं कारणभूतां मातृकामित्यर्थः। मनसाविमृशामः सकलमूलतया सकल सिद्धि हेतुत्वात् विविधसमयसमुत्पादित परमार्थ विषय संशयसमुच्छेदि महाप्रमाणत्वाच्च तदेकाग्रचिता भवाम इत्यर्थः। अत्रोष्मवर्णोक्ति तुर्ये क्षकाररूप कूटाक्षर विषयस्य तुर्यातीतस्य समुल्लेखनञ्च विवक्षितमिति निरवशेषं प्रमेयम्।।२।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

स्पर्श एवं स्वर वर्ण समुदाय के द्वारा क्रमशः जाग्रत् एवं सुषुप्ति अवस्थाओं का उल्लेख होता है। सुषुप्ति में उदित स्वप्न दशा का अन्तःस्थ वर्णसमूह य वर्ग द्वारा, एवं जाग्रत् में प्रादुर्भूत तुर्यावस्था का ऊष्माण शब्द-समूह के द्वारा बोध होता है। इस प्रकार स्पर्श, स्वर, अन्तःस्थ, ऊष्माण वर्ण-समूह के द्वारा क्रमशः अवबोधित जाग्रत्, सुषुप्ति, स्वप्न तथा तुर्य अवस्थामयी महामंत्र की जननी महाशक्ति का स्मरण सूत्रकार करते हैं।

व्याख्या

प्रथम सूत्र में जाग्रदादि पांच अवस्थाओं से सम्पादित सकल-सिद्धान्त की समष्टि रूपिणी पञ्चांगी-मूर्ति परम-शिव की शक्ति है जिसका इस सूत्र में मातृका महामन्त्र के स्वरूप में निर्वचन किया गया है।

स्पर्शेत्यादि -

क से म पर्यन्त वर्ण समूह सृष्टि एवं प्रलय का विषय होने के कारण स्पर्श कहे जाते हैं, कंठ तालु आदि अवयवों से आहत होकर स्वर वर्ग के

उच्चारण में नाद का ही संकोच एवं विकास होता है अतएव अ से विसर्ग पर्यन्त स्वर समूह नाद से कल्पित होने के कारण नाद ही हैं। 'स्वरो नादः' यह प्रमाण वचन भी उद्धृत किया गया है। जाग्रत् एवं सुप्ति का बोध क्रमशः स्पर्श एवं स्वर वर्ग के द्वारा होता है। अर्थात् स्पर्श जाग्रत् का एवं स्वर सुषुप्ति का अभिव्यञ्जन करते हैं।

य र ल व वर्ग समूह स्पर्श एवं स्वर वर्ग के मध्य में स्थित हैं अतः यह अन्तस्थ कहे जाते हैं। इनके द्वारा स्वप्न दशा का बोध होता है। स्वप्न का उदय सुषुप्ति दशा में होता है न कि जाग्रत् के समान सुप्ति के अवसान होने पर। स्वप्न में जाग्रत् के समान घट पट आदि का बोध मात्र होता है किन्तु वस्तु की उपलब्धि नहीं होती है। अतएव स्वप्न को घट-पट आदि का अनुसन्धान रूप बोध कहा गया है।

ऊष्मेत्यादि -

श, ष, स, ह वर्ण समूह का नाम ऊष्माण है। व्याकरण शास्त्र के अनुसार ऊष्माण पारिभाषिक शब्द है किन्तु टीकाकार ने यहां ऊष्माण की प्रयत्न विशेष के रूप में वैकल्पिक व्याख्या प्रस्तुत की है। कण्ठ आदि अवयवों से आहत होकर नाद अत्यन्त सङ्कोचावस्था में प्रसरित होता है। स्पर्श वर्ण समूह नाद की इस सङ्कोचावस्था के बोधक हैं। इस प्रकार स्पर्श वर्ग में संकुचित नाद जब सङ्कोचावस्था का त्याग कर विवृत रूप में पुनः प्रकट होता है तब इस परिवर्तन में ऊष्मादि विकृतता का प्रारम्भिक रूप प्रयत्न विशेष का उपयोग होता है। अतः जिस वर्ण समूह के उच्चारण में ऊष्मा प्रयत्न विशेष का प्रयोग होता है, वह ऊष्माण नाम से कहा जाता है। इस प्रकार ऊष्माण वर्ण समूह श, ष, स, ह, के उच्चारण में नाद पुनः विवृतत्व को प्राप्त करता है। अतः ऊष्माण वर्ण समूह तुर्यावस्था के द्योतक हैं। जाग्रत अवस्था के अन्तर्गत ही जब सुषुप्ति का आविर्भाव होता हैं अर्थात् जाग्रत् से ऊर्ध्व तथा सुषुप्ति से पूर्व जो विश्रान्तिमय योग-निद्रा की अवस्था है वह तुर्य नाम से सम्बोधित की जाती है। तुर्य के अभिव्यंजक ऊष्माण हैं।

इस प्रकार स्वर, स्पर्श, अन्तःस्थ तथा ऊष्माण वर्ण समूह द्वारा अवबोधित सुषुप्ति-जाग्रत्-स्वप्न-तथा तुर्य-मयी मातृका महाशक्ति है, जो श्री-विद्या, परा, आदि पार-लौकिक एवं पञ्चाक्षरी, अष्टाक्षरी, आदि लौकिक मन्त्र समुदाय की जननी अर्थात् कारण रूप है, जिसकी सूत्रकार ने समस्त सिद्धियों

की प्राप्ति तथा समय-सिद्धान्त द्वारा प्रतिपादित परमार्थ-विषयक संशयों के उच्छेदन के हेतु एकाग्रता से इस सूत्र में आराधना प्रस्तुत ही है।

तृतीयं सूत्रम्

संकोच-संश्रयण-वर्जन-भाव-भङ्ग्या-
जाग्रत् सुषुप्ति-दशयोर्गमकौप्रयत्नौ।
द्वौ स्पृष्टता-विवृतते विदितौ सुधीभिः
स्पर्शस्वराक्षरगतौ परिशीलयामः।।३।।

व्याख्या

स्पर्शादिभिर्वर्णैं जाग्रदादयो दशा ज्ञाप्यन्त इत्युक्तम्। ज्ञाप्यज्ञापकयोरभिधा लक्षणादिषु केनचित्सम्बन्धेनभवितव्यम्। कोऽयमत्र सम्बन्धः इत्याशङ्क्याहः- संकोचेति-संकोचस्य संश्रयणं परिग्रहः वर्जनं तत्त्यागः तयोर्भावः स्वभावः संस्थान विशेष इति यावत्। तस्य भङ्ग्या प्रकारेण सादृश्येनेत्यर्थः। जाग्रत सुषुप्तिदशयोर्यथाक्रमं गमकौ ज्ञापकौ द्वौ यथा क्रमं स्पर्शस्वराक्षरगतौ स्पृष्टता विवृतते द्वौ प्रयत्नौ। स्पृष्टतानाम कण्ठताल्वादीनामधरोर्ध्वभाग संघट्टनरूपो वर्णोच्चारण प्रयत्नः विवृततानाम संघट्टितस्य कण्ठादि भागद्वयस्य पुनर्विघट्टनप्रयत्नः कण्ठादि भागयोः संघट्टनमेव स्पृष्टता। विघट्टनमेव विवृतता। एतयोः संकोचग्रहणतत्त्यागलक्षणौ प्रयत्नौ सादृश्याज्जाग्रत् सुषुप्त्योर्बोधकौ। अभिनयनाद्व्यञ्जकाविति भावः। यथा अङ्गुलिमुकुलनादिर्व्यञ्जकः तद्वदिति भावः। घटपटादि ग्रहणपदे जाग्रतित्वात्मनः संकोचभावः विश्रान्तिपदे सुषुप्तौ तु पूर्णभाव इत्येतदनुभव वेद्यम्। अतो जाग्रत् सुषुप्तोः स्पर्शस्वर कदम्बकाभ्यां संकोचग्रहण तत्त्यागरूपमवस्था सादृश्यं प्रेक्षावद्भिरङ्गीक्रियतएव। तदेव सादृश्यं व्यङ्ग्यव्यञ्जक सम्बन्धमित्यभिप्रायः सुधीभिर्विदिताविति विशेषणेन वर्णाना-मवस्थानाञ्च व्यङ्ग्य व्यञ्जकसम्बन्ध निदानभूतौ प्रयत्नौ प्रेक्षावन्मात्र-गम्यावित्युक्तानां वर्णानामेव दशागमकत्वेऽपि संकोचतत्त्यागरूपमवस्थासादृश्यं वर्णानां प्रयत्नमूलमिति प्रयत्नयोरवस्थागमकत्व-मुपचरितम् परिशीलयाम इत्येतत् प्रयत्नपर्यालोचनमेवास्माभि रप्यनुसन्वीयते नातः परः समाधिरित्युपदिष्टम्।।३।।

भाषा टीका

पूर्व सूत्र में प्रतिपादित किया गया है कि स्पर्श आदि वर्णों के द्वारा जाग्रत् आदि दशाओं का ज्ञापन होता है। अतः यह शङ्का होती है कि वर्ण-समूह तथा दशाओं में ज्ञाप्य-ज्ञापक सम्बन्ध का संकेत अभिधा, लक्षणा तथा व्यञ्जना में से किस शक्ति के द्वारा होता है। इस शङ्का का समाधान इस सूत्र में किया गया है।

सूत्र सार -

सङ्कोच-परिग्रह एवं सङ्कोच-त्याग के सादृश्य के आधार पर जाग्रत् एवं सुषुप्ति दशाओं के ज्ञापक यताक्रम स्पर्श एवं स्वर अक्षर-गत स्पृष्टता एवं विवृतता नामक दो प्रयत्न हैं। जिनका विवेचन दो सूत्रों में किया जा रहा है। स्पर्श वर्णों के उच्चारण में स्पृष्टता नामक प्रयत्न तथा स्वर-वर्ण-समूह के उच्चारण में विवृतता नामक प्रयत्न का उल्लेख किया गया है।

व्याख्या

वर्णों का उच्चारण कण्ठ आदि अवयवों के प्रयत्न विशेष से होता है। वाह्य एवं आभ्यन्तर भेद से यह प्रयत्न दो प्रकार का है। यहाँ आभ्यन्तर प्रयत्न की चर्चा की जा रही है। आभ्यन्तर प्रयत्न के चार भेद हैं (१) स्पृष्टता, (२) विवृतता, (३) ईषत्स्पृष्टता एवं (४) ईषत्-विवृतता।

कण्ठ, तालु आदि के अधः एवं ऊर्ध्व भागों के संघट्ट रूप प्रयत्न को स्पृष्टता नाम से कहा गया है। संघट्टित कण्ठ आदि के दोनों भागों का पुनः विघट्टन विवृतता-प्रयत्न है। अर्थात् कण्ठ आदि भागों का संघट्टन स्पृष्टता है तथा विघटन विवृतता है।

स्पृष्टता एवं विवृतता के सादृश्य के कारण सङ्कोच-ग्रहण एवं सङ्कोच-त्याग रूप लक्षण से लक्षित दोनों प्रयत्न क्रमशः जाग्रत् एवं सुषुप्ति के अवबोधक हैं। जैसे अंगुली के द्वारा वस्तु का अभिव्यञ्जन किया जाता है उसी प्रकार के अभिनय के कारण उच्चारण के प्रयत्नों द्वारा अवस्थाओं का अभिव्यञ्जन होता है।

जाग्रत् दशा में घट पट आदि विषयों की अनुभूति के कारण आत्मा के व्याप्तृत्व का संकोच हो जाता है, तथा विश्रान्ति रूप सुषुप्ति अवस्था

में उपर्युक्त सङ्कोच त्याग के कारण आत्मा के पूर्णत्व का अनुभव होता है। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार जाग्रत् अवस्था में विषयों के सम्पर्क से आत्मा संकुचित हो जाता है उसी प्रकार कण्ठ आदि अवयवों के सम्पर्क से स्पर्श वर्णों के उच्चारण में नाद का स्वरूप संकुचित हो जाता है। जिस प्रकार सुषुप्ति अवस्था में विषयों के सम्पर्क से मुक्त होने के कारण आत्मा का संकुचित रूप पुनः विवृत हो जाता है, उसी प्रकार सुषुप्ति के द्योतक स्वर वर्ण समूह के उच्चारण में अवयव-जनित संकोच के त्याग के कारण नाद का विवृत रूप प्रकट होता है। अतएव संकोच-ग्रहण एवं संकोच-त्याग के सादृश्य के कारण ही स्पर्श एवं स्वर वर्ण समूह क्रमशः जाग्रत् एवं सुषुप्ति दशाओं के अभिव्यञ्जक हैं। अर्थात् यह सादृश्य ही व्यङ्ग्य एवं व्यञ्जक सम्बन्ध का कल्पक है।

यद्यपि सूत्र में प्रयत्नौ शब्द के विशेषण के रूप में विदितौ सुधीभिः शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिससे स्पष्ट है कि स्पर्श एवं स्वर वर्णों के उच्चारण प्रयत्न प्रयुक्त दो प्रकार के पृथक् पृथक् ही वर्ण एवं अवस्थाओं के व्यङ्ग्य-व्यञ्जक सम्बन्ध के निदान हैं। तथापि वर्णों के उच्चारण प्रयत्न का मूल कारण सङ्कोच एवं संकोच-त्याग रूप अवस्था-सादृश्य ही है। अतएव 'प्रयत्नों' को उपचार से अवस्थाओं का अभिव्यञ्जक कहा गया है। अतएव टीकाकार लिखते हैं कि सूत्रकार की भांति 'प्रयत्न' की पर्यालोचना का अनुसंधान करना हमारा भी उद्देश्य है।

चतुर्थं सूत्रम्

स्पृष्टिर्यवर्गविषया विवृतत्वयुक्ता
स्पृष्ट्यान्तिवा विवृतता च शवर्गनिष्ठा।
तौ स्वप्न-तुर्य-दशयोर्गमकौ प्रयत्ना-
वेतौ स्मराम्यसकला-परिपूर्तिपूर्त्योः।।४।।

व्याख्या

अथान्तस्थोष्मणां स्वप्नतूर्य गमकत्वे सम्बन्धमुपपादयति स्पृष्टिरित्यादि। यवर्गविषया स्पृष्टिः स्पृष्टता प्रयत्नः विवृतत्वयुक्ता मिश्र प्रयत्न इत्यर्थः अत्रस्पृष्टतायाः प्राधान्यं विवृतता वास्तु तदनुवृत्यागुणत्वम्। एवञ्च यवर्गोच्चारण

प्रयत्नस्य स्पृष्टतायाः विवृतत्व संकीर्णतया असमग्रत्वे ईषत्स्पृष्टत्वमिति विवेकः। शवर्गोच्चारण प्रयत्नस्य विवृतायाः स्पृष्टता संकीर्णतया सामान्यभावे ईषत्विवृतत्वमेवेति वेदितव्यम्। अत एवेतौ प्रयत्नौ असकला परिपूर्त्तिपूर्त्योः असमग्र संकोचपूर्णभावयोः स्वप्नतुर्य दशयो यथाक्रमं गमकौ ईषत्संकोचरूपस्यस्वप्नस्य ईषत्स्पृष्टता ईषत्पूर्णरूपस्यतुर्यस्य ईषत्विवृतता च पूर्ववत्सादृश्यात् व्यज्यत इतिभावः। अत्रैवगम्यते स्पष्टंकरणं स्पर्शानामीषत्स्पृष्टमन्तस्थानामिति वैयाकरणैर्यदुक्तं तत्साधु। विवृतमूष्मणां-स्वराणांचेत्येतत्तुऊष्म स्वरानुभवविरोधादुपेक्षणीयमिति। स्मरामीति स्वानुसंधानेनास्य उपदेश्यजनशिक्षाविविक्षता।।४।।

भाषा टीका

सूत्र सार -

विवृतता से युक्त स्पृष्टता य वर्ग का विषय है एवं स्पृष्टता से युक्त विवृतता श वर्ग का विषय है। दोनों प्रयत्न क्रमशः स्वप्न एवं तुर्य दशाओं के अवबोधक हैं। इस प्रकार य वर्ग में स्पष्टता तथा श वर्ग में विवृतता अपूर्ण है। अतएव अपूर्ण विवृतता से युक्त दोनों प्रयत्न अपूर्ण सङ्कोच रूप स्वप्न एवं तुर्य के अवबोधक हैं।

व्याख्या

अन्तस्थ एवं ऊष्माण वर्ण समूह क्रमशः स्वप्न एवं तुर्य के अवबोधक हैं, इस प्रकार अवबोधन कराने में सक्षम वर्ण एवं अवस्थाओं के सम्बन्ध का निरूपण इस सूत्र में किया गया है। य वर्ग यद्यपि स्पृष्टता का विषय है तथापि स्पृष्टता में विवृतता का भी मिश्रण है अतएव यह प्रयत्न मिश्र है। यहाँ स्पृष्टता का प्राधान्य है तथा विवृतता अनुवृत्ति होने के कारण गौण है। इस प्रकार य वर्ग के उच्चारण-प्रयत्न में विवृतता का किञ्चित संश्लेष है अतः अपूर्ण स्पृष्टता के कारण इस प्रयत्न को ईषत्-स्पृष्ट नाम से सम्बोधित किया है।

श वर्ग के उच्चारण प्रयत्न में विवृतता की प्रधानता है तथा स्पृष्टता का किंचित् संश्लेष है अतः विवृतता के अपूर्णत्व के कारण इस प्रयत्न को ईषत्-विवृत नाम से सम्बोधित किया है। अतः ईषत्-स्पृष्टता एवं ईषत्-विवृतता नामक प्रयत्न क्रमशः स्वप्न एवं तुर्य अवस्थाओं के अवबोधक हैं।

जिस प्रकार स्वप्न एवं तुर्य अवस्थाएं क्रमशः ईषत् स्पृष्टत्व एवं ईषत्-विवृतत्व से युक्त हैं उसी प्रकार अन्तःस्थ एवं ऊष्माण वर्ण भी क्रमशः ईषत्-स्पृष्टत्व एवं ईषत्-विवृतत्व से युक्त हैं। अतएव स्वप्न एवं तुर्य अवस्थाओं के अभिव्यञ्जन में वस्तुतः ईषत्-स्पृष्टत्त्व एवं ईषत्-विवृतत्व रूप सादृश्य ही कारण है तथापि सूत्रकार ने ईषत्-स्पृष्ट एवं ईषत्-विवृत प्रयत्नों को उपचार से अभिव्यञ्जन में कारण मान्य किया है।

व्याकरण शास्त्र के अनुसार स्पर्श वर्ग का कारण स्पृष्टता है तथा अन्तःस्थ वर्ग का कारण ईषत्-स्पृष्टता है जो यहाँ यथावत स्वीकार किया गया है, किन्तु ऊष्माण एवं स्वर वर्गों को व्याकरण के अनुसार विवृत प्रतिपादित किया गया जिसकी सूत्रकार ने उपेक्षा की है। यहां अनुभूति के आधार पर स्वर वर्ग एवं ऊष्माण वर्ग में स्पृष्टता एवं विवृतता प्रयत्नों के अपूर्णत्व का प्रतिपादन किया है। अर्थात् स्वर-वर्ग एवं ऊष्माण वर्ग को सूत्रकार ने ईषत्-विवृत मान्य किया है।

पञ्चमं सूत्रम्

पूर्णैवपूर्तिरविकल्पपदेसुषुप्तौ
जाग्रत्यपूर्तिरपिसंसृतिधाम्नितद्वत्।
जाग्रत सुषुप्ति समवायपदे तुरीये
स्वप्ने च तादृशितयोरसमग्रतैव।।५।।

व्याख्या

अथानुभववेद्यं जाग्रदादीनां संकोच विकासाद्यानन्दान्वयायोपपादयति पूर्णेत्यादि अविकल्पपदे निर्विकल्प कक्ष्यायां वाह्याभ्यान्तरेन्द्रियविश्रान्ति रूपत्वादितिभावः। इदञ्चविशेषणंपूर्ति समग्रतायाः हेतुत्वेनोक्तम्। विकल्पाभाव एव निराघट पूर्णभाव बोधक इत्यनुभवः प्रमाणम्। अविकल्पपदत्वात् सुषुप्तौ पूर्तिः पूर्णैव समग्रैव संसृति धाम्नि घटपटाद्यननुसंधानरूप विश्रान्त्यस्पृष्टसंसारपदे गाढविकल्पोदयस्थानइति भावः। इदञ्च संकोचभावसमग्रताया हेतुत्वेनोक्तं विशेषणम्।

गाढ़विकल्पोदय एव महासंकोचसमर्पकइतिचानुभवएवप्रमाणम्। जाग्रत

सुषुप्ति समवायपदे मिश्रपदे तुर्येचतुर्थ दशायाम्। यद्यपितुरीये चिद्विश्रान्ति लक्षण सुषुप्तिव्याप्तिः तथापि सा जाग्रत्व्याप्तिश्चेत्यपि अनुसंधीयत इति विकल्पस्पृष्टतया जाग्रतश्चानुवृत्तिरितिमिश्रत्वमेव। स्वप्नेच तथा विधे मिश्ररूपे यद्यपि स्वप्नस्य-विकल्पप्राधान्यात् जाग्रत् सुषुप्तिसमवाय उभयोरेकरूप तथापि मिश्रत्वमात्र सामान्यविवक्षया स्वप्नस्यतुर्यसाम्यमुक्तम् तादृशीतितयो पूर्त्यपूर्त्योरसमग्रतैव तुर्ये पूर्त्य सामग्रयं स्वप्ने त्वपूर्त्त्यसामग्रयंचक्रमेणयोज्यम्।।५।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

निर्विकल्प सुषुप्ति अवस्था में आत्मा की समग्रता का पूर्ण रूप से अनुभव होता है। जाग्रत् अवस्था में आत्मा की असमग्रता (सङ्कोच) का पूर्ण अनुभव होता है। तुरीय एवं स्वप्नावस्था, जाग्रत एवं सुषुप्ति का मिश्रण है अतः इन दोनों अवस्थाओं में पूर्णत्व की असमग्रता (न्यूनता) है।

अनुभव द्वारा वेद्य जाग्रदादि दशाओं में सङ्कोच एवं पूर्णत्व के विवेचन के हेतु यह सूत्र लिखा गया है। निर्विकल्प सुषुप्ति दशा में वाह्य एवं आभ्यंतर इन्द्रियां विश्रान्ति को प्राप्त करती हैं अतः इस दशा में पूर्णत्व की अनुभूति होती है। अनुभव के द्वारा सिद्ध है कि विकल्पाभाव निराघट पूर्णत्व का बोधक है। अतः निर्विकल्पात्मक सुषुप्ति में पूर्ण रूप से आत्मा के पूर्णत्व की अनुभूति होती है।

जाग्रदात्मक संसरणावस्था में घट पट आदि का प्रत्यक्ष अनुसन्धान होता है, इस कारण इस अवस्था में विश्रान्ति का अभाव है। अतः संसरणात्मक जाग्रत् दशा प्रगाढ़ विकल्पोदय का स्थान है। पूर्ण रूप से विकल्प के विकसित होने पर आत्मा के पूर्ण सङ्कोच का आविर्भाव होता है। यह अनुभव प्रमाण से सिद्ध है। अतः जाग्रत् में पूर्ण रूप से आत्मा के अपूर्णत्व की अनुभूति होती है।

जाग्रत् तथा सुषुप्ति का मिश्रित रूप तुर्य दशा है। यद्यपि तुर्य अवस्था में चित् विश्रान्ति रूप सुषुप्ति की व्याप्ति होती है तथापि जाग्रत् व्याप्ति का अनुभव भी होता है, अतः विकल्प-स्पृष्टि के कारण तुर्य दशा जाग्रत की अनुवृत्ति है। अतः इसको मिश्र दशा कहा गया है। विकल्प की प्रधानता

के कारण स्वप्नावस्था में यद्यपि जाग्रत एवं सुषुप्ति का एक रूप है तथापि मिश्रत्व मात्र के कारण सामान्य रूप से स्वप्न को तुर्य के समान ही कहा गया है।

इस प्रकार दोनों ही दशाओं में पूर्णत्व की असमग्रता (अपूर्णता) है। अर्थात् तुर्य में पूर्णत्व की असमग्रता (अपूर्णता) तथा स्वप्न में अपूर्णत्व की असमग्रता है।

तात्पर्य यह है कि केवल सुषुप्ति में पूर्णत्व का साम्राज्य है अन्य, तुर्य एवं स्वप्न अवस्थाओं में आत्मा के सङ्कोच के कारण अपूर्णत्व है। संक्षेप में तात्पर्य यह है कि सुषुप्ति अवस्था में आत्मा का पूर्णत्व, एवं जाग्रत् अवस्था में आत्मा के स्वरूप का पूर्ण रूप से सङ्कोच रहता है। अतः सुषुप्ति एवं जाग्रत् पूर्ण अवस्थाएं हैं। तुर्य दशा में जाग्रत्-गत् सङ्कोच का मिश्रण होता है अतः यहां आत्मा के पूर्णत्व का पूर्ण अनुभव नहीं होता है, इसी प्रकार स्वप्न में आत्मा की पूर्णता का किञ्चित् आभास होने से सङ्कोचावस्था की अपूर्णता होती है। अतः तुर्य एवं स्वप्न में अपूर्णत्व है।

षष्टमं सूत्रम्

स्वप्नः सुषुप्त्यनुगतंननु जाग्रदेव
तुर्यञ्चजाग्रदनुवृत्तसुषुप्तिरेव ।
स्वप्नस्तथाचसति जाग्रत् एव
भेद-स्तुर्यादशापि च तथैव सुषुप्तिभेदः।।६।।

व्याख्या

उक्त प्रकारेणस्पर्शादिवर्णैः जाग्रदादीनां संकोचभावादिलक्षणं सादृश्येन गम्यगमकभाव सम्बन्ध निबन्धनं प्रतिपाद्यज्ञान क्रियारूपतया प्रत्येकं द्वैविध्यं जाग्रत्सुषुप्त्योः तत्र स्वप्नोज्ञानजाग्रत् या जाग्रदिति प्रसिद्धादशा सा क्रिया जाग्रत् तदा तुर्यं ज्ञान सुषुप्तिः या सुप्तिः या सुषुप्तिः इति प्रसिद्धदशा सा क्रिया सुषुप्तिः। ततः स्वप्नो जाग्रद्भेद एव तुर्यञ्च सुषुप्तिभेद एवेति दशा चतुष्टयस्य वर्गद्वयरूपतां तत्स्वरूप ज्ञानाद्यधिकरणाय समुपदिशति स्वप्नः सुषुप्त्यनुगतमित्यादिना। ननु स्वप्नो नाम जाग्रद्भेद एव यथा जाग्रति घटपटादयोः

गृह्यन्ते तथात्रापीति। अयमेवविशेषः यत्स्वप्ने सुषुप्तेरनुवृत्तिः जाग्रति तन्निवृत्तिरिति। अथ तुर्यञ्च सुषुप्तिरेव। तथा विश्रान्त्युपलम्भादत्र चायमेवविशेषः यत्तुर्यें जाग्रदनुवृत्तिः सुषुप्तौतु तन्निवृत्तिरिति। एवं विशेषाल्पतया स्वप्नतुर्ययोः जाग्रत् सुषुप्ति भेदत्वं वेदितव्यमिति भावः।।६।।

भाषा टीका

सूत्रसार

सुषुप्ति में अनुभूत स्वप्न अवस्था जाग्रत् ही है। इसी प्रकार जाग्रत् में अनुवृत्त तुर्य दशा सुषुप्ति है। अतएव स्वप्न अवस्था जाग्रत का ही भेद है एवं तुर्य दशा सुषुप्ति का भेद है।

व्याख्या

पूर्व सूत्र में स्पर्श आदि वर्णों के द्वारा जाग्रत् आदि दशाओं के संकोच आदि भावों से परिभाषित सादृश्य के आधार पर ज्ञाप्य-ज्ञापक सम्बन्ध का निरूपण करने के पश्चात् प्रस्तुत सूत्र में ज्ञान – क्रिया की अपेक्षा से जाग्रत् एवं सुषुप्ति प्रत्येक को दो भागों में विभाजित किया है।

यहां स्वप्न का ज्ञान – जाग्रत् नाम से उल्लेख किया गया है तथा जाग्रत नाम से प्रसिद्ध दशा को क्रिया-जाग्रत् कहा गया है। तुर्य को ज्ञान-सुषुप्ति तथा सुषप्ति नाम से प्रसिद्ध दशा को क्रिया-सुषुप्ति के नाम में सम्बोधित किया गया है। इस प्रकार स्वप्न जाग्रत् अवस्था का तथा तुर्य दशा सुषुप्ति का ही भेद है। अर्थात् जाग्रदादि चार दशाओं को दो वर्गों में प्रतिपादित किया गया है।

वस्तुतः स्वप्न अवस्था जाग्रत् का ही भेद है। जिस प्रकार जाग्रत् अवस्था में घट पट आदि वस्तुओं का ग्रहण होता है उसी प्रकार स्वप्न में भी वस्तुओं की अनुभूति होती है। अन्तर केवल इतना ही है कि स्वप्न अवस्था में सुषुप्ति की अनुवृत्ति है जिसकी जाग्रत् में निवृत्ति हो जाती है। इसी प्रकार तुर्य में दशा सुषुप्ति ही है विशेषता केवल यही है कि तुर्य जाग्रत् की अनुवृत्ति है जिसकी सुषुप्ति में निवृत्ति हो जाती है। इस प्रकार विशेषता तथा अल्पता के कारण स्वप्न एवं तुरीय को जाग्रत् एवं सुषुप्ति का भेद स्वीकार करना ही उचित है।

सप्तमं सूत्रम्

ज्ञानात्मनान्तरूदितेखलुबोदसुप्ति
स्वप्नस्तुरीयमिति नाम विशेषभाजौ।
बाह्येक्रियात्मकतयोदितयोस्तयोः
स्यादाख्या प्रबोधइतिसुप्तिरितिप्रसिद्धा।।७।।

व्याख्या

स्वप्नतुर्ययोर्जाग्रत्सुषुप्त्यपेक्षामभिस्फुटीकरोति ज्ञानात्मनेति। ज्ञानाकारत्वमेववर्णभेद इति प्रक्रान्तप्रमेयतात्पर्यम् ज्ञानात्मनेति बोधश्च सुप्तिश्च बोध सुप्तिरित्यर्थः प्रथममन्तः आभ्यन्तर कक्षायां ज्ञानात्मना ज्ञानरूपेण उदिते सति यथाक्रमं स्वप्नस्तुरीयमिति नाम विशेषौभवतः। अथ बाह्ये बाह्येन्द्रियकक्षायाक्रियात्मकतया क्रियारूपेणोदितयोस्तयोर्जाग्रत् सुषुप्त्योः प्रबोध इति सुप्तिरिति जाग्रत् सुषुप्तिरिति प्रसिद्धारूपा व्यवहारो भवतीत्यर्थः। एतेनाभ्यन्तरेन्द्रियानुसंधानं ज्ञानरूपं बाह्येन्द्रियानुसंधानं क्रियारूपमिति वेदितव्यम्। संसृतिश्चविश्रान्तिश्च प्रथममाभ्यन्तरेन्द्रियानुसंहितासती पश्चाद्वाह्येन्द्रिय प्रथायामवतरतीति विवेकः। सर्वस्यापिभावस्य शिवशक्त्यात्मकतया ज्ञानक्रियारूपत्वमितिभावः एवञ्च ज्ञानजाग्रत्क्रिया जाग्रत् ज्ञान सुषुप्तिः क्रिया सुषुप्तिः पुनरपि ज्ञान जाग्रदादीत्येवं दशा चतुष्टयादवतरतस्तुर्यातीत नाभेः कालचक्रस्यपरिभ्रमणमनुसन्धेयमिति तात्पर्यम्।।७।।

भाषा टीका

इस सूत्र में जाग्रत् एवं सुषुप्ति की अपेक्षा से तुर्य एवं स्वप्न अवस्थाओं का स्पष्टीकरण किया गया है। इस सूत्र में प्रतिपादित सिद्धांत का तात्पर्य है कि वर्ण-भेद ज्ञानाकार है।

सूत्रसार -

जाग्रत् एवं सुषुप्ति दशाओं का प्रथम जब आभ्यन्तर कक्षा में ज्ञान–रूप से उदय होता है तब यह दोनों दशाएं क्रमशः स्वप्न एवं तुरीय नाम विशेष से संबोधित की जाती हैं। जब इन्हीं जाग्रत् एवं सुषुप्ति दशाओं का

बाह्य इन्द्रिय कक्षा में क्रिया रूप से उदय होता है, तब इनका प्रबोध (जाग्रत्) एवं सुषुप्ति नाम से व्यवहार किया जाता है।

व्याख्या

इसका तात्पर्य है कि आभ्यन्तर इन्द्रियों द्वारा कृत विषयानुसन्धान ज्ञान रूप है तथा बाह्य इन्द्रियों द्वारा अनुष्ठित विषयानुसन्धान क्रिया रूप है।

संसृति एवं विश्रान्ति की अनुभूति सर्व प्रथम आभ्यन्तर इन्द्रियों द्वारा होती है, तत्पश्चात् इस अनुभूति-परम्परा का बाह्य इन्द्रियों में अवतरण (आविर्भाव) होता है। इसका तात्पर्य है कि समस्त संसृति एवं विश्रान्ति रूप भाव श्रृङ्खला शिव-शक्त्यात्मक होने से ज्ञान–क्रिया स्वरूप है।

संक्षेप में इस प्रक्रिया को इस प्रकार कहा जा सकता है कि जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-तुर्य चार अवस्थाओं का अवतरण अर्थात् वर्गीकरण (१) ज्ञान–जाग्रत्, क्रिया-जाग्रत् (२) ज्ञान–सुषुप्ति एवं क्रिया–सुषुप्ति में होता है। इन दो वर्गों का जब पुनः वर्गीकरण किया जावे तब इन दोनों का अनुसन्धान तुर्यातीत की नाभिरूप काल-चक्र के परिभ्रमण में करना चाहिये। अर्थात् कारण रूप तुर्यातीत अवस्था के नाभि अर्थात् काल चक्र में (१) ज्ञान–जाग्रत्, क्रिया जाग्रत (२) ज्ञान सुषुप्ति क्रिया सुषुप्ति का समावेश रहता है। जब इस कालचक्र का परिभ्रमण होता है तब प्रथम दशाओं के दो वर्गों का ततः चार जाग्रदादि अवस्थाओं का आविर्भाव होता है।

अष्टमं सूत्रम्

जाग्रद्बहिर्विलसनंननुभेदसृष्टेः
स्वप्नान्तरुल्लसनमित्युभयीदशैव।
तुर्याभिधानमुपयात्यविभेददृष्टौ
सृष्टिद्वयस्य जनिविश्रमभूः सुषुप्तिः॥८॥

व्याख्या

इदानीं जाग्रदादि दशा चतुष्टयस्य भेदाभेदरूप संसारस्तदविश्रान्तिस्वभावतां यथायोगमुपदर्शयति जाग्रद्बहिरित्यादिः सृष्टिः प्रवृत्तिरूपसंसारः भेदसृष्टेः भेद रूपप्रवृत्ति संसारस्य बहिर्विलसनं बाह्येन्द्रिय कक्षायामवभासनं जाग्रत्

तस्याएवभेद सृष्टेः अन्तरुल्लसनं आभ्यन्तरेन्द्रियकक्षायां स्फुरणं स्वप्नः दशाद्वयमिदं पशोः संसार भूमिरितिवेदितव्यम्। इत्युभयीदशैव जाग्रत्स्वप्नरूपदशाद्वयमेवोत्रौवभेद सृष्टिः। अविभेदो विभेदस्याभावः संहारः विश्रान्त्यौन्मुख्येन भेद निवृत्ति मार्गपरिग्रहः तत्सृष्टौ तुर्याभिधानमुपयाति भेदसंसारादयंमार्गः। जाग्रदन्तदशात्रयापेक्षयाचतुर्थत्वाच्चतुर्थः चतुर्थपर्यायः खलुतुरीयशब्दः। सुषुप्तिस्वभावंदर्शयति सृष्टिद्वयेति। सृष्टिद्वयस्यभेदाभेदरूपस्य जनिरुत्पत्तिः विश्रमोविलयः तदभूस्तत्पदंसुषुप्तिः सुषुप्तेर्भेदाभेदरूप विश्रान्तितया प्रतिपादयिष्यमाणया जीवशिवसंसारोदय विलयभूमित्वम्। एकदुक्त भवति सुषुप्यादिजाग्रदन्तेन भेदरूपेण पदत्रयेण जीवः संसरति। जाग्रदादि सुषुप्त्यन्तेना भेदरूपेणतुर्याभिधानजुषा तेनैवपदत्रयेण शिवाख्यानात्विश्रमते तं विश्रममार्ग पाशमेव भजन्नपि मायया न विमृशति। एवं शिवोऽपीच्छाज्ञानक्रिया पर्याय भेद रहित सुषुप्तिस्वप्नजाग्रत्तयेव संसरति। तुर्यपर्याय जाग्रदादि सुषुप्त्यन्त जाग्रदादिनिवृत्तिमार्गेण विश्रमतेच। यद्यपिशिवे प्रवृत्ति निवृत्तिमार्गयोर-भेदैकरूपत्वात् तुर्य व्यवहारो विद्यते। तथापि निवृत्तिमार्गएव तस्यव्यवहारस्य मुख्यत्वमिति महोपदेशः। अद्वैत संसारस्य द्वैत संसारसमः समाधिरित्युत्तर प्रतिपादयिष्यमाणेषु तत्पदेषुत्प्रक्रियोत्त्रयनम्।।८।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

भेद-सृष्टि का वाह्य विलास जाग्रत् है तथा अन्तः उल्लास स्वप्न है। अभेद सृष्टि में जाग्रत् एवं स्वप्न दोनों ही दशाएं तुर्य नाम से सम्बोधित की जाती हैं। भेद एवं अभेद दोनों प्रकार की सृष्टियों का उत्पत्ति एवं विश्रान्ति स्थल सुषुप्ति है।

व्याख्या

इस सूत्र में जाग्रत आदि चारों अवस्थाओं के भेद एवं अभेद रूप संसार तथा उसकी विश्रान्ति-स्वभाव का यथायोग दिग्दर्शन कराया गया है।

सृष्टि का अर्थ है प्रवृत्ति रूप संसार। भेद सृष्टि अर्थात् भेद रूप प्रवृत्ति-संसार का वाह्य-इन्द्रिय-कक्षा में अवभासन जाग्रत् है। इसी भेद-सृष्टि का जब आभ्यन्तर इन्द्रिय-कक्षा में स्फुरण होता है तब इसको स्वप्न नाम से कहा जाता है। जाग्रत् एवं स्वप्न दोनों दशाएं पशु अर्थात् जीव के संसार की भूमि हैं।

जाग्रत् एवं स्वप्न रूप दोनों दशाएं ही अभेद सृष्टि भी हैं। अभेद का अर्थ है भेद का अभाव अर्थात् संहार। तात्पर्य यह कि जब जीव विश्रान्ति की ओर उन्मुख होकर भेद सृष्टि से निवृत्ति के मार्ग, का परिग्रहण करता है तब जाग्रत एवं स्वप्न का अभेद रूप में आविर्भाव होकर इन दोनों दशाओं का तुर्य नाम हो जाता है। भेदात्मक सुषुप्ति से जाग्रत् पर्यन्त तीनों दशाओं की अपेक्षा यह अभेद मार्ग चौथी अवस्था है, अतएव इसको तुर्य कहा जाता है। तुर्य शब्द का पर्याय चतुर्थ है।

भेदाभेद रूप सृष्टि-द्वय का उत्पत्ति एवं विश्रान्ति पद सुषुप्ति है। आगे भेदाभेद को विश्रान्ति रूप प्रतिपादित करने के लिये सुषुप्ति को यहां जीव व शिव के संसरण एवं विलय की भूमि कहा गया है। सुषुप्ति से जाग्रत् पर्यन्त भेद रूप से तीनों अवस्थाओं में जीव का संसरण होता है। जाग्रत् से सुषुप्ति पर्यन्त अभेद रूप से तीनों अवस्थाओं का तुर्य नाम से प्रयोग होता है जिसमें शिव का विश्राम है। इस अभेद विश्रम मार्ग में पाश का लेश होते हुए भी मायात्मक विमर्श का आविर्भाव नहीं होता है। इस प्रकार इच्छा-ज्ञान-क्रिया के पर्यायभूत भेद से रहित सुषुप्ति, स्वप्न एवं जाग्रत् अवस्थाओं में शिव का संसरण होता है तथा तुर्य के पर्यायभूत जाग्रत से सुषुप्ति पर्यन्त निवृत्ति मार्ग से विश्राम होता है। अर्थात् शिव का संसरण अभेद सुषुप्ति-स्वप्न-जाग्रत् अवस्थाओं में एवं विश्रान्ति तुर्य अवस्था में है। यद्यपि प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मार्ग की अभेद एकरूपता के कारण शिव में तुर्य का व्यवहार होता है तथापि इस व्यवहार में निवृत्ति मार्ग की ही प्रधानता है। अद्वैत संसरण की स्थिति द्वैत संसरण के समान ही है अतः आगामी पदों में इस सिद्धान्त के प्रतिपादन करने की दृष्टि से इस सूत्र में वर्तमान प्रक्रिया का प्रतिपादन किया गया है।

नवमं सूत्रम्

सृष्टाबहिः शिवचिताप्रकृतिर्विसर्ग-
स्तांस्वात्मना कवलयन्शिवएष बिन्दुः।
संसारविश्रमजुषोरितिनामधेये
संसारिणौ पशुशिवौ च पशुः शिवश्च।।९।।

व्याख्या

एवं दशा स्वरूपमुपद्दिश्य तदधिष्ठा तृभूतं शिव जीवस्वरूपंतिरूपयिष्यन्– प्रकृतोपयुक्ततयामन्त्रसमयसिद्धांबिन्दुविसर्गं परिभाषां व्युत्पादयति सृष्टावहिरित्यादि। शिवचिता शिव इति व्यवह्लियमाणया चिता प्रकाशतत्वेन बहिरिव नतुपरमार्थतोबहिः सर्वव्यापिवस्तुनः प्रकाश भित्ति लग्नतायां सत्यामेव सत्तासिद्धेः तद्वहिष्ठतायां तदसिद्धेः। सृष्टाविसृष्टा विसर्जनमपि चमत्कारमात्रा। प्रकृतिः स्वभावः विमर्श-इत्यवगन्तव्यम्। प्रकाशस्य वा स्वभावो विमर्शः।

येन स्वभावेन विना प्रकाशस्यार्थोप रागेति स्फटिकादिकस्येवजाड्यम् प्रसज्यत इतिप्राप्त स्वसंविच्छास्त्रकारैरुद्घोषित मन्त्रमात्रसमयंदीक्षानन्तरमधिकृत संविच्छास्त्र-सिद्धान्ताएवपरम रहस्य रूपस्य मन्त्रार्थस्योपदेशाधिकारिण इत्यस्माभिरिह मन्त्रार्थ विवेक प्रस्तावे सविन्मतसारमात्रमेवोद्दीर्यत इत्यनभियोगः। प्रकाशो हि स्व स्वभाव भूतं स्वात्मविश्रान्तं पराप्रकृति स्वातन्त्र्य माया विद्यादिशब्दैरागमिकैर्व्यवह्लियमाणं जगद्बीजभूतंविमर्श कदाचिंत् प्रपञ्चानुसंधित्सायां स्वात्मभित्तावेव बहिरिव विसृज्यत इतिविसर्गपदवाच्यो विमर्शो वेद्याकारवान् वेदकं कवलयति अतएव प्रमाता च भवति।

स च वेदकश्चिन्द्रूपोऽपि प्रमुषित वैभवः प्रमेयतामुपगतो जीवोभवति। यदापुनः सः शिवप्रकाशः प्रपञ्चसज्जिहीर्षायां तांविमर्श रूपिणीं प्रकृतिं स्वात्मनाकवलयतितदा भिदि धातोरविच्छेदार्थतया विद्यते अविच्छेद्यतइति विद्यते बिन्दु शब्द व्यवहार्योभवति। विन्दुरविच्छेद कारणमिति भारतीयानाञ्च व्यवहारः। अपरिच्छिन्नस्वभावो भवतीत्यभिप्रायः। एवं वेद्यात्मनो विमर्शस्य विसर्गत्वंवेदकात्मना प्रकाशस्य बिन्दुत्वमुपदिष्टंभवति। एकदेवाहसंसार-विश्रमजुषोरिति। संसरण स्वभावोविमर्शः अरुण विश्रमण स्वभावः प्रकाशः तयोरित्युक्त प्रकाशौ विसर्गबिन्दुशब्दौ नामधेयत्वेनपरिभाषितौ। अथ विसर्ग समुन्नीतस्य विचित्रस्य संसारस्य सामान्यदृष्ट्याविषयमाह संसारिण इति।।९।।

भाषा टीका

इस प्रकार जाग्रत् आदि दशाओं के स्वरूप का उपदेश करने के पश्चात् शिव एवं जीव के स्वरूप का निरूपण करने के हेतु मन्त्र शास्त्र के समय सिद्धान्त के अनुसार विन्दु एवं विसर्ग की परिभाषा करते हैं।

सूत्रसार -

शिव नामक चित् अर्थात् प्रकाश-तत्त्व के द्वारा वाह्य कक्षा में विसृष्ट प्रकृति को विसर्ग नाम से सम्बोधित किया गया है। जब प्रकाशात्मक शिव पुनः प्रपञ्च के संहार की इच्छा से विमर्श रूपिणी प्रकृति को आत्मसात् कर लेता है तब वह विन्दु नाम से कहा जाता है। संसरण-स्वभावात्मक विमर्श तथा विश्रमण स्वभावात्मक प्रकाश की परिभाषा के रूप में विसर्ग एवम् विन्दु का उल्लेख किया गया है। अतएव संसरणावस्था में पशु-शिव का सामरस्य रूप पशु एवं शिव में विभक्त हो जाता है।

व्याख्या

प्रकाश के साथ संलग्न रह कर ही विमर्श की सत्ता की सिद्धि होती है, प्रकाश के बाहर विमर्श की सत्ता सिद्ध नहीं है, किन्तु यहां सूत्रकार ने प्रकाश-तत्त्व के द्वारा वाह्य कक्षा में विसृष्ट प्रकृति को विसर्ग नाम से कहा है, परन्तु वाह्य कक्षा में प्रकृति की सत्ता की सिद्धि असम्भव है। अतः टीकाकार ने सम्प्रदाय के मतानुसार प्रतिपादन किया है कि वाह्य शब्द लिखने से प्रयोजन वाह्य इव समझना चाहिये। अर्थात् यद्यपि प्रकृति रूप विमर्श वास्तव में शिव की सत्ता के बाहर नहीं है तथापि शिव की सत्ता के बाहर भासता है। तात्पर्य यह कि विमर्श की प्रतीति मात्र बाहर होती है। इसके अतिरिक्त विसर्जन केवल चमत्कार मात्र है। वास्तव में कोई विसर्जन या सृष्टि नहीं होती है। प्रकृति स्वभाव से विमर्शात्मक है तथा प्रकाश का स्वभाव विमर्श है, जिस स्वभाव के बिना प्रकाश तत्त्व में भी अर्थ के उपराग के कारण स्फटिक आदि के समान जाड्य की शङ्का उत्पन्न हो जावेगी। अतः विमर्श की शिव तत्त्व के बाहर केवल प्रतीतिमात्र है तथा प्रकाश के द्वारा प्रकृति का विसर्जन चमत्कार मात्र है।

सूत्र में प्रकृति की सृष्टि को प्रकाश तत्त्व के बाहर उल्लेख करने का यह कारण भी है कि संवित्-शास्त्र के द्वारा घोषणा की गई है कि दीक्षा के उपरान्त ही साधक समय सिद्धांत के रहस्य को प्राप्त करने का अधिकारी है अतः टीकाकार लिखते हैं कि यहां सार रूप से ही सूत्र के अर्थ की विवेचना की जा रही है। परम्परागत रहस्य का उद्घाटन करना शास्त्र की आज्ञा के विपरीत है।

उपर्युक्त प्रकार से प्रकाश तथा विमर्श की व्याख्या से निष्कर्ष निकलता है कि परा, प्रकृति, माया एवं अविद्या आदि शब्दों से व्यवहृत; अपने स्वभाव के कारण आत्मा में विश्रान्त, जगत के बीज भूत विमर्श को कदाचित प्रकाश तत्त्व प्रपञ्च के अनुसंधान की इच्छा से स्वात्म रूप भित्ति में इस प्रकार विसर्जित करता है; जिससे उसकी सत्ता की बाह्य कक्षा में प्रतीति हो। तब इस दशा में विसर्ग शब्द द्वारा वाच्य विमर्श, वेद्य के रूप में भासित वेदक (ज्ञान) को अर्थात् प्रकाशात्मक बिन्दु को अपने अन्तर्गत विलीन कर लेता है। अतएव विमर्श तत्त्व का प्रमाता के रूप में आविर्भाव होता है, तथा चित् रूप वह वेदक-शिव तत्त्व अपने वास्तविक स्वरूप से च्युत होकर प्रमेयता (वेद्य-भाव) को प्राप्त कर जीव रूप में प्रकट होता है।

जब कभी वही प्रकाश रूप शिव प्रपञ्च के संहार की इच्छा करता है, तब विमर्श रूपिणी प्रकृति को अपने अन्तः में विलीन करके अभेद्य बिन्दु के नाम से सम्बोधित किया जाता है। भारतीय विद्वानों के मत से बिन्दु अविच्छेद्य कारण रूप है तथा स्वभाव से बिन्दु अविच्छिन्न है, इस प्रकार वेद्यात्मक विमर्श की विसर्गरूपता तथा वेदकात्मक प्रकाश की बिन्दुरूपता का प्रतिपादन किया गया है। विमर्श संसरणात्मक तथा प्रकाश विश्रान्ति रूप है तथा संसरणात्मक अवस्था में पशु-शिव भेद रूप पशु एवं शिव के रूप में प्रतीत होते हैं।

दशमं सूत्रम्

द्वैतात्मकंभवति संसरणं पशोस्त-
दद्वैत रूपमभवस्य परस्य शम्भोः।
मिश्रंत्रिरूपमपि संसरणं यतः स्याद्
विश्रान्ति भांक्तदिहधामपरं हिबिन्दुः।।१०।।

व्याख्या

पशुजीवपरमशिवा सामान्याः न तावत् संसारिणएवेतिप्रदर्शितम्। इदानीं पश्वादीनां विविच्य संसारविषयितामुपदर्शयति। द्वैतात्मकं भवतीति। तत्र विसर्ग पर्यायस्य विमर्शस्याविद्यारूपेणभेदचमत्कारोन्मीलनादितिभावः। तत्संसरणं

अभवस्यशिवस्य सम्बन्धि अद्वैतरूपं तत्र विमर्शात्मक विद्यारूपेणा-भेदचमत्कारपरिग्रहात् तथात्वमित्यवगन्तव्यम्। परस्य शम्भोः संसरणमित्यनुवर्तते। मिश्रं द्वैताद्वैतरूपं तत्र विद्याविद्योभयरूपिण्याः विमर्शशक्तेर्यौगपद्येनभेदाभेदैकरहस्यप्रदर्शन चमत्काराभ्युपगम इति वेदितव्यम्। अत्र तृतीय कक्ष्यायां परशम्भुपदोपादानेन त्रिकविश्रान्ति सिद्धान्तेऽपिवहुमतिरूपसूचिता। तस्यापि तृतीयपदाधिष्ठातृ संसारेषु परिगणनं चतुष्टयार्थमत् श्रद्धयाकृतम्। अतः संसारकलंकास्पृष्टंशुद्धान्तरमुख विश्रम स्वभावं महाबिन्दु पदं विवेचयति। त्रिरूपमित्यादि। यतः यत्रेति त्रिरूपमपि संसरणंविश्राम्यति। तत्परमनुत्तरं धामबिन्दुरितिनिष्कृष्टमितिभावः। यद्यपिचतुर्थ कक्ष्यायाः सर्व संसारोपादानभूत पूर्णविमर्श स्वभावतया महाविश्रान्तिपदत्वं तथापि कक्ष्यात्रयोदञ्चित प्रपञ्च कलकलानुसन्धानगन्धोनोपशान्त इति तदुत्तीर्ण पञ्चममेव परव्योम लक्षणंपदं पञ्चमाम्नाय पर शोधितं निष्कल महाबिन्दुतत्वमिति तात्विक सिद्धान्तः। अत्रैतदुद्दिष्टंभवति। यत्र पशोः सुषुप्ताद्यवस्थात्रयंभेदरूपं अथवा भेदरूपायां शैवी तुर्यदसायाञ्च तदतीतदशा। एतस्मिन्स्वरस्पर्शादिभिर्मन्त्रैः अवधीयत इतिप्रतिपादिते दशा पञ्चकेभेदाभेदमिश्र संसारस्त्रिस्त्रो दशा सर्व संसारैकैकविश्रान्तिरूपा चतुर्दशानांयोगः। तुर्येचतुर्थ दशायां योगः तदतीते महाबिन्दु दशायोग इति तद्विवेक। त्रिविधसंसार तदेकरसविश्रम तदुत्तीर्णमहाविश्रम दशासु सर्वमपि दशाजातमन्तर्भूतमितिसिद्धजन घण्टापथः। अतोऽयमुपदेशो मनीषिजनहृदयङ्गमइत्यलमितिप्रसङ्गेन।।१०।।

भाषा टीका

पूर्व सूत्र में पशु, जीव एवं परम-शिव को सामान्य रूप में प्रतिपादित किया गया है। इस सूत्र में पशु आदि की विशेष संसरणात्मक दशा का विवेचन किया जाता है।

सूत्रसार -

विसर्गात्मक विमर्श अविद्या के स्वरूप में भेद चमत्कार की सृष्टि करता है अतः पशु (जीव) दशा में संसरण द्वैतात्मक होता है।

अ-भव अर्थात् शिव सम्बन्धी वह संसरण अद्वैत रूप है क्यों कि विद्या के रूप में विमर्श का चमत्कार अभेदात्मक होता है।

पर-शम्भु का संसरण द्वैताद्वैतात्मक होता है अतः विद्यात्मक एवं अविद्यात्मक विमर्श का एक ही समय में चमत्कार दृष्टिगत होता है।

परशम्भु रूप तृतीय पद को उपादान के रूप में स्वीकार करके तीनों दशाओं के विश्रान्ति का स्थल बहुमत से मान्य किया गया है।

व्याख्या

यदि तृतीय पद के अधिष्ठाता परशम्भु को संसरणात्मक स्वीकार किया जावे तब चतुर्थ दशा को भी स्वीकार करना होगा जिसको संसारात्मक कलङ्क के स्पर्श से रहित, शुद्ध, अन्तर्मुख, विश्रान्ति, स्वरूप महा-बिन्दु के नाम से यहाँ श्रद्धा पूर्वक प्रतिपादित किया है, जिसमें तीनों दशाओं का संसरण विश्रान्ति को प्राप्त करता है।

यद्यपि समस्त संसार की उपादान भूत, स्वभावतया पूर्ण, विमर्शात्मक चतुर्थ कक्षा को महाविश्रान्ति पद कहा गया है तथापि इस पद में कक्षा-त्रय से उद्भूत प्रपञ्च कला की गन्ध पूर्ण रूप से शान्त नहीं होती है अतः चतुर्थ तुर्य नामक दशा से परे पांचवीं दशा पर व्योमात्मक निष्कल महाबिन्दु तत्त्व है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि सुषुप्ति आदि तीन अवस्थाएं भेद रूप हैं अथवा भेद रूप चतुर्थ शिव तत्त्वात्मक तुर्य दशा के अतीत ही तुर्यातीत दशा है। इन दशाओं का स्वर, स्पर्श आदि मन्त्रों के द्वारा अभिधान किया गया है।

इस प्रकार प्रतिपादित दशापञ्चक में भेद-अभेद भेदाभेद संसार के रूप में तीनों दशाओं में से प्रत्येक का, समस्त संसार का विश्रान्ति रूप चौथी दशा में योग है अर्थात् तुर्य में जाग्रत् आदि तीनों दशाएं अभेद रूप में स्थित हैं। इस से भी परे पांचवीं महाबिन्दु नामक दशा है जिसमें जाग्रत् से तुर्य पर्यन्त चारों दशाएँ पूर्ण अभेद रूप से लीन हैं।

त्रिविध संसार एक रस होकर विश्रान्ति रूप तुर्य में लीन रहता है तथा तुर्य से परे महाविश्रान्ति रूप दशा में समस्त चारों दशाएं अन्तर्लीन रहती हैं। यह सिद्धान्त सिद्धजनों का राजमार्ग है। अतः इस उपदेश को विद्वानों ने हृदयङ्गम किया है।

एकादशं सूत्रम्

गौणोहिबिन्दुरिति वित्तिरभेदरूपा
शैवी तनुर्भवतिभेदपदं तु वेद्यम्।
जीवस्यसंवरकमस्यतमस्वरूपम्
सगैर्भविद्व्यहृतिर्महतामितीयम्।।११।।

व्याख्या

उक्त न्यायेन बिन्दोरपरिच्छेद लक्षणत्वाच्छिवस्य विकल्पस्पृष्ट्या परिच्छेदसंभवेन बिन्दुलक्षणस्यासमग्रत्वेऽपि गौणन्यायेन बिन्दुव्यवहारोऽङ्गीक्रियते इत्याह गौणेत्यादि। वित्तिः संवित्तिः अभेदरूपा इदं विशेषणंगौण बिन्दु व्यवहार हेतुभूतगुणगर्भितमभेदरूपत्वं गुणः तदवत्तया गौणो बिन्दुर्भवतीति विशेषः। सा वित्तिः शैवी शिवसम्बन्धिनी तमस्वरूपं भवतिमिश्रसंसाराधिष्ठा-तुरप्येवंबिन्दुत्वमूहनीयम्। व्यवहार बाहुल्याभिसन्धिना शिवस्यैवोक्तबिन्दुत्व-मितिवेदितव्यम्। एवं यशोरपि परिच्छेदे सत्यपिचिद्रूपतया विन्दुत्वंप्राप्तमेव। अथतस्य चैत्यव्याप्यतयाविसर्गत्वमपिसंभावित-मित्याहभेदपदमित्यादि। भेदपदंभेद स्थानंवेद्येतुशब्दोवित्तस्वरूपाच्छिवाज्जीवस्य-भेदमवगमयति। जीवस्य संवरकंतमेवास्यस्वरूपंयद्यस्य संवरकंतत्तस्यस्वरूपमिति भावः। वेद्यमपिभेदस्यसंवरकंव्यापकं ततस्तस्य स्वरूपंभवतीत्यर्थः। अतो वेद्यरूपतया जीवस्यवेद्यवद्विसर्गशब्द व्यवहार विषयोभवेदित्यर्थः। महतां मन्त्रसमय विदामितिइयमुक्त प्रकारा व्यवहृतिः व्यवहारः इत्यर्थः।।१।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

नवम सूत्र में शिव को ही विन्दुरूप प्रतिपादित किया है। परिभाषा में विन्दु को अभेद्य कहा है, किन्तु दशम सूत्र में शिवात्मक तुर्य दशा में विकल्प के संश्लेष की चर्चा की है। इस कारण से शिवात्मक विन्दु में भी विकल्प के अस्तित्त्व की सम्भावना बलवती हो जाती है, जिसके फल स्वरूप, परिभाषा द्वारा प्रतिपादित विंदु के अविच्छेद्य स्वरूप की कल्पना दूषित हो जाती है। अतः यह विंदु शिव ही है इस प्रतिज्ञा को पुष्ट करने के लिये सूत्रकार ने

गौण-न्याय का आश्रय लिया है। अर्थात् विन्दु के गर्भ में बीजरूप से गुणों की स्थिति का प्रतिपादन किया है।

सूत्रार्थः – विन्दु गौण है; अभेद-रूपा संवित् शिव का स्वरूप है; तमस्वरूप भेदात्मक वेद्य जीव का संवरक है। अतएव जीव को भी विसर्ग नाम से सम्बोधित किया जाता है। मन्त्रशास्त्रोक्त समय-सिद्धान्त के विद्वानों का यह मत है।

स्पष्टार्थः – सूत्रकार ने गौण विन्दु को ही व्यवहार का हेतु कहा है। यहां गौण शब्द का अर्थ है गुण-गर्भित अर्थात् गुणों से युक्त। अभेद-स्वरूप विन्दु के अन्तर्गत गुण बीज रूप से गर्भित हैं। अतएव अभेद-रूप विन्दु के साथ विशेषण के रूप में गौण शब्द को इस हेतु प्रयोग किया है जिससे विन्दु के अभेद्यत्व की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रखते हुए भी इसको भेदाभेदात्मक मिश्र संसरण में अधिष्ठाता के रूप में प्रतिपादित किया जा सके। अर्थात्, यद्यपि विन्दु निर्विवाद रूप से अभेद्य है; तथापि गुण-गर्भित होने के कारण विन्दु का जीव-रूप में संसरण होता है।

यद्यपि अधिक विद्वानों ने विन्दुत्व को शिवात्मक स्वीकार किया है एवं पशु भी विन्दु का स्वरूप है। अतः चैत्य में व्याप्त होने से विन्दु विसर्गात्मक है।

वेद्य (जगत्) भेदात्मक है। संवित्-स्वरूप-शिव से जीव का भेद है। तमस्वरूप भेदात्मक वेद्य-जीव का संवरक (व्यापकरूप) है। अर्थात् वेद्य व्यापक है तथा जीव व्याप्य है। सिद्धान्त है कि जो जिसका संवरक होता है वही उसका स्वरूप होता है। (अर्थात् व्यापक तत्व व्याप्य का स्वरूप होता है)। वेद्य जगत् भेदात्मक जीव का संवरक है; अतः वेद्य जगत् ही भेदात्मक जीव का स्वरूप है। अतएव वेद्य-रूप होने के कारण वेद्य के समान ही जीव को विसर्ग शब्द के द्वारा सम्बोधित किया जाता है। अर्थात् जिस प्रकार जगत् को विसर्ग नाम से कहा जाता है; उसी प्रकार जीव को भी विसर्ग नाम से सम्बोधित किया जाता है, किन्तु वस्तुतः जीव विन्दु रूप है। विसर्ग के रूप में संसरण होने पर विन्दु ही विसर्ग के अन्तर्गत प्रविष्ट होता है, जो जीव नाम से कहा जाता है। तात्पर्य यह कि यद्यपि जीव को परिच्छिन्न कहा गया है; किन्तु वस्तुतः विन्दु संसरणावस्था में जीव रूप ही है। इस प्रकार विन्दु तथा विसर्ग अभेद रूप हैं।

द्वादशं सूत्रम्

चैत्यं विमर्शपरिणाम दशाविमर्श-
श्चिद्धर्म एवचचितो जननाल्लयाच्च।
नास्त्येव साचिदपि यद्यविमृष्टरूपः
धर्मस्ततोभवति चिच्चविमर्शशक्तेः।।१२।।

व्याख्या

अथपशुशिवपदयो वेद्यवेदकान्योन्य कवलनमित्युक्तम्तत्रकिन्निमित्तमित्या-काङ्क्ष्यायामाहचैत्यमित्यादि। शिव शक्ति पर्याय प्रकाशविमर्शपरिणाम जगदिति रहस्यागमसिद्धान्तः यद्यपि विमर्शस्यैव विलासो जगदित्यङ्गीकृत पुरातनैः तथापि विमर्शस्य प्रकाशमन्तरेण स्वारूपासिद्धेर्विमर्शो जगदाकारेविलसन्नपि तत्र जगति। प्रकाशांशमर्द्धेनावभासयति अर्द्धेन निजांशं तत्रवेदकः प्रकाशांशः वेद्यंविमर्शांशः। एवंसतिवेद्यपर्यायंचैत्यं विमर्श परिणामदशा तत्पर्यालोचनेविमर्शएव एषच विमर्शः चिद्धर्मप्रकाशस्य धर्मः। कुतः चितोजननातृलयाच्च यतः प्रकाशादेवोदेति तत्रैव लीयते च ततः सर्वस्यापिवस्तुनः स्फुरणेनविना सत्ताभावात् स्फुरणस्य तु प्रकाशाधीनत्वात् प्रकाशकारणकत्वमवश्यमरङ्गकार्यम। किंच शब्दरूपस्य विमर्शस्य गगनादुदयो गगन एवलयः सम्भावितः। तदेवगगने प्रकाश इत्यलंकृतादिकारुण्युपदेश्येनप्रतिपादनलम्पटेन अथान्यस्मिन् पक्षेप्रकाशोऽपिं-विमर्शस्यधर्मइत्याह नास्त्येवेति सा चित्प्रकाशोऽपियद्यविमृष्टरूपा इयमीदृशीतिविमर्शेन अनिर्दिष्ट स्वरूपा चेत् नास्त्येव इदमीदृगइत्यविमृष्टस्यापि वस्तुनः सत्तायां शश विषाणादेरपि सत्वं प्रसज्यते। ततः सर्वमपि वस्तु कोट्यधिरोहे विमर्शमपेक्षत इति। प्रकाशस्यापि सत्त्वे विमर्शकारणकत्वेन विमर्शधर्मत्वमश्यमङ्गी कर्त्तव्यमित्याह। धर्मस्ततो भवतीत्यादिना।।१२।।

भाषा टीका

पशु वेद्य है एवं शिव वेदक है। पशु तथा शिव का परस्पर एक का दूसरे में लय दर्शाया गया है। यह सूत्र इस प्रकार परस्पर लय के निमित्त का प्रतिपादन करने के लिये लिखा गया है।

सूत्रसार -

विमर्श की परिणाम दशा चैत्य है। चित् में ही विमर्श का जन्म तथा चित् में ही लय होने के कारण विमर्श चित् का धर्म है। चित् की सत्ता का ज्ञान विमर्श के ज्ञान से होता है। अर्थात् अवमृष्ट चित् के अस्तित्त्व का ज्ञान असम्भव है। अतएव चित् भी विमर्श का धर्म है। तात्पर्य यह कि प्रकाश तथा विमर्श परस्पर एक दूसरे के धर्म तथा धर्मी हैं।

शिव शक्ति के पर्यायवाची प्रकाश एवं विमर्श का परिणाम जगत् है। यह रहस्य मार्ग का सिद्धान्त है। प्राचीन विद्वानों ने जगत् को विमर्श का ही विलास स्वीकार किया है; तथापि विमर्श की सत्ता की सिद्धि प्रकाश के आधीन है। अतः जगत् में भी आधा अंश प्रकाश का है तथा आधा अंश विमर्श का है। जगत् के अन्तर्गत प्रकाशांश को वेदक तथा विमर्श अंश को वेद्य कहा जाता है। इस प्रकार विवेचन करने से निष्कर्ष प्राप्त होता है कि विमर्श की परिणाम-दशा होने के कारण चैत्य विमर्श ही है। यही वेद्य-विमर्श प्रकाश का धर्म है; क्योंकि प्रकाश में ही विमर्श का जन्म होता है तथा प्रकाश में ही लय हो जाता है। अतएव सिद्धान्ततः स्फुरण के बिना समस्त वस्तुओं की सत्ता का अभाव सिद्ध है। स्फुरण प्रकाश के आधीन है; अतः अन्ततोगत्वा प्रकाश को ही कारण रूप स्वीकार करना युक्ति युक्त है।

कुछ चिन्तकों के अनुसार शब्द-रूप विमर्श का उदय तथा लय गगन में प्रतिपादित किया गया है। अतः गगन को ही प्रकाश रूप स्वीकार करते हैं; किन्तु यह सिद्धान्त असत्य है। कारण यह कि गगन जगत् रूप है अतः गगन की सत्ता का स्फुरण प्रकाश से ही होता है।

सूत्रकार के मत के अनुसार प्रकाश भी विमर्श का धर्म है। इसका कारण यह है कि जब विमर्श के इदं, इत्त्थं, इति (देश-काल-आकार) का ज्ञान होता है तभी चित् वस्तु की सत्ता का पता चलता है। यदि चित्प्रकाश का विमर्श द्वारा निर्देश स्वीकार न किया जावे तब चित् प्रकाश की सत्ता का, शशक के श्रृंग के समान, अभाव सिद्ध होगा। इस प्रकार वस्तु कोटि में गणना के लिये सबकी सत्ता की सिद्ध के हेतु विमर्श की अपेक्षा है। अतः प्रकाश की सत्ता का कारण विमर्श सिद्ध है। इस कारण विमर्श का धर्म प्रकाश है।

तात्पर्य यह कि विमर्श की सत्ता का प्रकाशक होने के कारण प्रकाश धर्मी है तथा विमर्श उसका धर्म है। इसी प्रकार विमर्श की सत्ता के कारण प्रकाश की सत्ता का निर्देश होता है; अतः विमर्श धर्मी है तथा प्रकाश उसका धर्म है।

इस सूत्र में प्रकाश एवं विमर्श में अन्योन्य धर्म-धर्मी सम्बन्ध निरूपित किया गया है।

त्रयोदशं सूत्रम्

चिच्चैत्योरितिसमेसतिधर्मधर्मि
भावेपरस्परपदाक्रमणं स्वभावः।
चैत्यावृता भवति चित्पशुरेषचैत्य-
मावृण्वती चिदपि यातिशिवप्रसिद्धिम्।।१३।।

व्याख्या

प्रकाशविमर्शयोरन्योन्यधर्म धर्मि भाव प्रवचनस्य प्रकृतो योगमाहचिच्चैत्य-योरित्यादि। इत्युक्तप्रकारेण चिच्चैत्ययोः धर्मधर्मिभावे सभेसति परस्परंपदाक्रमणं स्वभावोनैसर्गिकोव्यापारोभवति। धर्मिणो धर्म पद व्याप्तौ चित्वादितिभावः। चिच्चैत्योरन्योन्याक्रमणैका वा दशा सम्भाव्यतत इत्यत्राह। चैत्यावृतेत्यादि। चैत्त्यावृता चित् एष पशुर्भवति एषइति पुरो निर्देशेन स्वशक्ति प्रमोष परिप्राप्तं दीनभावं निदर्शयति। अथ चैत्यमावृण्वती व्याप्नुवन्ती चित्शिव इति प्रसिद्धिंयाति।।१३।।

भाषा टीका

बारहवें सूत्र में प्रकाश एवं विमर्श को परस्पर एक दूसरे का धर्म एवं धर्मी निरूपित किया गया है, इस सिद्धान्त के फल का निरूपण इस सूत्र में करते हैं।

सूत्रसार -

चित् एवं चैत्य को समान रूप से अन्योन्य धर्म-धर्मी भाव में स्वीकार

कर लेने से यह परिणाम सिद्ध होता है कि चित् द्वारा चैत्य पद में तथा चैत्य द्वारा चित् पद में अतिक्रमण नैसर्गिक है, कारण यह कि चित्-रूप होने से धर्मी की धर्म पद में व्याप्ति है, वह निश्चित सिद्धान्त है। चित् एवं अचित् दोनों एक दूसरे के धर्मी हैं अतएव प्रत्येक की दूसरे के पद में अतिक्रमण की सम्भावना प्राकृतिक है।

चैत्य से आवृत चित् पशु है; एवं इसका कारण है कि चैत्य के अतिक्रमण के कारण शिव अपनी शक्ति से वंचित होकर दैन्य भाव को प्राप्त हो जाता है। इसके विपरीत जब चैत्य को चित् आवृत कर लेता है तब चैत्य शिव-स्वरूप हो जाता है। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है।

चतुर्दशं सूत्रम्

चिच्चैत्ययोः समतया स्तिमितेस्वभावे
मिश्रंतुमध्यमपदं परशम्भुरूपम्।
चिच्चैत्यमिश्रणतया तदयंत्रिरूपो
धर्मी च तत्तदुचितश्च तथा विमर्शः।।१४।।

व्याख्या

इदानीं चिच्चैत्ययोः समव्याप्ति पदस्य तृतीय तत्वस्य स्वरूपं विप्रतिपत्ति विषयतया सम्यगुपदिशति चिच्चैत्ययोरित्यादि। चिच्चैत्ययोः समतया समव्याप्तिकत्वेन स्वभावेस्तिमिते निश्चले सति विश्रान्तिपद स्वभावावगाहितया निश्चलन्तं मध्यमपदं मिश्रमिति व्यवह्रियमाणंमिति शम्भुरूपं भवतीतिशेषः। तु शब्दः शिवजीवाभ्यां भेदाभिधायकः मध्यमपदमित्यनेनास्य पदस्य तृतीयत्वेऽपि शिवजीवोभयस्वभावतया सन्धित्वौचित्येन मध्यमत्व मप्यङ्गीकृतमित्युपदिष्टम्। प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपयोर्जीवशिवव्यापारयोरेक कालीनत्वपर्यालोचनायामन्योन्याभि-हननादन्योन्य व्यापार वेगोपक्षये निर्व्यापार दशैव समव्याप्ति पदत्वेनसम्भाव्यते। सैव स्तिमित दशोभयमूलतयोभयपक्षव्यापिनी पक्षद्वयगतविशेष स्वाभ्यं लभते। यथा बहुविटपमूलपदभूतातरुशाखा विटपसम्बन्धिषु पुष्पफलादिषु स्वत्वंभजति तरुशाखेयंपुष्पिता फलिता तद्वत्। तदैवंरूपणैव मिश्रपदप्रमातुः शिवजीवव्यापार यौगपद्यानुसंधानं नतु विकल्पकक्ष्याधिरोहेणशिवजीववत्। तथात्वे तृतीयेपद-व्यवस्थितस्य महातत्वस्यशिवजीव पङ्क्तौ तत्सार्थक्येण व्यापारान्तराङ्गी-

कारलम्पटेशिवजीवस्वभावानुप्रवेशवैभवस्याप्य भावात् तदुभयापेक्षया दाक्षिण्यमूल एवोःकर्षोऽपि स्यादित्यलम् सामयिक विवादा ग्रहेण। तदत्रायं विप्रतिपत्या वार्तानोपकर्त्तव्या इतिप्रमेयतात्पर्यमुक्तम्। जीवादि स्वरूपं त्रैविध्यनिगमनद्वारेण दृढीकुर्वन्नाह। चिच्चैत्येति। मिश्र रूपतत्वेन अयमपरोक्षभूतो धर्मी द्वैतानुसन्धानरूपोविमर्शएवात्र धर्मः। तद्वान्प्रमातेतियावत्। त्रिरूपः मन्त्र व्यवहारबाहुल्यदृष्ट्या त्रैरूप्यमुक्तम्। न तु चतुर्थ पञ्चमदशयोरनन्तरोक्त धर्मस्य द्वैतादिरूपस्य विमर्शस्य त्रैविध्यात् धर्मित्रैविध्यमित्यभिप्रेत्याह। तदुचितस्येति। औचित्यं जीवस्य द्वैतविमर्शः शिवस्याद्वैत विमर्शः परमशिवस्योभयात्मक विमर्श इति।।१४।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

चित् एवं अचित् तत्त्वों के समान रूप से मिश्रण होने के कारण स्वभाव से विश्रान्त परशम्भू रूप मिश्र पद को मध्यमपद कहा गया है। परशम्भू पद में चित्-चैत्य का मिश्रण है, अतएव यह त्रिरूप है धर्मी है, तथा विमर्श का स्फुरण भी चित् चैत्य एवं मिश्र स्वरूप के अनुसार होता है।

इस सूत्र में चित् एवं चैत्य के मध्य में स्थित परशम्भू का निरूपण किया गया है। परशम्भू तत्त्व में समान रूप से चित् एवं अचित् तत्त्वों की व्याप्ति है। अतः स्वभाव से विश्रान्ति रूप होने के कारण यह पद निश्चल है तथा चित् एवं अचित् दोनों के मध्य में स्थित होने से मिश्र पद कहा गया है। सूत्रकार ने सूत्र के अन्तर्गत तु शब्द का प्रयोग किया है जो जीव एवं शिव के भेद का दर्शक व इस प्रकार चित्, चैत्य के मिश्रण से परशम्भू तीसरा तत्त्व धर्मीरूप है।

शिव एवं जीव दोनों के स्वभाव का मिश्रण होने के कारण परशम्भू सन्धि रूप है। अतएव इसको मध्यम पद कहा है। शिव एवं जीव में समान रूप से चित् तत्त्व की व्याप्ति है, अतः उभयात्मक परशम्भू में भी चित् की व्याप्ति सिद्ध है। इस कारण से भी परशम्भू पद को मध्यम पद कहा गया है।

शिव एवं जीव की प्रवृत्ति एवं निवृत्ति रूप क्रिया कलापों का एक ही काल में प्रवर्तन होता है; अतः प्रवृत्ति क्रिया निवृत्ति की संहारक है; तथा निवृत्ति क्रिया प्रवृत्ति रूप की संहारक है। इस प्रकार उभय क्रियाओं के अन्योन्य

संहारक वेग की समाप्ति होने पर निर्व्यापार (निष्क्रिय) समव्याप्ति परशम्भू के स्वरूप के आविर्भाव की सम्भावना शेष रह जाती है। अतएव निश्चल, निष्क्रिय, चित्-अचित् उभय तत्त्वों में व्यापिनी परशम्भू की दशा ही कारण रूप सिद्ध होती है।

जिस प्रकार अनेक वृक्षों का एक वृक्ष में सम्मिलित होकर विकास होता जाता है, किन्तु समस्त फल, फूल, मूल एवं शाखाओं की मूल वृक्ष के अङ्ग के रूप में ही मान्यता की जाती है; उसी प्रकार कारणभूत परमशिव में पृथक पृथक रूप से शिव एवं जीव दोनों के क्रिया-कलापों की उत्पत्ति का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। शिव एवं जीव के व्यापारों से पृथक, परशम्भू के किसी व्यापार की कल्पना मिथ्या है। यदि परशम्भू पद में पृथक् रूप से क्रिया कलापों की कल्पना की जावै; तब परशम्भू में समान रूप से शिवत्व एवं जीवत्व के समावेश के वैभव का अभाव हो जावेगा। अर्थात् जीव एवं शिव के मिश्र पद के रूप में परशम्भू तत्त्व की भावना की समाप्ति हो जावेगी तथा इन से उत्कृष्ट किसी अन्य तत्त्व की कल्पना करनी होगी जो उचित नहीं है।

इसी सिद्धान्त की पुष्टि के लिये सूत्र के परार्ध में कहा है कि चित् तथा चैत्य के मिश्र रूप में परमशम्भू प्रमाता अर्थात् धर्मी तथा द्वैतानुसन्धान रूप विमर्श इसका धर्म है।

चतुर्थ अथवा पञ्चम दशाओं के अनन्तर द्वैतादि रूप विमर्शात्मक धर्म की त्रिविधता के कारण मिश्र पद की त्रिविध धर्मी के रूप में प्रतिपादित नहीं किया है। अपितु मन्त्र में बहुलता से व्यवहार की दृष्टि से मिश्र पद को त्रिरूप निरूपित किया है। अतः सूत्रकार के मतानुसार जीव का धर्म द्वैतात्मक विमर्श, एवं शिव का धर्म अद्वैतात्मक विमर्श एवं परशम्भू तत्त्व का धर्म उभयात्मक विमर्श स्वीकार करना ही उचित है।

पञ्चदशं सूत्रम्

चित्तिश्चचैत्यमपि तच्चविमर्शतत्वं
ज्ञानक्रिये न हि तयोः परमार्थ भेदः।
ज्ञानं गृहीत कठिनत्वगुणंक्रियास्या-
ज्ज्ञानं भवेद्विरलिमाश्रयणीक्रियैव।।१५।।

व्याख्या

एवमत्रविषयोपयुक्तं शिवरूपं शिवस्य जीवत्रय स्वरूपं स्फुटतरमुपपाद्य तदत्यन्तोपयुक्तं ज्ञानक्रियास्वरूपं व्युत्पादयति चितिश्चेत्यादि। चिदेवचितिः सा च अभेदरूपं खलुज्ञानम्। घटोज्ञातइतिभिन्नेष्वपि घटपटादीनाप्वेकरूपत्वेनाभिन्नतया अनुभूयमानत्वात्। भेदरूपा खलु चैत्य रूपिणीक्रिया चैत्यानांघटपटादीनामन्योन्य व्यावृत्ति स्वरूपतया भेदरूपेणानुभूयमानत्वात् एवं चिच्चत्य रूपयोः ज्ञानक्रिययोः पारमार्थिको न भेद इत्याहनहि तयोरित्यादि। चिच्चैत्ययोर्योऽयंभेदावभासः स न तु मायापर्याय विपर्यय ज्ञान निबन्धन इत्यभिप्रायः। तत्वभेदश्चिच्चैत्ययोरित्यत्राह। ज्ञानमित्यादि। ज्ञानं प्रकाशः गृहीतकठिनत्व गुण विमर्शाकारेणेतिभावः। आकाशस्य काठिन्यं शब्दः तदाचिदाकाशस्य काठिन्यरूपोविमर्शइतिप्रकाशविमर्शयोः जलकरकयोरिव न वास्तवो भेद इति तात्पर्यम्। ननु प्रकाश विमर्शयो जलकरकयोरिवभेदोमास्तु चैत्यात्मिकत्वेन घटपटादिनानारूपायाः क्रियाया ज्ञानरूपात्प्रकाशद्भेदोदुरपन्हवः। वर्णरूपाद्विमर्शादपि पृथुबुधनोदयाद्याकारतया घटपटादियोभिद्यन्त एवेति चेद्घटपटादिनः सर्वस्यापि वस्तुनो घटपटादिशब्द रूप विमर्शातिरिक्तं न किञ्चिदपि स्वरूपं विवेकदशायामवतिष्ठत इति गुरुकटाक्ष परिक्षपित-मायान्धकारैः सुप्रतिपन्नत्वात् ज्ञानाभेदं क्रियायाः प्रतिपाद्य क्रियाया अभेदं ज्ञानस्य प्रतिपादयति। ज्ञानंभवेदित्यादि। सापि विमर्शरूपिणी क्रिया विरलिमाश्रयिणी काठिन्यपरित्यागेन विश्रान्तिलक्षणं विरलिमानं परिगृहणाति। ज्ञानं भवेत् प्रकाशैकरस्यंप्राप्नोति इत्यर्थः। एवं ज्ञानस्य बहीरूपंक्रियाक्रियाया आन्तरंरूपं ज्ञानमिति तयोरेकार्थत्वमितिनिष्कर्षः।।१५।।

भाषा टीका

ग्रन्थ के विषय प्रतिपादन में उपयोगी होने से, जीवात्मक तीन भेदों में शिव के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। अतः अत्यंत उपयोगी होने के कारण शिव के ज्ञान-क्रियात्मक स्वरूप का विवेचन इस सूत्र में किया जा रहा है।

सूत्रसार -

चित् अभेद-रूप ज्ञान है। विमर्शात्मक चैत्य क्रिया है, किन्तु चित्-चैत्य रूप ज्ञान-क्रिया का भेद पारमार्थिक नहीं है। वस्तुतः ज्ञान में जब काठिन्य

गुण का आविर्भाव होता है तब वह क्रिया रूप में परिणत हो जाता है। इसी प्रकार क्रिया में जब विरलिमा का आविर्भाव होता है तब क्रिया का स्वरूप ज्ञानाकार हो जाता है।

चित् ही चिति है। चिति अभेद रूप ज्ञान है। यद्यपि घट, पट आदि का रूप भिन्न है तथापि घट, पट आदि की ज्ञानात्मक अनुभूति अभिन्न एक रूप में होती है। अतः ज्ञान अभेद रूप है। घट, पट आदि चैत्य की अनुभूति में वस्तुओं का परस्पर व्यावर्तक स्वरूप होता है; अतएव क्रिया भेद रूप है, किन्तु चित् चैत्य रूपिणी ज्ञान क्रिया का यह भेद केवल आभास मात्र है, पारमार्थिक नहीं। अर्थात् चित्-चैत्य का यह भेदावभास माया के पर्याय-भूत विपर्यस्त-ज्ञान का रूप नहीं है। चित्-चैत्य का जो तात्त्विक भेद कहा जाता है उसके सम्बन्ध में लिखते हैं।

प्रकाश रूप ज्ञान में जब काठिन्य का उद्रेक होता है, तब वह विमर्श के आकार में परिणत हो जाता है। आकाश का काठिन्य (ठोस रूप) शब्द है; अतः चिदाकाश का काठिन्य स्वरूप विमर्श है। जिस प्रकार जल एवं (जल के काठिन्य रूप) हिम में कोई अंतर नहीं है; उसी प्रकार प्रकाश एवं विमर्श में भी कोई अन्तर वास्तविक नहीं है।

यहाँ पूर्व कक्ष शङ्का करता है कि यदि प्रकाश तथा विमर्श के भेद को न भी स्वीकार करें तथापि घट, पट आदि नाना रूपों में क्रिया के भेद को ज्ञान रूप प्रकाश से छिपाया नहीं जा सकता है।

किन्तु यह शङ्का निर्मूल है। स्थूल-सूक्ष्म आदि आकार के कारण घट-पट आदि समस्त वस्तुओं की वर्ण रूप विमर्श से भिन्नता है; तथापि घट-पट आदि समस्त वस्तुओं का घट-पट आदि शब्द रूप विमर्श के अतिरिक्त अन्य कोई स्वरूप विवेक (पारमार्थिक) दशा में नहीं है।

गुरु की कृपा-कटाक्ष से माया रूप अन्धकार के निरस्त हो जाने से सुप्रतिपन्न सिद्धि के द्वारा ज्ञान का क्रिया से अभेद प्रतिपादित किया गया है। अब क्रिया का ज्ञान से अभेद प्रतिपादन करते हैं। वह विमर्श रूपिणी क्रिया काठिन्य का परित्याग कर जब विश्रान्ति रूप विरलिमा (सूक्ष्मत्व) का आश्रय लेती है, तब क्रिया ज्ञान-रूप प्रकाश में एक रस हो जाती है। इस प्रकार ज्ञान का बाह्यरूप क्रिया है तथा क्रिया का आन्तर रूप ज्ञान है। इस प्रकार ज्ञान क्रिया का एक अर्थ है।

षोडशं सूत्रम्

ज्ञानस्यसिद्ध्यति बिना क्रियया न रूपम्
तस्यास्तथैव नहितेनविनोपलम्भः।
तस्मात्तयोर्यमलतैव मतं हि सैद्धम्
पूर्वापरत्रकलनं त्विह पूर्वपक्षः।।१६।।

व्याख्या

अथ शिवशक्तिस्वरूपयोः ज्ञानक्रिययोस्तुल्यप्राधान्यतया यौगपद्यसिद्धि सम्प्रतिपत्तिमूलयामलसिद्धान्तम् मन्त्रहृदय भूतत्वेन सिद्धाभिमतं प्रतिबोधयन् चैतन्यताभ्युपगमूलभूतं प्रकाशविमर्श पर्याय ज्ञानक्रियान्योन्यकारणकत्वम्। प्रागुक्तामेवानुवदति ज्ञानस्यइत्यादिना हि यस्मात् क्रियया विमर्शेन विना ज्ञानस्य प्रकाशस्वरूपं न सिध्यति तथैव तस्याः क्रियायास्तेनज्ञानेनविनो पलम्भितासिद्धिः। तस्मात्तयोर्ज्ञानक्रिययोर्यमलता युगपत्सिद्धतैव सैद्धंसिद्ध सम्बन्धि मन्त्र हृदयत्वादितिभावः। इह ज्ञानक्रियासिद्धविचारविषये पूर्वापरत्व कलनं तु पूर्वपक्षः। वेद्यवेद्यकाकारेण प्रकृतिपुरुषाकारेण देहात्माकारेण शब्दार्थाकारेणैव पर्याय प्रकारान्तराकारेण वा क्रियाज्ञानयोः सिद्धेः पौर्वापर्याभ्युपगमः पूर्वपक्षत्वमेव भजति। निर्वोदुमशक्यत्वादिदितितात्पर्यम्।।१६।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

शिव-शक्ति रूप ज्ञान एवं क्रिया की प्रधानता समान रूप से होने के कारण इन की सिद्धि एक ही काल में हैं। ऐसा मन्त्रशास्त्रोक्त यामल सिद्धान्त का मत है। इसका तात्पर्य है कि ज्ञान-क्रिया में अन्योन्य कारण सम्बन्ध है। अर्थात् क्रिया का कारण ज्ञान है तथा ज्ञान का कारण क्रिया है। इस सिद्धान्त का इस सूत्र में विस्तृत प्रतिपादन किया गया है।

क्रिया के बिना ज्ञान का प्रकाशात्मक स्वरूप सिद्ध नहीं होता है; तथा ज्ञान के बिना क्रिया के स्वरूप की सिद्धि नहीं होती है। अतएव मन्त्रशास्त्र के प्रमुख सम्प्रदाय सिद्ध-मत ने ज्ञान एवं क्रिया की यामलता अर्थात् युगपत्

सिद्धि का प्रतिपादन किया है। ज्ञान एवं क्रिया दोनों की स्थिति प्रधान है तथा एक ही काल में दोनों का प्रवर्तन सिद्ध है।

ज्ञान एवं क्रिया में से किसी को भी पूर्व या अपर कहना पूर्व पक्ष का मत है। वेद्य-वेदक, प्रकृति-पुरुष, देह-आत्मा, अथवा शब्द-अर्थ के आकार में, अथवा इनके पर्याय-भूत अन्य किसी आकार में ज्ञान-क्रिया में पूर्व-अपर सम्बन्ध निरूपित करना विरोधी पूर्व-पक्ष का सिद्धान्त है; जो सिद्ध मत को स्वीकार्य नहीं है।

सप्तदशं सूत्रम्

अर्द्धंक्रियाभवति दक्षिणमन्यदर्धं
ज्ञानंसमत्वमनयोरपि मध्यमिच्छा।
इच्छैव बीजमचलान्तरवाह्यगत्या
ज्ञानं क्रिया च खलु मूलमिहाङ्कुरश्च।।१७।।

व्याख्या

इदानीं ज्ञानक्रिययोरन्योन्याविनाभावस्वभावतैकस्वरूप सम्बन्धौचित्ययोः तत्समष्टिरूपयेच्छया समस्त्रीपुमुभयस्वभावतया रहस्यविद्भिरभिमतस्य परमशिव-तत्वस्य स्वरूपभागत्वाभिप्रायेण एक स्वरूपं सम्बन्धं दर्शयति अर्धं क्रियेत्यादि। क्रियादक्षिणमर्धं भवतिशिवस्येत्यभिप्रायः। कर्मकाण्डस्यदक्षिण मार्गतयाङ्गीकारादियं व्यवस्था। ज्ञानमन्यद्वाममर्धं ज्ञानकाण्डस्य वाममार्गत्वेनाङ्गीकारादितिभावः। ननु शैवं दक्षिणाचारः शाक्तं वामाचार इति सिद्धजनप्रतिपादनात् क्रिया विमर्शरूपत्वाच्छक्तिस्वरूपभित्यङ्गी कर्त्तव्यम्। ज्ञानंप्रकाशरूपत्वात् शिवस्वरूपमिति च तत्कथ क्रियाया दक्षिणत्वेज्ञानस्यवामत्वमितिचेत् सत्यं रहस्य समयसारावबोधक सद्गुरुसपर्या विधुराणामयंविप्रतिपत्तिषु संघट्टोदुरतिक्रमः महागुरुकटाक्षशिवतां तु निराकृत्यात्रविवेचयति तदुपदिश्यतेज्ञानक्रियारूपोः शिवशक्त्योरन्योन्या-नुरागेणान्योन्यस्वभावोपरक्त स्वभावः इतिवेदितव्यम्। शिवस्यस्वभावोज्ञानं जडाकारयाक्रिययोपरक्त सत् जडस्य शुक्लतया शुक्लं भवति। शक्तिः स्वभाव क्रिया अजडेनज्ञानेनोपरक्तासति अजडस्य स्वे ऋतुतया अरुणा भवति। तदुभयमिश्रं तद्रूपमुभयवर्ण संसर्गान्वितम् हेमनिभं भवतीति शिवादि

स्वरूपत्रयपर्याय शाम्भवोक्तचरणत्रयवद् वर्णवासना प्येवमनुसन्धेया। तदेवंज्ञानरूपोऽपिशिवः शक्तिस्वभाव क्रियास्वरूपानुसन्धैक व्यापारतया ज्ञानमार्गे वामाचारे व्यवस्थापित इति कौलिकोपनिषद् तदेतत्प्रमेयं ज्ञानक्रिययोर्वाम-दक्षिणार्ध त्वोपन्यासद्वारेण-सूत्रकृताव्युत्पादितम्। ज्ञानक्रियामिश्रपदे स्वेच्छया भागव्यवस्थामाह। समत्वमनयोरिति अनयोर्ज्ञानक्रिययोः समत्वे समव्याप्तिकत्वं यत्तदिच्छेति इच्छा लक्षणं चात्रानुसन्धेयम्। मध्यमिति दक्षिण वामयोर्मध्यमित्यर्थः। इच्छातत्वस्य प्राक्प्रतिपादितपरशिवस्वभावस्य ज्ञानक्रियात्मकपक्षद्वयमूल रूपतया तदुभयवीजत्वं समर्थयति इच्छैवबीजमित्यादि। एवकारेण पक्षत्रयस्यापिज्ञानंच कर्मचेत्यादि कक्ष्यमाण त्रिमूर्तयात्मकत्व-प्रतिपादनेनयद्यप्यन्योन्यमूलत्वमुपपत्तिमत्तथापि माध्यमिकतया सुषुम्णापर्याय-भूतायाइच्छायाएव प्रेक्षावन्महायोगिभिरुरुरीकृतम्। ज्ञानक्रियारूपत्व-मित्युपदिष्टम्। इच्छेवाचला प्राक्प्रतिपादितमर्यादया स्मिमितस्वभावः। इदञ्च विशेषेण बीजत्वसमर्थकम्। बीजं निश्चलं तिष्ठति मूलाङ्कुरावेव अन्तरवहिश्च प्रसरतः। आन्तरगत्या निवृत्तिरूप प्रसरणेन ज्ञानंमूलं बीजस्याधोभाग प्रसृतवान्। रोहावयवः वाह्य गत्या प्रवृत्तिरूप प्रसरणेनक्रिया इह बीजे अंकुरः। चकारः समुच्चयाभिधानेन बीजस्यपूर्णलक्षणत्वमभिधत्ते।।१७।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

सम्बन्ध – स्वाभाविक रूप से ज्ञान एवं क्रिया में अविनाभाव सम्बन्ध है, अतः दोनों को एक रूप प्रतिपादित करना उचित है। ज्ञान एवं क्रिया की समष्टि इच्छा है, अतः इच्छा का स्वभाव समान रूप से स्त्री एवं पुरुषात्मक है। अतः यदि शिव तत्त्व एवं इच्छा को एक रूप सिद्ध कर दिया जावे तब रहस्यवादियों के मतानुसार शिव को, स्त्री पुरुषात्मक दो भागों में विभाजित करने की कल्पना का औचित्य सिद्ध हो जावेगा।

सूत्रार्थ – शिव का दक्षिण अर्ध भाग क्रिया है, शेष वामार्ध ज्ञान है तथा मध्य भाग इच्छा है; जिसके अन्तर्गत ज्ञान एवं क्रिया का समान रूप में मिश्रण है। अचल होने से इच्छा बीज है, आन्तर प्रोह होने के कारण ज्ञान मूल है तथा क्रिया वाह्य अंकुर है। कारण यह है कि क्रिया की वाह्य गति है अतः क्रिया की समता अंकुर से की गई है।

ज्ञान-क्रिया का अविनाभाव स्वभाव है। ज्ञान-क्रिया की समष्टि इच्छा है। ज्ञान पुरुष रूप है तथा क्रिया स्त्री रूप है। अतः ज्ञान क्रिया की समष्टि रूप इच्छा का स्वरूप स्त्री-पुरुषमय सिद्ध होता है। परम शिव तत्त्व के स्त्री पुरुषमय दो भाग हैं। अतः इच्छा से परम शिव की एकरूपता का प्रतिपादन करने से शिव के अर्ध-नारी नटेश्वर रूप के औचित्य की सिद्धि हो जावेगी।

शिव-तत्त्व का दक्षिण अर्ध भाग क्रिया है। ग्रन्थकार ने कर्मकाण्ड को दक्षिण मार्ग अङ्गीकार किया है; अतएव क्रिया को दक्षिण भाग के रूप में व्यवस्थित किया गया है। ज्ञान को वाम मार्ग अङ्गीकार करने के कारण शिव के शेष वाम अर्ध भाग को ज्ञान का रूप कहा है।

प्राचीन परम्परा के अनुसार शैव मत को दक्षिणाचार तथा शाक्त मत को वामाचार कहा जाता है। सिद्ध जनों द्वारा, विमर्श रूप होने के कारण क्रिया को शक्ति के रूप में अङ्गीकार किया गया है, तथा प्रकाश रूप होने के कारण ज्ञान को शिव रूप मान्य किया गया है। अतएव पूर्व पक्ष क्री शङ्का है कि परम्परा के विपरीत यहाँ क्रिया को शिव का दक्षिण भाग तथा ज्ञान को वाम भाग प्रतिपादित करना उचित नहीं है। इस शङ्का के सम्बन्ध में टीकाकार का कथन है कि समय-रहस्य मार्ग के सिद्धान्त को गुरु कृपा से ही अवगत किया जा सकता है।

ज्ञान-क्रिया रूप शिव-शक्ति की अन्योन्य अनुरागात्मक स्थिति के कारण शिव के स्वभाव से शक्ति अनुरक्त है तथा शक्ति के स्वभाव से शिव अनुरक्त है। शिव-शक्ति का अन्योन्यानुरागात्मक स्वभाव स्वाभाविक अर्थात् नैसर्गिक है। शिव का ज्ञानात्मक स्वभाव जडाकार क्रियासे अनुरक्त है, जड़ का स्वरूप शुक्ल होता है, अतः जड़ात्मक क्रिया के शुक्लता के प्रभाव से ज्ञान का स्वरूप भी शुक्ल हो जाता है। शक्ति स्वभावात्मक क्रिया अजड़ ज्ञान से उपरक्त है, अजड़ ज्ञान प्रकाशात्मक होने से रवि का रूप है। रवि ऋतुमान होता है अतः रवि के स्वरूप के समान ज्ञान का रूप भी लाल सिद्ध होता है। प्रकाशात्मक ज्ञान से क्रिया उपरक्त है अतएव क्रिया का स्वरूप भी अरुण प्रतिपादित किया गया है। शुक्ल एवं अरुण वर्णों के मिश्रण से हेम वर्णं का अविर्भाव होता है। अतः ज्ञान एवं क्रिया का मिश्र रूप हेम वर्ण के सदृश्य है। शिव आदि के रूप त्रय के समान ही शाम्भवोक्त चरणत्रय की वर्णवासना का अनुसन्धान करना चाहिये। इस प्रकार परस्पर अनुरक्त होने से ज्ञान रूप शिव भी शक्ति स्वभावात्मक क्रिया के स्वरूप के अनुसन्धान के

व्यापार में संलग्न है; अतएव क्रिया के समान ज्ञान का स्वरूप भी व्यापारात्मक है। अतएव ज्ञान मार्ग को कौलोपनिषत् में वामाचार निरूपित किया गया है। इसी मार्ग के अनुसार सूत्रसार ने भी ज्ञान को शिव का वाम अर्ध तथा क्रिया को शिव का दक्षिणार्ध प्रतिपादित किया है।

अब ज्ञान-क्रियात्मक मिश्र पद स्वेच्छा के भागों का निरूपण करते हैं। सूत्र में इच्छा को 'ज्ञान-क्रिया का समत्व' परिभाषित किया है। अतः इच्छा की स्थिति ज्ञान एवं क्रिया उभय के मूल होने से मध्य में नियत होती है। अतः यह बीज के समान है। सूत्रकार ने इच्छा के पश्चात् एवं शब्द का प्रयोग किया है। (अर्थात् सूत्र में इच्छैव शब्द है) एवं शब्द के प्रयोग करने से तात्पर्य है कि यद्यपि इच्छा ज्ञान-क्रिया त्रिमूर्ति के रूप में प्रस्तुत करने के कारण इन तीनों का एक दूसरे के मूल के रूप में प्रतिपादन युक्ति युक्त है तथापि ज्ञान एवं क्रिया का मध्य पद होने के कारण इच्छा को सुषुम्ना का पर्याय वाचक कहा गया है। अतः इच्छा तत्त्व को ज्ञान-क्रिया उभय का मिश्र स्वरूप प्रतिपादन करना उचित है। इस प्रकार उभय मूलक होने से इच्छा को बीज की उपमा दी गई है। इच्छा को सूत्र में अचल कहा गया है अर्थात यह स्वभाव से स्वमित है। अतः यह बीज के समान है। बीज अपने स्थान पर निश्चल रहता है तथा मूल एवं अंकुर का ही अन्तः एवं वाह्य प्रसार होता है। बीज के अधो भाग में मूल का प्रसार होता है। ज्ञान का प्रसार भी अन्तः में होता है अतएव ज्ञान को मूल कहा गया है। बीज के बाह्य भाग में अंकुर का प्रसार होता है अतः प्रवृत्ति रूप बाह्य प्रसरण के कारण क्रिया को अंकुर के रूप में प्रतिपादित किया गया है। इस प्रकार इच्छा ज्ञान-क्रिया बीज-मूल एवं अंकुर के रूप में निरूपित है।

अष्टादशं सूत्रम्

ज्ञानं क्रिया तदुभयैकरसापिचेच्छा।
तत्वत्रयंभवति नित्ययुतस्वभावं।
ज्ञानस्य मानमिति मेयमितिक्रियाया
मातेति चेतरपदस्य हि नामभेदाः।।१८।।

व्याख्या

इच्छाज्ञानक्रियाणां प्रमात्रादिभिरेकार्थतयाप्रमातृप्रमाणप्रमेयशब्द व्यवहारोऽपि भवतीत्याह ज्ञानंक्रियेत्यादि। ज्ञानक्रिया तदुभयैकरसा तदुभयसमष्टिरूपा इच्छा च इति तत्त्वत्रयं नित्ययुतस्वभावं भवति अन्योन्याविनाभूतं भवति। एतद्विदेषणं त्रिपुटीरूपतया नित्ययुतस्वभावेभ्यः प्रमात्रादिभ्यः इच्छादीनां सादृश्योक्तिद्वारेणैकार्थता प्रतिपादकम्। इच्छादीनां प्रमात्रादिषु कस्य केनैकार्थतेत्याकाङ्क्षायामाह ज्ञानस्य इत्यादि। ज्ञानस्यमानमिति क्रिया मेय इति इतरपदस्य ज्ञानक्रियाभ्यामितरस्यपदस्य इच्छाया इत्यर्थः। मातेतिच। नामभेदात्संज्ञाभेदः ससंज्ञकानामिच्छादीनांप्रमात्रादीनाञ्च पर्यालोचने भेद इति भावः।।१८।।

भाषा टीका

इच्छा-ज्ञान-क्रिया का स्वरूप एकार्थता के कारण प्रमाता, प्रमाण, प्रमेयात्मक है। अतः इच्छा आदि को प्रमाता आदि नामों से भी व्यवहार किया जाता है।

ज्ञान एवं क्रिया उभयतत्त्वों की एक-रस समष्टि इच्छा है। अतः तीनों तत्त्वों का नित्य-युत-स्वभाव है। अर्थात् अविनाभाव सम्बन्ध है। प्रमाता-प्रमेय-प्रमाण का परस्पर सम्बन्ध भी स्वभाव से नित्य युत है। अतः इस स्वभाव-सम्बन्ध के सादृश्य के आधार पर इच्छा आदि त्रिपुटी की प्रमाण आदि पदों से एकार्थता सिद्ध है।

इस प्रकार ज्ञान प्रमाण, क्रिया प्रमेय तथा इच्छा प्रमाता है। इनमें केवल नाम का भेद है, वास्तविक भेद नहीं है। अर्थात् इच्छाज्ञान क्रिया तत्त्व प्रमाता-प्रमाण-प्रमेय का रूप हैं।

ऊनविंशति सूत्रम्

ज्ञानञ्च कर्मच परस्परमूलमिच्छा।
मूलं तयोस्तदुभयम् खलुमूलमस्याः।
मूर्तित्रयंमतमिदम् त्रयमेवसृष्टि-
स्थित्यन्त कारणतयात्रिगुणस्वभावम्।।१९।।

व्याख्या

इच्छादीनां मन्त्रसमयसिद्धत्रिकोण भावोपपत्तेर्व्युत्पादनाभिप्रायेण प्रत्येकमितरद्वयमूलतामुपपादयति। ज्ञानचेत्यादि ज्ञानञ्च कर्म च परस्पर मूलं प्रकाशविमर्शस्वरूपत्वात्। प्राक्प्रतिपादित मर्यादयेतिभावः इच्छा तयोर्ज्ञानक्रिययोर्मूलम् मिश्रतत्वस्योभयमूलत्वञ्चप्राक्प्रतिपादितञ्च। तस्या इच्छायास्तदुभयंमूलम् ज्ञानक्रियामिश्ररूपिण्या इच्छायास्तृतीयतत्वस्य सिद्धिर्ज्ञानक्रियासिद्धिमूलेति चोपपन्नमितिभावः। इदमिच्छादि त्रयमेवोक्तमर्यादया अन्योन्यमूलंसन्मूर्तित्रयं हरिहरहिरण्य गर्भात्मना। महाशक्तिरिच्छादि रूपिण्येवावभाषत इति तत्वविदामभिमत इत्यर्थः। मूर्तित्रयस्यापिपरस्पर-मूलत्वादिच्छादिभावोपपत्तिः। इच्छादित्रयस्य-मूर्तित्रयत्वोपपत्तौ महतत्वादिकं निधत्ते। सृष्टयादि। इतमिच्छादित्रयं सृष्टि-स्थित्यन्तकारणतया त्रिगुण-स्वभावं भेदरूपस्यमिश्रस्य वा संसार स्येच्छा तत्वेसृष्टिः ज्ञानतत्वेस्थिति क्रियातत्वेसंहारइति इच्छादि त्रयस्यसृष्ट्यादिहेतुत्वात् त्रिगुणस्वभावता सृष्ट्यादिक्रमेण रजःसत्वतमः प्रकृतिता। इच्छादित्रयमेव गुणत्रय स्वभावञ्चेत्यर्थः।।१९।।

भाषा टीका

मन्त्र शास्त्र के समय-सिद्धान्त के अनुसार त्रिकोण की कल्पना की गई है। यह त्रिकोण इच्छा-ज्ञान क्रिया का स्वरूप है। अतः त्रिकोण के रूप में इच्छा आदि को सिद्ध करने के हेतु इच्छा, ज्ञान, क्रिया को, परस्पर एक को दूसरे का मूल निरूपित किया गया है।

प्रकाश एवं विमर्श का रूप ज्ञान-क्रिया हैं, अतएव प्रकाश-विमर्श के समान ज्ञान-क्रिया परस्पर एक दूसरे की मूल हैं। अर्थात् क्रिया का मूल ज्ञान है तथा ज्ञान का मूल क्रिया है। इच्छा तत्त्व का ज्ञान-क्रिया उभय तत्त्वों का मूल है। इच्छा की सिद्धि ज्ञान-क्रिया के बिना नहीं हो सकती है। अतः ज्ञान-क्रिया मिश्र रूप में इच्छा तत्त्व के मूल हैं। इस प्रकार अन्योन्य मूलक होने से इच्छा आदि तत्त्व हरि-हर-हिरण्यगर्भात्मक मूर्तित्रय का स्वरूप हैं। तात्पर्य यह कि महाशक्ति का आभास इच्छा-ज्ञान-क्रिया के रूप में होता है तथा अन्योन्य मूलक होने से मूर्तित्रय का ज्ञान इच्छा आदि त्रिपुटी के रूप में होता है।

इच्छा आदि त्रय की मूर्तित्रय के रूप में उपपत्ति होने के कारण महतत्त्व आदि के स्वरूप का निरूपण किया जाता है। सृष्टि-स्थिति-लय का कारण इच्छादि मूर्तित्रय हैं। अतः भेदात्मक अथवा मिश्र-संसार की सृष्टि इच्छा तत्त्व में, स्थिति ज्ञान तत्त्व में, तथा संहार क्रिया तत्त्व में होता है। सृष्टि-स्थिति-लय का हेतु होने से इच्छा-ज्ञान-क्रिया का स्वभाव त्रिगुणात्मक है। अर्थात् इच्छा-ज्ञान-क्रिया प्रकृति से सत्त्व, रज, तमात्मक हैं।

विंशतिं सूत्रम्

एततत्रयात्मकतया सकलं त्रिरूपं
सुप्त्यादिका अपि दशाश्च तथैवतिस्रः।
सुप्तिः क्रिया जडतया भवति प्रबन्धो
ज्ञानं विमिश्रमनयो पदमन्यदिच्छा।।२०।।

व्याख्या

अथ अत्रेच्छादिरूपतयैव संसारे सर्वमपि वस्तु त्रैरूप्येणावतिष्ठत इत्याह एततत्रयात्मकतयेत्यादि। लोकत्रयं वर्णत्रयं वेदत्रयमित्यादि रूपेण सकलमपि वस्तु जातं पर्यालोच्यमानं त्रैरूष्येणैवावतिष्ठते। तत्रेच्छादि त्रयात्मकत्वमेव हेतुरित्यर्थः। इदानीं प्रकृतास्त्रिस्त्रः सुप्त्यादिदशा अपि इच्छाद्यात्मिकाः एवेत्याह। सुप्त्यादिका इति। सुप्त्यादि दशा अपि तथैवेच्छाद्यात्मिका इति सूत्रकारस्य सामान्योक्त-तात्पर्यभूतमुत्तरत्र-तद्व्यवहार दर्शनात्पारम्पर्येण गुरुमुखा-गतत्वाच्वादिकृतं रहस्यप्रमेयमुपदिश्यते। सुप्त्यादीनामिच्छाद्यात्मकत्वेनान्योन्यमूलतायां तुल्यप्राधान्यतयात्रिकोण-भावप्राप्तावन्योन्यमादि-मध्यान्तभावः सम्भाव्येत तथा च सत्यादि मध्यान्त व्यवस्थितं इच्छा ज्ञान क्रिया भावः प्रत्येकमपि सम्भाव्यते। तथा हि भेद संसारे सुषुप्तिरिच्छा भेदाकारविश्रान्तिरूपत्वात् भेद संसार प्रारम्भपदत्वाच्च प्रारम्भ पदभिच्छादि प्रहतो मार्ग। स्वप्नो ज्ञानं किञ्चित्संकोचपदत्वात्। प्रारम्भपदमिच्छेति प्रारब्धस्य किञ्चित् सिद्धिपदं ज्ञानदशेति, स्फुटतरपदा जाग्रत्क्रिया संकोचस्य पर्यसिसतत्वात् प्रारब्धस्व निर्वर्ण क्रियेति ऋजुमार्गः। एवमिच्छति जानाति करोतीति पदत्रयव्यवस्थिता सर्वोप्युद्यम इति वेदितव्यम्। अथ पुनर्विश्रमण क्रिया समुद्यमे जाग्रदिच्छा कस्यचिदुद्यमस्य निष्पत्तावन्यस्य चोद्यमस्य प्रवृत्तौ मध्ये विश्रान्तिः सम्भवतीति जाग्रत् विरताविच्छा

लक्षणं विश्रान्ति पदं सम्भवत्येवमन्यत्रापि विज्ञेयम्। निवृत्तिः स्वप्नो ज्ञानं किञ्चिद्विश्रान्ति समुन्मीलनात् सुषुप्तिः क्रिया विश्रमरूपा क्रियाया अनुसंधानात्। तथेह सुप्तिजाग्रतो प्रत्येकमिच्छात्वं क्रियात्वं च स्वप्नस्य ज्ञानञ्च निरूपितम्। अथान्यत्पदं निरूप्यते। विकल्पाविकल्प रूपत्वात् जडविश्रमरूप स्वप्नः प्रकाशपदं, जड विश्रम रूपः सुषुप्तिर्विमर्शपदं, अनयोरन्योन्य भाव परिग्रहप्रक्रियायां स्वप्न इच्छा जडीभाव क्रिया प्रारम्भरूपत्वात्। जाग्रज्ज्ञानं जाग्रति प्रकाशस्य स्ववहिर्भूततयावभासभाने वेद्यांशे जडता परिग्रहात्, जड सुषुप्तिः क्रियासमभिलषिताया जडीभावक्रियायाः साकल्येनानुसंधानात्। अथास्य जड स्वरूपस्य पुनः प्रकाश-प्रकाश करस्याथाऽजडी जडीभावक्रियासमुद्यम एव सुषुप्तिरिच्छा अजडीभाव क्रिया प्रारम्भ रूपत्वात्। जाग्रज्ज्ञानं वेदकप्रकाशस्पृष्ट्या वेद्यस्यकिञ्चिद-जडीभावसमुदयात् स्वप्नः क्रिया किञ्चज्जजडाजड रूपस्य साकल्येन अजडीभावक्रियानुसंधानात्। एवं स्वप्नसुप्त्योः प्रत्येकमिच्छात्वं क्रियात्वंच जाग्रतो ज्ञानत्वञ्च विज्ञेयम्। अनयैव दिशा जडाजड प्रमातृपदयोर्जाग्रत्स्वप्नयोरन्योन्य भावप्रक्रियायामपि वक्ष्यमाण मर्यादया बिन्दु-विसर्ग-श्लेष-रूपत्वेन जडाजड विश्रान्ति रूप सुषुप्ति मध्य कक्ष्यावगाहेन प्रत्येकमिच्छात्वञ्च योजनीयम्। विश्रान्तिरूपाया अपि सुषुप्तेश्चिदचिन्मयत्वात् ज्ञानत्वोक्तिरनवद्यैव। जीवः सुषुप्त्यवगाहेन विश्रान्तिं जानन्नेव शिवो भवति। शिवश्च तदवगाहेन जडत्वं जानन् जीवो भवतीति सुषुप्तेः मध्यपदत्वमुपपन्नमेवेति निर्वद्यकरं प्रमेयम्। एवं सुप्त्यादि पदत्रये यस्य कस्यचिदप्युपक्रमेण विलोमानुलोम भावात् पदत्रय प्रवाह शिवशक्त्यन्योन्य-भाव-समाधिरपि सिध्यतीति। सुषुप्त्यादि दशात्रयावबोधके मातृकाखण्डत्रये यस्यकस्यचिद-प्युपक्रमेणावर्तनम् साम्प्रदयिकमेवेति तत्सर्व-प्रक्रयानुसंधानं परिशीलनीयम्। तदुक्तं मातृका संग्रह रूपस्य बालायन्त्रस्य प्रस्तावे लघुस्तोत्रकारेण क्रमगतं यद्व्यस्थितं व्युत्क्रमादिति। सुप्त्यादिदशात्रय प्रतिबिम्बभूत चतुर्दशारादि चक्रस्कन्धत्रयात्मनः श्रीचक्रस्यापि सपर्या विषये यस्यकस्यचिदपि स्कन्धस्योपक्रेण बीजत्रयोद्देशेन विलोमानुलोप स्कन्धत्रय प्रवाहे सम्यगनुभवसमाधि सिद्धि रेवेति। तदखिल-प्रकृयानुसंधानमाचार्यवर्याणामिति महामन्त्रयन्त्रप्राणभूतमिदं प्रमेयमिति प्रपञ्चितम्। स्वप्नजाग्रत् सुषुप्तीनामिच्छाज्ञानक्रियात्वं प्रसिद्धिमार्गतया प्रतिपादयति सुप्तिक्रियेत्यादि। क्रियात्वे जाडयं हेतुतयोक्तम्। क्रियाखलु स्मृतिविलक्षणसाक्षादनुभवरूपतया बहिरुपसन्धानं तज्ज्ञानरूपान्तरानुसंधानबदजडं न भवतीति क्रियाया जडत्वमनुभवसम्प्रतिपन्नम्।

भाषा टीका

सूत्रसार -

संसार की समस्त वस्तुएँ इच्छा-ज्ञान-क्रिया के अन्तर्गत वर्गीकृत हैं। अत: समस्त कलात्मक वास्तु जगत् त्रिरूप है, यथा लोकत्रय, वर्णत्रय, वेदत्रय आदि। अर्थात् परं तत्त्व की इच्छाज्ञान क्रिया तीन रूपों में अभिव्यक्ति सकल वस्तुओं चकी त्रिरूपता का कारण है। सुषुप्ति आदि तीनों प्रकृत दशाएं भी इच्छा आदि रूप हैं। अतुएव सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत् अवस्थाओं के तीनों रूप इच्छा ज्ञान-क्रियात्मक प्रतिपादित किये गये हैं। सूत्रकार की यह उक्ति सामान्य है जिसका तात्पर्य-भूत रहस्यमय सिद्धान्त टीकाकार ने व्यवहारिक अनुभूति एवं पारम्परिक गुरु-मुखागत उपदेश के आधार पर यहाँ स्पष्ट किया है।

इच्छा-ज्ञान-क्रिया परस्पर एक दूसरे की मूल हैं ऐसा पूर्व में सिद्ध किया गया है। अत: सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत अवस्थाएं भी इच्छा-ज्ञान क्रियात्मक होने के कारण परस्पर एक दूसरे की मूल हैं ऐसा सिद्ध होता है। इस प्रकार निष्कर्षत: तीनों दशाएं अन्योन्य मूलक होने के कारण प्रत्येक समान रूप से प्रधान है। इस कारण त्रिकोण भाव में तीनों दशाएं एक दूसरे के आदि, मध्य, एवं अन्त रूप से संभावित हैं। इस प्रकार परस्पर आदि मध्य अन्त रूप में व्यवस्थित सुषुप्ति आदि प्रत्येक दशा में इच्छा-ज्ञान का भाव सम्भावित है।

अत: भेद, अभेद, एवं भेदाभेदात्मक संसरणों के अन्तर्गत सुषुप्ति आदि प्रत्येक अवस्था में इच्छा-ज्ञान-क्रिया की स्थिति का विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

(१) भेदात्मक संसरण में सुषुप्ति इच्छारूप, स्वप्न ज्ञान रूप एवं जाग्रत् क्रिया रूप है।

भेदात्मक संसरण में विश्रान्ति का रूप भेदाकार है एवं भेद संसार में इच्छा प्रथम पद है, इन कारणों से इच्छा को सुषुप्ति के रूप में निरूपित किया गया है। स्वप्न अवस्था में विश्रान्त का किञ्चित संकोच हो जाता है अत: स्वप्न को ज्ञान रूप कहा गया है। इच्छा आरम्भ पद है, प्रारब्ध का किञ्चितसिद्ध पद ज्ञान है। अतएव ज्ञान में इच्छा की अभिव्यक्ति स्फुटतर हो जाती है। इसी प्रकार विश्रान्ति के स्वरूप की स्पष्टतर अभिव्यक्ति स्वप्न में होती है अत: ज्ञान का स्वरूप स्वप्न में स्फुरित होता है। जाग्रत अवस्था में

क्रिया का पर्यवसान होता है अतः प्रारब्ध इच्छा के प्रसार का सरल मार्ग क्रिया है। तात्पर्य यह कि इच्छा करता हूं, जानता हूं, एवं करता हूं इन तीनों ही पदों में उद्यम की ही व्यवस्था है तात्पर्य यह कि जब शिव का जीवत्व की ओर संसरण होता है तब इच्छा ज्ञान क्रिया तीनों पद उद्यम है। इसी प्रकार विश्रम क्रिया के उद्यम में प्रथम पद जाग्रत है अतः जाग्रत को इच्छा पद के रूप में प्रतिपादित किया जाता है। किसी एक उद्यम की निष्पत्ति तथा अन्य उद्यम की प्रवृत्ति के मध्य में विश्रान्ति अवस्था की स्थिति होती है। अतः जाग्रत की विरति में विश्रान्ति का लक्षण इच्छा है। विश्रान्ति का लक्षण अन्यत्र भी इसी सिद्धान्त के अनुसार करना चाहिये।

निवृत्यात्मक संसरण में जाग्रत् के पश्चात् स्वप्न अवस्था की स्थिति है। विश्रान्ति के किञ्चित उन्मीलन के कारण स्वप्न दशा ज्ञान-रूप है।

विश्रम रूपी क्रिया की अनुसन्धातृ होने के कारण सुषुप्ति क्रिया है। इस प्रकार भेदात्मक संसरण एवं विश्रमण उभय उद्यमों में सुप्ति एवं जाग्रत् में से प्रत्येक को इच्छा रूप एवं क्रिया रूप तथा स्वप्न को ज्ञान रूप सिद्ध किया गया है।

(२) अभेद अर्थात् अजड संसरण में स्वप्न प्रथम पद, जाग्रत द्वितीय पद तथा सुषुप्ति तृतीय पद है। अर्थात् यहां अवस्थाओं का क्रम स्वप्न-जाग्रत सुषुप्ति रूप में है।

विकल्प एवं अविकल्प रूप होने के कारण अजड-विश्रान्ति रूप स्वप्न प्रकाश पद है एवं जड-विश्रांति रूप सुषुप्ति विमर्श पद है। स्वप्न एवं सुषुप्ति जब एक दूसरे के भाव को ग्रहण करते हैं (अर्थात् जब स्वप्न प्रथम पद एवं सुषुप्ति अन्तिम पद होते हैं) तब स्वप्न जडी भाव क्रिया का प्रारम्भिक रूप होने के कारण इच्छा है। मध्यम - पद जाग्रत् ज्ञान रूप होता है। जाग्रत् में प्रकाश का अवभास (स्वप्नावस्था के समान अन्तः में न होकर) यद्यपि बाहिर होता है, इस कारण वेद्यांश में जडता का रूप उत्पन्न हो जाता है तथापि यह प्रकाश का रूप ही है। अतः जाग्रत ज्ञान रूप कहा गया है। सुषुप्ति में क्रिया के जडत्व का पूर्ण रूप से अनुसन्धान होता है अतः सुषुप्ति क्रिया रूप हैं। निवृत्त्यात्मक संसरण में जब जड-स्वरूप सुषुप्ति का पुनः प्रकाश रूप में आविर्भाव होता है तब यह अजडी-भाव-प्रक्रिया उद्यम ही है जिसमें अजडी भाव का प्रारम्भ रूप होने से सुषुप्ति इच्छा पद ग्रहण

करती है। वेदक के प्रकाश की स्पृष्टि के कारण जाग्रत् ज्ञान पद है इस अवस्था में वेद्य में वेदक के प्रकाश के कारण किञ्चित् चिद्भाव का उदय हो जाता है। निवृति रूप इस संसरण में स्वप्न अजड-क्रिया के अनुसन्धान के कारण क्रिया रूप है। इस प्रकार अभेद संसरण में स्वप्न एवं सुषुप्ति प्रत्येक इच्छा एवं क्रिया का रूप है। जाग्रत ज्ञान का रूप है।

(३) इसी दिशा में जडाजड संसरण के अन्तर्गत जाग्रत् एवं स्वप्न प्रमाताओं की अन्योन्य भाव में परिग्रह की प्रक्रिया में बिन्दु एवं विसर्ग के श्लेशात्मक स्वरूप के कारण जडाजड़-विश्रान्ति रूप सुषुप्ति की स्थिति मध्य में निश्चित होती है। अतः जाग्रत् एवं स्वप्न प्रत्येक इच्छा का रूप है। विश्रान्ति रूपा सुषुप्ति चिदाचित् रूप होने के कारण ज्ञानाकार प्रतिपादित की गई है। सुषुप्ति अवस्था में अवस्थित जीव विश्रान्ति के बोध के कारण शिवस्वरूप हो जाता हैं, तथा सुषुप्ति अवस्था में शिव जडत्व की अनुभूति के कारण जीव स्वरूप होता है। अतः शिवत्व एवं जीवत्व उभय की अनुभूति का स्थल होने के कारण जडाजड संसरण में सुषुप्ति का स्थान जाग्रत् एवं स्वप्न के मध्य में है।

इस प्रकार सुषुप्ति आदि तीनों अवस्थाओं में विलोम अथवा अनुलोम किसी भी उपक्रम से अवस्था त्रय के प्रवाह में शिव-शक्ति के अन्योन्य भाव की ही स्थिति सम्यक रूप से सिद्ध होती है। अतएव सुप्ति आदि दशा त्रय के अवबोधक मातृका अर्थात्-वर्णमाला के स्वर आदि तीनों खण्डों का किसी भी उपक्रम से आवर्तन सम्प्रदाय के सिद्धान्त के अनुरूप है।

टीकाकार ने उपर्युक्त सिद्धान्त के समर्थन में लघुस्तोत्रकार का प्रमाण रूप में उल्लेख किया है। लघुस्तोत्रकार का मत है कि मातृका संग्रह रूप बाला मन्त्र का किसी भी बीज के उपक्रम से सुप्ति आदि किसी भी स्कन्ध के अनुलोम अथवा विलोम प्रवाह में स्कन्धत्रयात्मक श्री चक्र का सपर्या में विधान है जो अनुभव द्वारा पूर्ण रूप से सिद्ध है। दशाओं की उपर्युक्त प्रक्रिया के अनुसन्धान से प्रपश्चित सिद्धान्त आचार्य प्रमुख की अनुभूति पर भी आश्रित है। अतः यह सिद्धान्त सब प्रकार से प्रमाणित होने के कारण महामन्त्र एवं श्रीचक्र का प्राण भूत है।

प्रसिद्ध मार्ग के अनुसार स्वप्न-जाग्रत-सुषुप्ति में इच्छात्व, एवं क्रियात्व का प्रतिपादन करते हैं। क्रिया साक्षात् अनुभव रूप है। अतः यह स्मृति से

विलक्षण है। इस कारण क्रिया का वाह्य उपसन्धान किया जाता है। क्रिया का स्वरूप आन्तर-अनुभूत ज्ञान के समान अजड नहीं है अपितु जड है अतएव स्वप्न दशा ज्ञान है, जाग्रत् दशा क्रिया है तथा क्रिया एवं ज्ञान का मिश्रित रूप इच्छा को सुषुप्ति दशा मान्य किया गया है।

एकविंशतिं सूत्रम्

अन्योन्य लीनवपुषोरिहचैत्यचित्योः
सुप्त्यादिषु त्रिषुपदेषु भवो द्विरूपः।
श्लिष्टः प्रवृत्तिविनिवृत्तिमयोविभाव्यः
श्रीचक्रमूलमनुसंस्थिति दर्शनेना।।२१।।

व्याख्या

उक्त मर्यादया सूचिते सुषुप्त्यादीनां जडाजड स्वभावतया द्वैरूप्येणावस्थानं स्फुटी-करोति। अन्योन्यलीनवपुषोरित्यादि। सुप्त्यादिदशात्रयं खलुचिच्चैत्य पर्याययोः शिवजीवयोः सँसरण-विश्रमण व्यवहारपदं स्वरूपमेव। प्रकाशविमर्श पर्याययोश्चिच्चैत्ययोरन्योन्यलीनत्वं स्वभावः। प्रकाशेखलु विमर्शवासना नित्येनावस्थितता विमर्शेच प्रकाश वासना तयोरन्योन्य स्वभावोपादान स्वाभावत्वात्। तथैव जडाजडत्व व्यवस्थया तयोः प्रत्येकं स्वरूपभूते सुप्त्यादि दशात्रये अजडे जडं जडेऽवाऽजडमपि वासना रूपेण निलीनं पर्यायेण परिस्फुरतीति सूत्रतात्पर्यम्। चैत्यचित्योरिति। चैत्यशब्दस्य पूर्वनिपातेन माया प्राबल्यात् चैत्यपर्याय जीवदशानामेव प्रथमपर्यायस्फुरणमित्यभि सन्धिः। चैत्यचित्योर्जीवशिवयोः क्रमेण प्रवृत्तिनिवृत्तिमयः अत एव द्विरूपो भवः संसारः सुष्त्यादिषु त्रिषु पदेषु श्लिष्टोन्योन्य निलीनो विभाव्यः। जीवशिवपदानामन्योन्य निलीनतालक्षण श्लेषनिर्णयेभूलमाह। श्रीचक्रेत्यादि। चक्रं नवत्रिकोण श्लेष विशिष्टं यन्त्रं मूलमनुर्मातृकातयोः संस्थितिः संस्थानविशेषः तद्दर्शनेन पर्यालोचनेन श्रीचक्रसंस्थितिश्चतुर्दशारादि स्कन्धत्रयेऽपि अतिस्कन्धं त्रिकोणयोश्लेषः तेन श्लेषेण प्रत्येकं त्रैरूप्येणावस्थितानां शिवजीवदशानामन्योन्य निलीनताध्यवसायेन पर्यायेण स्फुरणप्रतिपत्तिः मूलमनुसंस्थितिः खण्डत्रयस्यानुलोमविलोमवर्तनं तेन च प्रवृत्तिनिवृत्ति रूप व्यवस्थयान्योन्य निलीबानां जीवशिवदशानां पर्यायेणोल्लसन प्रतिपत्तिरिति विवेकः।।२१।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

पूर्व सूत्र के अनुसार त्रिरूप में प्रतिपादित सुषुप्ति आदि दशाओं का जडाजडात्मक स्वभाव है, जिसके कारण इनकी जड एवं अजड दो रूपों में अवस्थिति है, जिनको इस सूत्र में स्पष्ट करते हैं।

अन्योन्य-लीन-चैत्य-चित् की सुषुप्ति आदि तीनों दशाओं का प्रवर्तन दो रूपों में होता है। प्रवृत्ति-निवृत्तिमय यह दोनों रूप परस्पर श्लिष्ट हैं। इस प्रकार श्लेश का स्पष्टीकरण श्रीचक्र के अन्तर्गत मातृकाओं की स्थिति के अवलोकन से होता है।

शिव एवं जीव का स्वाभाविक रूप में संसरण एवं विश्रमण होता है। चैत्य एवं चित् का पर्याय जीव एवं शिव है। अतएव चैत्य एवं चित् की सुषुप्ति आदि दशात्रय का स्वरूप भी जीव-शिव की दशाओं के समान संसरणात्मक एवं विश्रमणात्मक है। चित्-चैत्य प्रकाश एवं विमर्श का भी पर्याय है। अतएव प्रकाश-विमर्श के समान (सूत्र १३) चित्-चैत्य भी स्वभाव के एक दूसरे में लीन हैं। स्वभाव से विमर्श का उपादान प्रकाश एवं प्रकाश का उपादान विमर्श है। इस कारण विमर्श में प्रकाश की वासना तथा प्रकाश में विमर्श की वासना नित्य है। अतः सूत्र का तात्पर्य है कि जडत्व एवं अजडत्व की व्यवस्था के कारण प्रकाश एवं विमर्श की स्वरूप भूत चैत्य-चित् की सुषुप्ति आदि दशात्रय के अन्तर्गत अजड में जड की वासना तथा जड में अजड की वासना लीन रहती है। प्रकाश रूप अजड का जडावस्था में तथा विमर्श रूप जड का अजडावस्था में विकल्प से एक का दूसरे में स्फुरण होता रहता है।

सूत्र में "चैत्य-चित्योः" शब्द का प्रयोग है। इसमें चैत्य शब्द का उल्लेख प्रथम है चित् का पश्चात् में। चैत्य शब्द के प्रथम उल्लेख करने के कारण का स्पष्टीकरण करते हुए टीकाकार ने व्यक्त किया है कि माया के प्राबल्य अर्थात् प्रधानता के कारण चैत्य की पर्यायभूत जीव दशा का स्फुरण प्रथम होता है। अतः इस तथ्य को प्रकट करने के हेतु चैत्य शब्द का निपात प्रथम किया गया है, तत्पश्चात् चित् शब्द का, क्योंकि जीव का चित् की ओर संसरण बाद में होता है।

चैत्य-चित् अर्थात् जीव-शिव की प्रवृत्ति एवं निवृत्ति क्रम से होती है, अतएव सुषुप्ति आदि तीनों अवस्थाओं में द्विरूप संसरण श्लिष्ट होता है। अर्थात् जडाजडात्मक संसरण अन्योन्य लीन है।

श्रीचक्र के अन्तर्गत वर्मों की स्थिति के अध्ययन से शिव जीव पदों के अन्योन्य-श्लेष का सूत्रकार द्वारा प्रतिपादित भाव स्पष्ट हो जाता है।

शिव की प्राणेश्वरी शक्ति के प्रतीक श्रीचक्र के अन्तर्गत नव त्रिकोण हैं, जिनको चक्र में विशिष्टतया श्लिष्ट रूप में चित्रित किया गया है। इन परस्पर श्लिष्ट नव-त्रिकोणों में मातृकाओं का विशेष संस्थान है, जिसकी पर्यालोचना से श्रीचक्र की संस्थिति स्पष्ट हो जाती है।

सूत्र में प्रयुक्त "मूलमनुसंस्थिति" का तात्पर्य है कि श्रीचक्र के अन्तर्गत चतुर्दशार आदि तीनों स्कन्धों में से प्रत्येक स्कन्ध में त्रिकोणों का श्लेष दर्शाया गया है। इस श्लेष का तात्पर्य है कि शिव एवं जीव की त्रैरूप्य दशाओं के अन्योन्य-लीन अध्यवसाय का स्फुरण अर्थात् प्रतिपत्ति पर्याय से (क्रम से) होती है। इस तथ्य को टीकाकार पुनः स्पष्ट करते हैं कि जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों खण्डों के अनुलोम एवं विलोम प्रवर्तन से प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप व्यवस्था के कारण शिव जीव की अन्योन्य-लीन दशाओं का पर्याय (क्रम) से उल्लास होता है, उसी को स्फुरण या प्रतिपत्ति के नाम से कहा है, जिसका ज्ञान श्रीचक्र के अन्तर्गत वर्णों की व्यवस्था के अध्ययन से होता है।

द्वाविंशतिं सूत्रम्

इच्छा सुषुप्तिरवहिर्जनितः प्रबोधो
ज्ञानं क्रिया भवति जागरणं जडस्य।
तुर्यस्य जागर पदादि सुषुप्ति सीमा
इच्छादयः खलु दशास्त्वजडाः शिवस्य।।२२।।

व्याख्या

इदानीं विवृतीषत्स्पृष्टि स्पृष्टीषत्थिवृत्ति विवृति प्रयत्नक्रमेण व्यस्थित मन्त्र संस्थानेनावबोध्येन सुप्त्यादि जाग्रदन्त जाग्रदादि सुषुप्त्यन्त प्रवृत्ति निवृत्ति

मार्गेजीवशिवयोः संकोचपूर्ण भावाभिव्यक्तिः सहृदय सामयिक हृदयङ्गमेति। तन्मार्गोपाश्रयेण तत्समयमव वोधयितुकामः सुप्त्यादीनामिच्छादि भावमुपपादयति। इच्छासुषुप्तिरित्यादि सुषुप्तिरिच्छाभेद संसारइत्यभिप्रायः अवहिरन्तजनितः प्रबोधः स्वप्न ज्ञानं जागरणं जाग्रदवस्था क्रिया जडस्य जीवस्येवेच्छादीनां समवायनिर्देशः। तुर्यस्येत्यादि। उक्त खलु प्राक् जाग्रत्स्वप्न सुषुप्तीनाभेद विषयत्वे तुर्य व्यवहार इति। तदभिप्रायेणा त्रोक्तम्। तुर्यस्य जागर पदादीति। तुर्यस्थं त्वर्य व्यवहार लग्नं यदभेद रूपं जागरपदं तदादित आरभ्य सुषुप्तिसीमाः तुर्यस्थेन वा सुषुप्तिः तदवधिकाः अभेद जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तयः इत्यर्थः। अजडा तुर्यत्वेनाजडत्वे सिद्धे पुनरजड विशेषणमनुष्ठानतया योजनीयम्। शिवस्येच्छादयो दशा भवन्ति। ननु प्रकाशमयः शिवः प्रवृत्त्यभिमुखो विमर्शमयः पशुर्निवृत्त्यभिमुख इति प्रागुक्तम्। कथमत्र निवृत्तिरूपिणी तुर्यदशा शिवस्येत्युक्तमितिचेद् उच्यते। निवृत्यभिमुख पशु शिव इत्येव व्यवह्रियते। प्रवृत्त्यभिमुख शिवश्च पशुरित्येव व्यवहार मुपलभत इति महागुरोः सूत्रकारस्य निरवद्यः प्रवचनमार्गः।।२२।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

जड अर्थात जीव अवस्था में इच्छा सुषुप्ति है, अन्तः में प्रादुर्भूत स्वप्न ज्ञान है। तथा जाग्रत अवस्था क्रिया है। तुर्य दशा में स्थित जाग्रत्. स्वप्न सुषुप्ति चिदात्मक शिव की इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया का स्वरूप है।

समय सिद्धान्त का मत है कि मातृका मन्त्र की व्यवस्था विवृति, ईषत्-स्पृष्टि, स्पृष्टि, ईषत्-विवृत्ति एवं विवृत्ति रूप में क्रम से की गई है। जो प्रवृत्ति मार्ग में सुषुप्ति से जाग्रत् पर्यन्त शिव के पूर्ण सङ्कोच भाव की अभिव्यक्ति है। तथा निवृत्ति मार्ग में जाग्रत् से सुषुप्ति पर्यन्त जीव के पूर्ण सङ्कोच-त्याग का अवबोधक है। अतः इस क्रम से मातृका मन्त्र के द्वारा समय सिद्धान्त का बोध कराने के हेतु सुषुप्ति आदि अवस्थाओं को इच्छा आदि भाव में इस सूत्र में प्रतिपादित किया गया है।

सुषुप्ति में संसरण अभेदात्मक होता है। सुषुप्ति दशा इच्छा है। ज्ञान का अविर्भाव आभ्यन्तर में होता है अतः अन्तः जनित-ज्ञान स्वप्न है। जाग्रत् अवस्था जड जीव की इच्छा आदि का कारण है अतः जाग्रत् अवस्था क्रिया हैं।

पूर्व में अभेदात्मक जाग्रत्-स्वप्न सुषुप्ति को तुर्य नाम से प्रतिपादित किया गया है। अतएव वर्तमान सूत्र के उत्तरार्ध में तुर्यस्थ अभेद जाग्रत्-स्वप्न सुषुप्ति को शिव की इच्छा-ज्ञान-क्रिया के रूप में सम्पादित किया है।

विगत सूत्र में प्रकाशात्मक शिव को प्रवृत्ति अभिमुख सिद्ध किया गया है। अतएव निवृति रूपिणी तुर्य दशा को शिव की दशा के रूप में प्रतिपादन करना शङ्का का विषय हो जाता है। कारण यह है कि निवृति अभिमुख जीव के द्वारा तुर्य की दशा का अनुभव किया जाता है अतः तुर्य को जीव सम्बन्धिनी दशा प्रतिपादित करना चाहिये इस शङ्का के समाधान के लिये टीकाकार लिखते हैं कि निवृत्ति अभिमुख जीव का शिव रूप में व्यवहार किया जाता है तथा प्रवृति-अभिमुख शिव को जीव नाम से व्यवहृत किया जाता है। अतएव सूत्रकार द्वारा निवृत्ति रूपिणी तुर्य को शिव की दशा के रूप में निरूपित किया जाना निर्दोष है।

त्रयोविंशतिं सूत्रम्

अन्तर्मुखी भवति बिन्दुगतिर्विसर्ग
स्योक्तागतिर्गुरुजनेनबहिर्मुखीति।
पूर्वंसुषुप्तिपदमध्यमुपैति जाग्रन्
मध्यात्तमृच्छतिपरस्तुसुषुप्तिमध्यात्।।२३।।

व्याख्या

जीवशिवयोर्वहिर्मुखान्तरमुखतयान्योन्य विलक्षण स्फुरणमुपपत्तिमदेवेति प्राक्प्रतिपादित प्रक्रयाममुस्मारयन्नाह। अन्तर्मुखीत्यादि। बिन्दुगतिरन्तर्मुखीभवति विसर्गस्यगतिर्वहिर्मुखीति। गुरुजनेनोक्ता। तयोर्विश्रमणंसंसरण स्वभावतेति प्राक्प्रतिपादितत्त्वादत्राप्रतिपादनमितिमन्तव्यम्। अतः कारणात् पूर्वोपसन्निहित-वाक्ये पूर्वनिर्दिष्टो बिन्दुः सन्निहितवाक्यपूर्वनिर्दिष्टो जाग्रन्मध्यात्सुषुप्ति-पदमध्यमुपैति तिसृणामपिदशानाँ प्रत्येकं जडाजड भागद्वयस्यप्रतिपा-दितत्वान्मध्यदेशोभागद्वयस्यसन्दिरित्यवगभ्यते। जडाजड जाग्रत्परसमाप्त्य-नन्तरादबुद्धं तुर्यापर्यायाजडजाग्रत् प्रारम्भपदंजाग्रन्मध्यं ततः पूर्वावधेः सुषुप्तिपद मध्यं अभेद सुषुप्ति परिसमाप्तिपदमुत्तरावधिमुपैति। परस्तु उत्तरनिर्दिष्टो

विसर्गइत्यवगम्यते। सुषुप्ति मध्यात् अजड सुषुप्तिपरिसमाप्त्यनन्तरोद्‌बुद्ध जडसुषुप्तिप्रारम्भ पदात्पूर्वावधेः तं जाग्रन्मध्यं भेद जाग्रत्परिसमाप्ति पदमुत्तरावधिमृत्छति गच्छति। एवंबिन्दुविसर्गयोरन्तरवहिः प्रसरण प्रक्रया मन्त्रार्थ विवेकादिनात्यन्तोपयोगिनीति सूत्रकारेण स्फुटीकृतेति वेदितव्यम्।।२३।।

भाषा टीका

पूर्व सूत्र में शिव की अन्तर्मुखी एवं जीव की बहिर्मुखी अन्योन्य विलक्षण गति का प्रतिपादन किया गया है। इसी सिद्धान्त के अनुसार विन्दु एवं विसर्ग की गति को अन्तर्मुख एवं बहिर्मुख प्रतिपादन करते हैं।

सम्प्रदाय के गुरुजनों के अनुसार विन्दु की गति अन्तर्मुखी एवं जीव की गति बहिर्मुखी कही गई है। विन्दु एवं विसर्ग के स्वभाव को पूर्व में ही विश्रमणात्मक एवम् संसरणात्मक प्रतिपादित किया जा चुका है अतः यहां पुनः प्रतिपादन करने की आवश्यकता नहीं है।

उपर्युक्त कथन के अनुसार यह निष्कर्ष मिलता है कि विन्दु, निवृत्त्यात्मक संसरण में जाग्रत्-मध्य से संसृत होकर सुषुप्तिमध्य में सन्निविष्ट होता है।

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति दशाओं में से प्रत्येक दशा का विभाजन जड़ एवं अजड़ नामक दो भागों में प्रतिपादित किया गया है; इस कारण इन दशाओं के जड़ एवं अजड़ भागद्वय के मध्य देश को सन्धि नाम से कहा गया है। इस नियम के अनुसार जड़ जाग्रत् की समाप्ति के अनन्तर अनुभूत तुर्य की पर्यायभूत अजड़-जाग्रत् का प्रारम्भ-पद जाग्रत्-मध्य के नाम से सम्बोधित है तथा अजड़ (अभेद) सुषुप्ति की परिसमाप्ति के अनन्तर एवं जड़-सुषुप्ति के प्रारम्भ के पूर्व सन्धि में उद्‌बुद्ध पद को सुषुप्ति-मध्य कहा गया है। सुषुप्ति-मध्य की उत्तरावधि जड़-सुषुप्ति है।

मध्य-पद की उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार विन्दु की अन्तर्मुखी गति से तात्पर्य है कि निवृत्त्यात्मक संसरण में विन्दु जाग्रत्-मध्य पद से (अर्थात् जड़-जाग्रत् एवं अजड़-जाग्रत् के सन्धि पद से) सुषुप्ति-मध्य पद की उत्तरावधि अर्थात् जड़-सुषुप्ति में सन्निविष्ट होता है।

सूत्र के अन्तिम चरण में निर्दिष्ट पर अर्थात् विसर्ग की बहिर्मुख गति से तात्पर्य है कि विसर्ग अवस्था में विन्दु की प्रवृत्ति सुषुप्ति-मध्य से जाग्रत्-मध्य पर्यन्त होती है। अजड़-सुषुप्ति भी परिसमाप्ति के अनन्तर उद्‌बुद्ध जड़-

सुषुप्ति के प्रारम्भ पद को यहां सुषुप्ति-मध्य कहा गया है। इस प्रकार विसर्गावस्था में विन्दु का संसरण सुषुप्ति के अन्तर्तम पद से (अर्थात् अजड़-सुषुप्ति की परिसमाप्ति के अनन्तर उद्‌बुद्ध जड़-सुषुप्ति के प्रारम्भ पद से) जड़-जाग्रत् की अन्तिम-सीमा पर्यन्त होता है। यह विसर्ग की बहिर्मुखी गति है।

सूत्रकार द्वारा कृत विन्दु-विसर्ग की अन्तर्बहिः प्रसरणप्रक्रिया का स्पष्टीकरण मन्त्रार्थ के बोध के लिए आवश्यक है।

चतुर्विंशतिं सूत्रम्

सुप्त्यादि जाग्रदवधि त्रितयं दशानां
जन्तोः प्रवृत्ति वपुषोऽथ निवृत्तिमूर्त्तेः
तज्जाग्रदाद्यवधि भूत सुषुप्ति शम्भो
रारोहसीम समुपक्रमणोऽवरोहः।।२४।।

व्याख्या

उक्तमेवार्थं दृढ़ीकरणाय उपपत्त्यन्तरोपन्यासेन प्रतिपादयति सुप्त्यादीत्यादि। प्रवृत्ति स्वरूपस्य जन्तोर्जीवस्य दशानां त्रितयं सुप्त्यादिजाग्रदवधि प्रागुक्त मर्यादिवेति भावः अथेति पक्षान्तरे। निवृत्तिमूर्त्तेः शम्भोर्दशानां जाग्रदादि अवधिभूत सुषुप्ति सुषुप्त्यवधिमित्यर्थः। अत्र च प्रागुक्तप्रक्रियानुसन्धातव्या। जीवदशा प्रवहणवैलक्षण्येन शिवदशानां जाग्रदादि प्रवहणप्रक्रियायामुपपत्तिमाह। आरोहेति। आरोहस्य आरोहण रूपक्रियायाः यासीमा अवधिः तत्समुपक्रमणं तत्प्रारम्भः खल्ववरोहः प्रसिद्धः। तस्मात्प्रवृत्तिरूप सजीवदशावधिपदं जाग्रदवरोह पर्याय निवृत्तिरूप शिवदशानां प्रारम्भपदं भवतीत्युपपद्यत इत्यर्थः।।२४।।

भाषा टीका

पूर्व सूत्र में प्रतिपादित सिद्धांत को अन्य उपपत्ति के द्वारा दृढ़ करते हैं।

पूर्व सूत्र में जीव की दशा सुषुप्ति से जाग्रत् पर्यन्त निर्धारित की गई है तथा निवृत्ति-मूर्ति शम्भू के संसरण की प्रक्रिया जाग्रत् से सुषुप्ति पर्यन्त कही गई है। अन्य शब्दों में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दशाओं को आरोह एवं अवरोह नाम से भी सम्बोधित किया जा सकता है।

आरोहण-प्रक्रिया की सीमा के प्रारम्भ को आरोह कहते हैं। अतः प्रवृत्ति रूप सजीव दशा की प्रारम्भिक सीमा सुषुप्ति है। तथा अवरोह की पर्यायवाची निवृत्ति रूप शिव दशा का प्रारम्भ पद जाग्रत् है।

पंचविंशतिं सूत्रम्

तस्मात्प्रवृत्ति विनिवृत्तिमयोभयार्थः
स्वप्नः सुषुप्तिरपि जाग्रदपीतिगोप्यम्।
भेदानि भेदमय जीवशिवाङ्कानां
षण्णां विमिश्रणमिदं प्रकृतिर्दशानाम्।।२५।।

व्याख्या

अथारोहावरोहरूपयोः प्रवृत्ति निवृत्तिरारोह पर्याययोरेक विषयत्वोपपत्त्या दशा त्रयस्यैव तद्विषयत्वे दशानां प्रत्येकं भागद्वयाङ्गीकारो रहस्यमार्ग इत्युपदिशति तस्मादिति। प्राक्प्रतिपादित प्रमेयतात्पर्यस्य हेतुत्वमुक्तम् तदुच्यते। जीव एव खलु प्रवृत्तिकर्ता निवृत्तिमङ्गीकुर्वन् शिव इत्युच्यते। शिवो वा प्रवृत्तिपदे जीवशब्देन व्यवहृतः। पुनर्निवृत्तिपदे शिव शब्द व्यवहारं प्राप्नोति नतु जीव शिवयोः पारमार्थिको भेदः अपि तु दशाभेदेनैव इत्येकार्थता। एतदुभयपर्याययोः तयोः प्रकाशविमर्शयोः एवमेकार्थतानुसन्धेया। एवं प्रवृत्तिनिवृत्ति कर्त्रोरेकार्थत्वे वा प्रवृत्तिरूपा क्रिया तस्या एव निवृत्या भाव्यम्। यद्यन्यतः प्रवृत्तिरन्यतोनिवृत्तिः तर्हि जीवस्यान्यत्र प्रागुक्तप्रवृत्ति रूपबन्धानुच्वेदेन्यत्र निवृत्तिरूपा मुक्तिरिति। मुक्तेर्बन्ध्यसहितत्वे न निराकुलानन्दरूपं तल्लक्षणं न प्राप्नोति प्रवृत्तिनिवृत्योरैकपद्यमेवोपपद्यते। तत्प्रवृत्तिरूपस्यैव दशात्रयस्य निवृत्तिरूपतेति प्रत्येकमवस्थाद्वयमङ्गीकर्त्तव्यम्। तदेवावस्थाद्वयं भावद्वयमिति व्यपदिश्यत इति प्राक्प्रमेय तात्पर्यम्।। तस्मादिति हेतुतयोक्तम्। तस्मात्कारणात् स्वप्नः प्रवृत्तिनिवृत्तिमयोभयार्थः सुषुप्तिरप्येवं जाग्रदप्येवमित्येतद् रहस्यम्। एवं प्रवृत्ति निवृत्ति सम्भावित भेदाभेद मयत्वेन प्रत्येकं द्वि स्वभावानां अतएव षण्णां जीवशिवाङ्कानाँ दशानां विमिश्रणमन्योन्यलीनता लक्षण श्लेष। प्रकृति स्वभावः। शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिव इति यदा शिवशक्तयोरन्योन्यान्तरावस्थानं तदा भेदविभागेन तदङ्गभूतानां जाग्रदादीनां भागद्वयस्यान्योन्यान्तरावस्थानमिति।।२५।।

भाषा टीका

पूर्व सूत्र में शिव एवं जीव की जाग्रदादि दशाओं के आरोह एवं अवरोह क्रम की चर्चा की गई है। आरोह एवं अवरोह का पर्याय प्रवृत्ति एवं निवृत्ति हैं, जिनका विषय एक है। इस कारण जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति दशाओं में से प्रत्येक दशा के प्रवृत्तिमय एवं निवृत्तिमय दो बाग अङ्गीकार किये गये हैं, जिनका स्वरूप प्रकृतितया विमिश्रित है। इस प्रकार प्रत्येक दशा के प्रवृत्तिमय एवं निवृत्तिमय दो भागों में विभाजित हो जाने से जाग्रदादि तीन दशाओं की संख्या छै हो जाती है। रहस्य मार्ग का यह सिद्धांत इस सूत्र में प्रतिपादित है।

पूर्व सूत्र में प्रतिपादित प्रमेय के तात्पर्य के कारण का निर्वचन यहाँ किया जाता है। प्रवृत्तिकर्ता जीव जब निवृत्ति को अङ्गीकार करता है तब यह शिव नाम से कहा जाता है अर्थात् प्रवृत्ति पद में जीव नाम से व्यवहृत शिव का निवृत्ति पद में पुनः शिव नाम से व्यवहार किया जाता है। जीव एवं शिव का भेद पारमार्थिक नहीं है अपितु दशा भेद के कारण ही शिव एवं जीव में नाम का भेद है। इस कारण जीव एवं शिव में एकार्थता का निर्वचन है। इसी प्रकार जीव एवं शिव के पर्याय रूप विमर्श एवं प्रकाश में भी एकार्थता का अनुसन्धान उचित है।

इस प्रकार प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के कर्ता जीव एवं शिव की एकार्थता के कारण प्रवृत्ति एवं निवृत्ति क्रिया में भी एकार्थता प्रकट है; जो प्रवृत्ति रूपा क्रिया है वही निवृत्ति रूपा क्रिया है अर्थात् प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दोनों मार्गों में क्रिया का रूप एक है। यदि प्रवृत्ति का कारण अन्यत्र तथा निवृत्ति का कारण अन्यत्र स्वीकार किया जावे तब प्रागुक्त प्रवृत्ति रूप वन्ध के अनुच्छेद के हेतु निवृत्ति रूपा मुक्ति को अन्यत्र खोजना होगा। ऐसी दशा में मुक्ति का स्वरूप पूर्ण रूप से बन्ध रहित नहीं हो सकेगा। तथा मुक्ति का निराकुलानन्द रूप लक्षण दूषित हो जावेगा। अतः कारणात् प्रवृत्ति एवं निवृत्ति को एकपद्य स्वीकार करना ही उपयुक्त है। उपर्युक्त विवेचन से प्रवृत्ति रूप जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों दशाओं की निवृत्तिरूपता स्पष्ट हो जाती है। अतः प्रत्येक दशा की दो अवस्थाएं अङ्गीकार करना उचित है। यह अवस्थाद्वय ही (शिव-जीव) भाव द्वय हैं। प्राक् प्रतिपादित सिद्धान्त के तात्पर्य के रूप में यह उपदेश किया गया है।

इस प्रकार उपर्युक्त कारणों के आधार पर स्वप्नदशा प्रवृत्ति-निवृत्तिमय है।

इसी प्रकार सुषुप्ति एवं इसी प्रकार जाग्रत् दशा के दो भेद हैं। यह रहस्य मार्ग है।

इस प्रकार प्रवृत्ति-निवृत्ति अवस्थाओं से सम्भावित भेदाभेदमयता के कारण प्रत्येक दशा द्वि-स्वाभावात्मक है। अर्थात् प्रत्येक दशा के प्रवृत्ति-निवृत्यात्मक विभाजन के कारण शिव-जीव की दशाओं की संख्या छै हो जाती है।

प्रवृत्ति-निवृत्ति मय इन दशाओं का स्वरूप स्वभाव से विमिश्रित अर्थात् श्लिष्ट है। श्लेष का लक्षण है अन्योन्य-लीनता। अर्थात् प्रवृत्ति-निवृत्तिमय दशाएं परस्पर एक दूसरे में लीन हैं। तात्पर्य यह कि शिव के अन्तः में शक्ति एवं शक्ति एवं शक्ति के अन्तः में शिव की स्थिति है। अतएव यदि उपर्युक्त प्रकार से शिव-शक्ति का अन्योन्य अवस्थान सिद्ध है तब भेदात्मक भाव के कारण उनकी अङ्गभूत जाग्रदादि दशाओं के भावद्वय का भी अन्योन्य आन्तर अवस्थान सिद्ध है।

षड्विंशतिं सूत्रम्

स्वप्नप्रजागर सुषुप्तिमथाष्टकोणः
पङ्क्त्यस्त्रयुग्ममनुकोण विराजमाने।
यन्त्रेश्वरेहि शिवजीवसमन्वयो यं
दृष्टः समस्तपरमार्थ विदीष्टदेवे।।२६।।

व्याख्या

एवं भेदाभेदभागयोः प्रत्येकमुपपादिततया द्विरूपस्य जाग्रदेकस्य अन्योन्यश्लेषं तत्रेति बिम्बभूते महायन्त्रे सम्पादयति स्वप्न प्रजागर सुषुप्तिमयैः स्वप्नादि प्रतिबिम्बभूतैः अष्टकोण पंक्त्यस्त्रयको युग्ममनुकोणः अष्टकोण स्वप्न प्रतिविम्बं यकारादि हकारान्तैरष्टभिर्वर्णैं स्वप्नतत्वावयवानां कलादि शक्त्यन्तानां वक्ष्यमाणत्वात् पंक्त्यस्त्रयुग्मं जाग्रत्प्रतिबिम्बं ककारादि नकारान्तैर्विंशत्यावर्णैं जाग्रत् तत्वावयधानां पृथिव्यादि श्रोतान्तानां वक्ष्यमाणत्वात्-मनुकोणश्चतुर्दशकोणः। सुषुप्ति प्रतिबिम्बं अकाराद्यौकारान्तै श्चतुर्दशभिर्ववैं सुषुप्तितत्वावयवानां पृथिवीसंस्कारादि बिंद्वावर्त संस्कारान्तानां वक्ष्यमाणत्वात्।

एवं स्कन्धत्रयात्मकैश्चक्रैर्विराजमाने यन्त्रैश्वरी महायन्त्रे अयं शिव जीव समन्वयः प्रत्येक मवस्था त्रयात्मक शिवजीवश्लेषः दृष्टः। दर्शनं चैवं अष्टकोणादिषु चतुर्दश कोणान्तेषु चक्रेषु। योऽयं त्रिकोणद्वयश्लेषः संलक्ष्यते स एव श्लेषो जीव शिवाङ्गभूत स्वप्नाद्यः जडाजड भागश्लेषस्य प्रतिबिम्बमिति। ननु जाग्रदादि दशा त्रयस्य त्रिकोणप्रतिबिम्बमित्युक्तम् एकैकस्मिन् जाग्रदादि पदे कथं त्रिकोणभाव मूलभूता त्रैरूप्योपपत्तिरिति नाशङ्कनीयम्। अवस्थानामिच्छादि रूपतया तस्य चेच्छादित्रयस्य प्राक्प्रतिपादितमर्यादया नित्ययुत स्वभावत्वादेकस्यापि पदे सर्वस्या अपि त्रिपुटया व्यति सङ्गइति निरवद्यम्। यन्त्रेश्वरस्य मातृकाया इव महाप्रमाणतामुपपादयति समस्त इति। समस्त परमार्थविदामनेन विशिष्टोपादेयतोक्ता इष्टदेवे इष्टदेवतारूपेणाभिमते मन्त्रदेवताभ्यामतिरिक्तं नहि प्रमाणम्। अतोमातृका चक्रवोधितोऽर्यो न सशयैरूप स्पृश्यत इति तात्पर्यम्।।२६।।

भाषा टीका

स्वप्न-जाग्रत्-सुषुप्ति आत्मक अष्टकोण, पङ्क्तत्यस्र युग्म एवं मनुकोण से युक्त समस्त परमार्थ-सार इष्ट देवात्मक यन्त्रेश्वर श्रीचक्र के अन्तर्गत शिव-जीव का समन्वय दृष्टि गोचर होता है।

जाग्रदादि प्रत्येक दशा भेदाभेदात्मक प्रतिपादित किये जाने के कारण द्विरूप कही गई है। अतः इस सूत्र में दशाओं के विम्बभूत यन्त्र के अन्तर्गत द्विरूप अर्थात् प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप जाग्रत् का निरूपण करते हैं।

श्री चक्र के अन्तर्गत स्वप्न का अष्टकोण के द्वारा, जाग्रत् का पङ्क्तयस्र युग्म के द्वारा, तथा सुषुप्ति का मनुकोण अर्थात् चतुर्दशार चक्र के द्वारा अभिव्यञ्जन किया गया है।

स्वप्न-दशा-गत कला, माया, शुद्ध-विद्या, ईश्वर, सदाशिव, आज्ञी, व्यापिका, तथा शक्ति नामक आठ तत्त्वों का अभिव्यञ्जन, य, र, ल, व, श, ष, स, ह व्यापक वर्णों के द्वारा किया जाता है। अतः श्री चक्र में चित्रित व्यापक वर्णात्मक अष्ट कोण स्वप्नावस्ता का प्रतिविम्ब है।

जाग्रत् के अन्तर्गत पृथ्वी से श्रोत्र पर्यन्त वीस तत्त्वों के अभिव्यञ्जक क से न पर्यन्त वीस वर्ण हैं। अतः पञ्चमहाभूत, पञ्चतन्मात्रा, कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय का प्रदर्शन श्रीचक्र के अन्तर्गत पङ्क्तयस्र दशार-युग्म के चित्रण

के द्वारा किया गया है।

अकार से विन्दु पर्यन्त चौदह स्वर वर्णों के द्वारा सुषुप्ति के तत्त्वों का बोध होता है। अतः चतुर्दसार सुषुप्ति का प्रतिविम्ब है।

इस प्रकार स्कन्धत्रयात्मक यन्त्रेश्वरी महायन्त्र में शिवजीव का यह समन्वय प्रत्येक अवस्था में श्लिष्ट दृष्टि गत होता है। अर्थात् अष्ट कोण से चतुर्दश कोण पर्यन्त शिव-जीव का ही श्लेष है। श्री चक्र में जो त्रिकोण-द्वय का संश्लेष दिखलाई देता है वह भी शिव-जीव के अङ्गभूत, स्वप्न में समुद्भूत जडाजड भाग के श्लेष का प्रतिविम्ब है।

इस सूत्र की टीका के प्रारम्भ में टीकाकार ने सम्बन्ध निरूपित करते हुए लिखा है। कि जाग्रत दशात्मक शिव-जीव के श्लेष का निरूपण इस सूत्र में है। अतः पूर्व पक्ष शङ्का प्रस्तुत करता है कि त्रिकोण की जाग्रदादि तीनों दशाओं का प्रतिविम्ब प्रतिादित करना चाहिये न कि केवल एक मात्र दशा का किन्तु यह शङ्का निर्मूल है। जाग्रदादि तीनों अवस्थाएं इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक त्रिपुटी का स्वरूप हैं। अतः अवस्थाओं का इच्छा आदि से नित्य सम्बन्ध हैं। अतः इच्छा-ज्ञान-क्रिया में से किसी भी पद में समस्त अवस्थाओं की त्रिपुटी का अवस्थान निश्चित है।

समस्त परमार्थ-रूप इष्ट देवता का यथार्थ रूप में प्रतिपादन करने के लिये मन्त्र देवता के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। अतः मातृकाचक्र के द्वारा अवबोधित अर्थ को संशय की दृष्टि से नहीं देखना चाहिये। तात्पर्य यह कि वर्णमाला के क्रम का निबन्ध इस प्रकार किया गया है जिससे महाशक्ति के स्वरूप का यथार्थ एवं यथास्थान बोध हो सके। अतः वर्णमाला के द्वारा ही मातृकाशक्ति का बोध सम्भव है अन्य साधन के द्वारा नहीं।

सप्तविंशतिं सूत्रम्

सुप्तिः शशी जडतया तपनोऽपि जाग्र-
च्चैत्यस्य संतपनमात्र चिदात्मकत्वात्
स्वप्नोनलोगिलित चैत्यतया पशुत्वे
सोऽप्यर्क एव दहनः सकलं शिवत्वे।।२७।।

व्याख्या

अथ स्वरस्पर्श व्यापकानां चन्द्रसूर्याग्नि व्यवहारोपपत्तिस्तदर्थभूत सुषुप्त्यादीनां चन्द्रादित्योपपत्तिमूलेति तत्प्रमेयं व्युत्पादयति। सुप्तिः शशीत्यादि। जडतया जाड्याद्धेतोः सुप्तिः शशी चन्द्रः, ब्रह्माण्डपिण्डाण्डयोरन्योन्य-कारणत्वेनैकस्वभावत्वात्। चैत्यस्य वेद्यस्य घटपटादे सन्तपनमात्र चिदात्मकत्वात् सुषुप्तिगत जाड्यप्रमार्जनादजडत्व स्पृष्टयुप-लम्भनेन यत्सन्तपनं प्रकाशोष्मणा शोषणं न तु तत्संतापनमेतद्दहन तन्मात्रचिदात्मकत्वात् तत्परिपाटी व्यस्थित प्रकाशकात्मकत्वाद्धेतोर्जाग्रदवस्था तपनः सूर्यः जाग्रत परिच्छिन्न प्रकाशात्मकतयावहिर्गतत्वेनैव चैत्यप्रकाशनंसूर्यस्येव न तु वह्निवत् स्वान्तर्गतत्वेन स्वावधिपर्यन्त प्रकाशनमिति भावः गिलित चैत्यतया स्वान्तरूपक्षिप्त चैत्यतया स्वप्नोऽनलः स्वप्ने खलु चैत्यं स्वमनो गर्भ एव निलीनं भाति। एवं वह्नित्वेन संभावितस्य स्वप्नस्य पशुत्व विषये सूर्यत्वमेवाह। पशुत्वे सोऽप्यर्क एवेति स इति स्वप्नः पशुः खलु स्वप्ने स्वमनोगतत्वेन स्वान्तस्थमपि जगन्मायया स्ववहिष्ठमेवानुसन्धत्ते। जाग्रति पतितो जाग्रदिव स्वप्नेऽपि पशोः सूर्य एवेत्यनुभव सम्प्रतिपन्नँ शिवत्वे सुप्त्यादीना विशेषमाह। शिवत्वे सकले दहन इति सकले सुप्त्यादित्रयं दहनोऽग्निरेव सर्वत्र दशायामभेदवासना पाटलेन जगत्कवलनादितिभावः।।२७।।

भाषा टीका

पशु दशा में सुषुप्ति को चन्द्र, जाग्रत् दशा को सूर्य एवं स्वप्न दशा को अग्नि के रूप में तथा शिव दशा में तीनों अवस्थाओं को अग्नि के रूप में प्रतिपादित किया गया है।

यहाँ समस्त वर्णात्मक श्री मातृकाचक्र को स्वर, स्पर्श एवं व्यापक वर्णों में पुनः विभाजित किया है। अन्तःस्थ तथा ऊष्माण यकार से हकार पर्यन्त वर्णं को व्यापक पद के नाम से व्यवहार किया है। स्वर, स्पर्श एवं व्यापक पदों की क्रमशः चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि नाम से उपपत्ति होती है। अतएव स्वर, स्पर्श एवं व्यापक पदों की अर्थभूत सुषुप्ति, जाग्रत् एवं स्वप्न अवस्थायें क्रमशः चन्द्र, सूर्य, अग्नि आत्मक सिद्ध हैं।

सुषुप्ति का स्वभाव जड है तथा शशि का स्वभाव भी जड है, अतः स्वभाव की जडता के सादृश्य के कारण सुषुप्ति अवस्था को चन्द्र के रूप

में निरूपित किया है। कारण का जो स्वभाव होता है वही स्वभाव कार्य का होता है। ब्रह्माण्ड को पिण्डाण्ड का कारण, तथा पिण्डाण्ड को ब्रह्माण्ड का कारण प्रस्तुत मार्ग में स्वीकार किया गया है। अतएव अन्योन्य कार्य-कारण भाव के कारण पिण्डाण्ड एवं ब्रह्माण्ड का स्वभाव एक है। इस सिद्धान्त के आधार पर ब्रह्माण्ड में जो यह जड-स्वरूप चन्द्र है उसी को स्वभाव की जडता के कारण पिण्डाण्ड में सुषुप्ति नाम से सम्बोधित किया जाता है।

चिदात्मकता के कारण चैत्य अर्थात् वेद्य जगत् सन्तपन मात्र है। अर्थात् चिदात्मकता के कारण जडता से प्रमार्जित सुषुप्ति में अजडत्व की स्पृष्टि के उपलम्भ से केवल सन्तपन अर्थात् प्रकाश की ऊष्मा से शोषण होता है (न कि सन्तापन) अतएव चिदात्मकता के कारण सुषुप्ति में आविर्भूत सन्तपन मात्र की परिपाटी से व्यवस्थित प्रकाशात्मकता के कारण जाग्रत् अवस्था को सूर्यात्मक निरूपित किया गया है। प्रकाश का द्विविध स्वभाव है – (१) संतपन (२) संतापन। यहां सुषुप्ति दशा में प्रकाश के संतपन मात्र उद्रेक के कारण तद्भूत जाग्रदावस्था की प्रकाशात्मकता परिच्छिन्न है। अतएव इस अवस्था में सूर्य जगत् को केवल वाह्यतः प्रकाशित करता है, वह्नि के समान स्वान्तर्गत आत्म-बोध की सीमा पर्यन्त वेद्य को प्रकाशित करने का सामर्थ्य सूर्य में नहीं है।

स्वप्नावस्था में चैत्य केवल मनोगत अन्तः में लीन रहता है अतः स्वप्न को वन्हि रूप कहा है, किन्तु इस प्रकार वन्हि से उद्भूत स्वप्नावस्था जीवात्मक संसरण में सूर्य रूप ही है। कारण यह कि पशु दशा में स्वप्न की अनुभूति यद्यपि स्वमनोगत होने से अन्तः में होती है तथापि माया के कारण जगत् का यह अनुसन्धान वाह्य अनुभूति के समान प्रतीत होता है। इस प्रकार अनुभव से भी सिद्ध है कि पशु दशा में स्वप्न भी जाग्रद् के समान सूर्यात्मक है।

शिव दशा में सुषुप्ति आदि तीनों अवस्थाएं वह्नि आत्मक हैं। सभी अवस्थाओं में सर्वत्र अभेद वासना की प्रधानता एवं व्याप्तृत्व शेष रहता है तथा जगत् का लय हो जाता है अतएव शिवत्व में दहनात्मकता का भाव निरूपित है।

अष्टाविंशतिं सूत्रम्

चैत्यातिविस्फुरण सीम्निखलुप्रतिष्ठा
जापत्यणोरथतुरीयपदान्तरार्थे।
शम्भोर्विमर्शवति जाड्यमलव्यपेते
जापत्सुषुप्तिदशयोः सममध्य भागे।।२८।।

व्याख्या

अथ जीवशिवयोर्दशात्रयेसर्वत्र वा कुत्रचिद्वा स्वात्माभिमानदार्ढ्यमित्याकाङ्क्षायां मन्त्रतात्पर्यमभि सन्धाय आह-चैत्येति। चैत्यस्यातिविस्फुरणमात्यन्तिक भेदेनोज्जृम्भणं तस्यसीमा अवधिः तत्र जागृति भेदपरमावधौअणोजीवस्यप्रतिष्ठः स्वात्मनोऽभिमान दार्ढ्येनावस्थानम्। जाग्रत्पदबोधितेषु स्पर्शैषु मकारस्य जीवकला स्थानत्वेन वक्ष्यमाणत्वात्। अथ शम्भोर्विमर्श वति अतेव जाड्यमलव्यपेते जाग्रत् सुषुप्तिदशयोः सममध्यभागे अभेद विकल्पपदमत्र जाग्रद्विपक्षितंनिर्विकल्पपदं सुषुप्तिः तयोर्मध्यभागे सन्धि रूपस्य तस्यपदस्यविकल्पाविकल्पोभयपद व्यापकत्वात् अभेद विकल्पाविकल्प सन्धिपदबोधकस्य क्षकारस्य शिवकलास्थानत्वेनवक्ष्यमाणत्वात्।।२८।।

भाषा टीका

चैत्य के भेदात्मक स्फुरण की आत्यन्तिक सीमा जाग्रत् है जिसमें जीव की प्रतिष्ठा अर्थात् आत्माभिमान का दृढ़ अवस्थान है। जाग्रत् पद के बोधक स्पर्श वर्ण हैं जिनकी अन्तिम सीमा मकार है। अतः यहां संकेत है कि मकार जीवकला का स्थान है।

जब शम्भु तत्त्व विमर्शित होता है तब जाग्रत् एवं सुषुप्ति दशाएं जाड्य मल से मुक्त हो जाती हैं। इसका तात्पर्य है कि शाम्भवी विमर्श में जाग्रत् एवं सुषुप्ति उभय दशाओं की अभेदानुभूति होती है। अतएव जाग्रत् एवं सुषुप्ति के सममध्य भाग अर्थात् सन्धि में विकलाविकल्प पदों की व्यापकता के कारण अभेद विकल्प पद को जाग्रत् एवं निर्विकल्प पद को सुषुप्ति निरूपित किया है। यह शाम्भवी अवस्था जिसमें जाग्रत् एवं सुषुप्ति की अभेदात्मक अनुभूति होती है तुर्य नाम से सम्बोधित है। इस विकल्पा-विकल्प पद का अवबोधक क्षकार है जिसको शिव कला का स्थान प्रतिपादित किया है।

उनत्रिंशत् सूत्रम्

माता शशी भवति मेय पदं पशुत्वे
वह्नि प्रमाणमिह तिग्मरुचिः क्रियाग्रयम्।
मातानलः शिवपदे हिमगुः प्रमेयं
ज्ञानाग्र्यभाग इह तुर्य रविः प्रमाणम्।।२९।।

व्याख्या

अथ जाग्रन्मध्यपदकस्य मार्गस्य प्रमेयमाह-माता शशीत्यादि। पशुत्वे शशी सुषुप्त्यात्मक स्वरखण्डार्धश्चन्द्रः माता प्रमाता भवति। पशुत्वे चन्द्ररूपस्य वेद्यस्यैव व्याप्तिः मेयपदं बहिः स्वप्नात्मर्क व्यापक खण्डार्धो वह्निः प्रमेय पदं भवति। पशुत्वे वह्नि रूपस्य वेदकस्य व्यप्यत्वात्। इह पशुत्वे तिग्मरुचिः जाग्रदात्मक स्पर्शखण्डार्धः सूर्यः क्रियाग्रं वेद्यांश प्रधान प्रमाणं वेद्यवेदकोमयात्मके प्रमाणे पशु दशायां वेदकांश व्यापकतया वेद्यांश प्राधान्यमवलम्बते। अथ शिवतायां चन्द्रादेर्भावान्तर ग्रहणमाह। शिवपदे अनलपदकः प्रमाता शिवपदे वेदकस्य व्यापकत्वात् तत्र हिमगुश्चन्द्रः। वेद्यं प्रमेयं व्याप्यत्वात् इह शिवतायां तुर्यरविः अभेद जाग्रद्रूपो रविस्तुर्य रविः। ज्ञानाग्रंभागं वेदन-प्रधानांशकं व्याप्तिमत्तया प्रधानभूत वेदकांशं प्रमाणं भवति। अयं सुप्त्यादि स्वप्नान्तभार्गे विवेक इति वेदितव्यम्।।२९।।

भाषा टीका

पशु दशा में शशि को प्रमाता वह्नि को प्रमेय एवं क्रिया-पदात्मक सूर्य को प्रमाण के रूप में तथा शिव दशा में वह्नि को प्रमाता, शशि को प्रमेय तथा ज्ञानाग्र्य (ज्ञान प्रधान) तुर्य-रवि को प्रमाण के रूप में प्रतिपादित किया गया है।

बीसवें सूत्र में प्रतिपादित किया है कि जाग्रदादि किसी भी अवस्था का आविर्भाव आदि, मध्य अथवा अन्त किसी भी क्रम में सम्भव है। इस सिद्धान्त के अनुसार यहां अवस्थाओं के सुषुप्ति-जाग्रत्-स्वप्न क्रम से अङ्गीकार कर इस मार्ग को जाग्रन्मध्यम मार्ग के नाम से सम्बोधित किया है, कारण यह कि यहां जाग्रत् की स्थिति का सुषुप्ति एवं स्वप्न के मध्य में उल्लेख किया है।

इस सूत्र में जाग्रन्मध्य मार्ग में जीव एवं शिव के अवस्थात्रयात्मक प्रमाता-प्रमाण-प्रमेय पदों को शशि सूर्य एवं अग्नि तत्त्वों के रूप में प्रतिपादित किया है।

पशु दशा में शशि को प्रमाता कहा है। टीकाकार ने परिभाषा करते हुए सुषुप्ति के अवबोधक स्वर-खण्ड के अन्तर्गत निर्दिष्ट अर्धचन्द्र को शशि के नाम से सम्बोधित किया है। पशुत्व में चन्द्र रूप वेद्य की ही व्याप्ति होती है। अतः व्याप्तित्व के कारण शशि प्रमाता है।

प्रमेय पद को वह्नि के रूप में निरूपित किया है। स्वप्न अवस्था के अवबोधक व्यापक खण्ड के आधे भाग को अर्थात् य, र, ल, व, को वह्नि की संज्ञा दी गई है। पशुत्व में वह्नि रूप वेदक के व्याप्यत्व के कारण प्रमेय को वह्नि कहा है।

पशु दशा में सूर्य को, जिसका अवबोधक जाग्रदात्मक स्पर्श खण्ड का वेद्यांश-प्रधान अर्ध भाग है, उसे प्रमाण पद के रूप में प्रतिपादित किया है। वेदक एवं वेद्य उभय का मिश्र रूप प्रमाण पद होता है। इस दशा में प्रमाण पद के वेदकांश की व्यापकता के कारण वेद्यांश की प्रधानता होती है, अतः यहां पशु दशा में सूर्य का यह भाग जिसमें वेद्यांश प्रधान होता है जो प्रमाण पद है। (स्पर्श वर्णों के क वर्ग एवं च वर्ग को वेद्य तथा ट वर्ग एवं त वर्ग को वेदक कहा जाता है। क वर्ग पञ्चभूतों का तथा च वर्ग तन्मात्राओं का अवबोधक है, अतः प्रमाण रूप सूर्य का यह वेद्यांश है। ट वर्ग एवं त वर्ग इन्द्रियों का द्योतक है अतः यह वेदकांश है। पशु दशा में क्रिया की प्रधानता होती है अतः जाग्रदात्मक सूर्य के प्रमाण पद में क्रिया अर्थात् वेद्यात्मक अंश की प्रधानता निरूपित की गई है।

शिव दशा में जाग्रदादि अवस्थाओं का क्रम अवरोहात्मक होता है अतः पशु दशा में जो प्रमाता होता है वह प्रमेय पद में परिणत हो जाता है तथा प्रमेय पद प्रमाता का पद ग्रहण करता है, इस कारण यहां अनल प्रमाता है तथा वेदक शशि की व्याप्ति परिवर्तित होकर व्यापकता का रूप ग्रहण करती है अतः शशि प्रमेय पद में परिणत हो जाता है। निवृत्ति रूप शिव दशा में सूर्य के वेदक अंश अर्थात् ज्ञानात्मक अंश की प्रधानता रहती है तथा क्रियात्मक वेद्यांश अप्रधान रहता है। अतः जाग्रत् का अभेद रूप जिसको तुर्य-रवि नाम से कहा गया है यहाँ प्रमाण पद है। तुर्य में शिवत्व की अनुभूति होती है जो दशा केवल ज्ञानात्मक है। अतः यहाँ प्रमाण रूप सूर्य का तुर्य-रवि के नाम से सङ्केत किया है।

त्रिंशत् सूत्रम्

चैत्यप्रमातुरिह यज्जडमेवमानं
तच्चित्प्रमाणमनुजीवति तद्धिचैत्यम्।
चित्तत्वमेव नियमादनुजीवदेतन् -
नात्यश्नुते स्वमिव चित्तदिदं विभेदि।।३०।।

व्याख्या

अथ विसर्गरूपस्य वेद्यप्रमातुर्भेद रूपतोपपत्तिमाह चैत्य प्रमातुरित्यादि। इह जाग्रन्मध्यमपदके मार्गे चैत्यप्रमातुः चैत्यरूपस्य प्रमातुः जडमेव क्रिया रूपतया जडमेव यावन्मानं प्रमाणं वेद्यकवलन-साधनं तच्चिति प्रमाणं चितः साधनभूतं ज्ञान-रूपं प्रमाणमनुजीवति अनुप्राणिति। अत्रायमभिप्रायः पशुत्वे वेद्यस्य कवलयतः पृथिव्यादि रूपस्य वेद्य प्रमातुस्तत्कवलेन व्याप्तौ साधनं शब्दादि पञ्चकं शब्दादिभिः खलु स्वधर्म भूतैः साधनैः पृथिव्यादयो वेदकं बध्नन्ति।

तत्र शब्दादयो जडत्वाद्वेदकस्य साधनं विमर्शरूपत्वादजडं श्रोत्रादिकमनुजीवन्ति। श्रोत्रादीनामेव शब्दादि व्याप्त्यनु-संधानेन शब्दादीनां व्याप्तिप्रसाद-सिद्धिरितिभावः। अतो वेद्यप्रमाणस्य वेदक प्रमाण सापेक्ष कार्य कारित्वम् तच्च चैत्यं प्रमातृ चित्तत्वमेव नियमादनुजीवति। चित्तत्वाभावे चैत्य व्याप्त्यनु संधातुरर्भावाच्चैत्यव्याप्तेरसिद्धिरेव। अपि च चैत्य स्वरूपस्याप्यसिद्धिः प्रथमतः इति चैत्य व्याप्ति पदे चितः शिरोदर्शनमवश्यमिति। चिद् व्याप्तिपदे चैत्योच्छेदएव चैत्यव्याप्तिपदे चितो नोच्छेदः। अतश्चैत्यं स्वव्याप्तिपदे चित्सहितमेवेति भेदस्योपपत्तिरिति तात्पर्यम्। चित्स्वमिव आत्मानमिव एतच्चित्तत्वं कर्मनात्युश्नुते नात्यन्तमुत्सादयति तत्तस्मात्कारणादिदं चैत्यं बिभेदि भेदवत्।।३०।।

भाषा टीका

विसर्ग रूप वेद्य-प्रमाता की भेदरूपता के कारण का निरूपण इस सूत्र में किया है।

पशु दशा में चैत्य-प्रमाता के प्रमाण-पद की जडांशता चित्-प्रमाण को अनुप्राणित करती है। अतः सिद्धान्ततः चित्तत्त्व को चैत्य अनुप्राणित करता है

यह सिद्ध है, किन्तु इस प्रक्रिया में चित् तत्त्व का चैत्य के द्वारा पूर्ण उच्छेदन सम्भव नहीं है चित् का आभास शेष रहता है अतः चैत्य पद अर्थात् जीव दशा भेदात्मक है यह सिद्ध होता है।

शिव दशा चित् तत्त्वात्मक है। इस दशा में चिदात्मक श्रोत्रादि ज्ञानात्मक साधनों के द्वारा जड अनुप्राणित होता है। पशु दशा में यह क्रम विपरीत हो जाता है जिसके कारण चैत्य की प्रधानता होने से प्रत्यक्ष ज्ञान अचित् तत्त्व का होता है। तथा चित् के धर्मभूत शब्दादि साधनों के द्वारा चित् तत्व को चैत्य आत्मसात् कर बन्धन में बांध लेता है। अर्थात् चिद्रूप धर्मी चैत्य रूप धर्म के बन्धन में बंध जाता है तथा चैत्य के अन्त में चित् तत्त्व का लोप हो जाता है अतः पशु दशा में चित् की सत्ता का ज्ञान चैत्य रूप प्रमाण के द्वारा होता है। इस प्रकार चित् तत्व को नियम से चैत्य अनुप्राणित करता है, किन्तु शिव दशा में जिस प्रकार चित् तत्त्व के अन्तः में चैत्य का पूर्ण विलय हो जाता है एवं शिवत्व की अभेदात्मक अनुभूति शेष रह जाती है उस प्रकार चैत्य में चित् का पूर्ण लय नहीं होता है; क्योंकि चैत्य की सत्ता का आधार चित् है। यदि चित् की सत्ता का अभाव माना जावे तब चैत्य की व्याप्ति में अनुसन्धाता का अभाव हो जाने के कारण चैत्य की व्याप्ति की असिद्धि हो जावेगी। अतएव चैत्य के स्वरूप की भी असिद्धि निश्चित है। इस कारण चैत्य-व्याप्ति में चित् तत्त्व की सत्ता का दर्शन आवश्यक रूप में अनिवार्य है। इस प्रकार विसर्गात्मक चैत्य की व्याप्ति में चित् तत्व का पूर्ण रूपेण अनुच्छेद न होने से चित् एवं चैत्य उभय तत्वों की सत्ता रहती है अतएव प्रमाणित है कि चैत्य तत्व की दशा भेदात्मक है।

एकत्रिंशत् सूत्रम्

जाड्यादचिन्न विमृशत्यपिमातृभावे
तां चित्कलेव गिलितात्मपदां मृशन्ति।
मोहेन कल्पयति मातृदशाममुष्या
व्याप्तिर्हि मातृपद लक्षणतोपपन्ना॥३१॥

व्याख्या

उक्तमेवार्थ स्फुटीकरोति जाड्यादित्यादि। अचिच्चैत्यं मातृभावेऽपि स्वव्याप्तिक पदेऽपि जाड्याद्धेतोर्नविमृशति। नहि पृथिव्यादौ चैत्य विमर्शः तां अयति सम्पादयति। एवं चेद्विमर्श वतोः वेदकस्येव वेद्य व्याप्ति पदेऽपि प्रमातृत्वमस्त्विति चेन्नेत्याह। अव्याप्तेर्मातृलक्षणत्वं व्याप्ति मातृतावच्छिन्न प्रमातृलक्षरूप विमर्श वतोऽपि वेदकस्य तृतीय पदमपि व्याप्यत्वाभिमान दोषेन व्याप्यत्वान्न प्रमातृत्वमिति तात्पर्यम्।।३१।।

भाषा टीका

पूर्व प्रतिपादित सिद्धान्त का स्पष्टीकरण करते हैं।

शिव दशा में विमर्शयुक्त चित् तत्त्व प्रमाता है। पशु दशा में प्रमाता चैत्य है; फलतः चित् के समान ही चैत्य को भी यहाँ प्रमातृत्व के कारण विमर्शवान् निरूपित करना चाहिये, किन्तु इस दशा में चैत्य यद्यपि मातृ-भाव अर्थात् स्वव्याप्ति से युक्त है तथापि जाड्य के कारण यह विमर्शवान् नहीं है। इस दशा में भी विमर्श चित् कला को ही निरूपित किया है।

पशु दशा में चैत्य आत्मपद का अर्थात् प्रमातृ भाव को प्राप्त करते हुए भी विमर्शवान नहीं है अतः पूर्व पक्ष शङ्का करता है कि ऐसी दशा में पशुत्व में भी, चित् को ही प्रमाता निरूपित करने में अधिक औचित्य है, किन्तु यह शंका युक्ति युक्त नहीं है क्योंकि पूर्व पक्ष ने मातृपद के लक्षण पर विचार नहीं किया है। जिस पद की व्याप्ति होती है उस पद को प्रमाता कहा जाता है अर्थात् व्याप्ति-मात्रता प्रमाता का लक्षण है, विमर्शत्व नहीं। अतएव इस लक्षण के अनुसार पशु दशा में व्याप्ति के कारण चैत्य को प्रमाता स्वीकार करना तर्क संगत है। व्याप्ति-पद न होने के कारण चित् को प्रमाता नहीं कहा जा सकता है।

चैत्य दशा में विमर्शकर्ता चित्-वेदक को व्याप्यत्व का अभिमान होता है एवं व्याप्तृत्व का अभाव होने से चित्-वेदक से प्रमाता की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आता है अतः पूर्व पक्ष की शङ्का निराधार है।

द्वात्रिंशत् सूत्रम्

मानं तृतीयपदभागपि बाह्यतस्तु
मध्ये विमिश्रणमिदं खलु मेयमात्रोः।
मिश्रं हि मध्यमपदे निखिलस्य दृष्टं
द्वैरूप्यमस्य च नपुंसकता च धाम्नः।।३२।।

व्याख्या

इदानीं स्पर्शार्धस्य जाग्रद्रूपस्य प्रमाणात्मनः सूर्यस्य मेयमातृ मिश्ररूपतया तदुभय सिद्ध यनन्तरं सिद्धिरांपन्नेति तृतीय स्वयं कृते स्वपदौचित्यं कथं मध्यमरूप द्वितीय पदौचित्यमित्याशङ्कां परिहरति मानमित्यादि। मानं प्रमाणं तृतीयपदभागपि वाह्यतस्तु मध्यविश्रान्तिपदे निराग्रह रूपेण सिद्धस्वरूपयोर्मेयमात्रोर्बाह्यतयाऽन्योन्य व्याप्ति स्वभावतया तत्स्वभाव परिग्रह सन्नाहरूपप्रमाणस्य द्वितीयकक्ष्यारोहित्वम् एतदुक्तं भवति। विश्रान्तावन्तर मुखयोर्मेयमात्रोरन्योन्य व्याप्त्याग्रहानुदयात् स्वास्थ्यमेवोभयव्याप्तिपदत्वादुभयात्मनः प्रमाणस्य वाह्यस्य तयोराग्रहोदये नाभिमुख्यं भजतोर्मध्ये प्रमाणपदाविर्भाव इति वेदितव्यम्। अतस्तृतीयपदत्वं बहिर्मध्य कक्ष्यारोहेण द्वितीयपदत्वं प्रमाणस्येति निष्कर्षः अक्षरार्थस्तुमानं तृतीयपदभागपि वाह्यतस्त्विति वाह्ये विशेष कथनादिदमन्तरेऽपि गम्यते। वाह्यतस्तुमध्यम्। अत्रोपपत्तिमाह। इदं प्रमाणं मेयमात्रोः विमिश्रणं अन्योन्य भावग्रहणमार्गत्वात्। सन्निपात पदं व्यामिश्रणपदस्य मध्यत्तोपपत्तिमाह। निखिलस्यवस्तुनोऽहोरात्रादेर्मिश्रं सन्ध्यारूपं पदं मध्यम पदे दृष्टं तस्य धाम्नः पदस्य द्वैरूप्यं द्विस्वभावत्वं शक्ति शिवात्मकतया स्त्रीपुमात्मक मेयमातृ संकरतया नपुंसकता चेतिवेदितव्यमिति शेषः।

भाषा टीका

स्पर्श वर्ग द्वारा अभिव्यञ्जित जाग्रत् दशा को प्रमाण पद कहा है अतः यह सूर्य का रूप है। प्रमाण पद मातृ एवं मेय पदों का मिश्रण है, अतः मेय एवं मातृ पदों की सिद्धि के अनन्तर प्रमाण पद की सिद्धि सम्पन्न होती है। इस प्रकार जाग्रत् का जीव दशा में भी तृतीय पद के रूप में औचित्य स्वयं सिद्ध है। अतः पूर्व निर्वचन के विपरीत जाग्रत् को यहाँ मध्य-पद

निरूपित करना शङ्कास्पद हो जाता है। इसका निराकरण इस सूत्र में किया गया है।

सूत्रकार निरूपित करते हैं कि यद्यपि प्रमाण तृतीय पद का भागी है तथापि बाह्यतया मेय एवं मातृ पदों का विमिश्रण होने से यह मध्यम पद है। समस्त वस्तुओं का विमिश्रण मध्यम पद में ही देखा जाता है अतः यह मध्यम पद है एवं द्वैरूप्य अर्थात् द्विस्वभावात्मक है इस कारण से इसमें नपुंसकता का निरूपण है।

यद्यपि प्रमाण तृतीय पद के रूप में स्वीकृत किये जाने योग्य है तथापि मध्य विश्रान्ति पद में (स्वप्न-मध्य) मेय एवं मातृ पदों का जो निराग्रह रूप से सिद्ध स्वरूप है वाह्यतया वह अपने अन्योन्य व्याप्ति आत्मक स्वभाव को ग्रहण कर लेता है, अतएव प्रमाण पद का स्वरूप भी अः अर्थात विसर्गात्मक हो जाता है जिसके कारण तृतीय पद के रूप में निरूपित प्रमाण पद का द्वितीय कक्षा में आरोहण हो जाता है। इसका तात्पर्य है कि विश्रान्ति पद के अन्तर्गत अन्तर्मुख मेय एवं मातृ पदों की अन्योन्य व्याप्ति का उदय नहीं होता है क्योंकि उभय व्याप्ति पदों का अन्तः में विलय हो जाता है। वाह्यतः जब मातृ एवं मेय पद अन्योन्य व्याप्ति-ग्रह के लिए अभिमुख होते हैं तब उभय पदों की व्याप्ति के मध्य उभयात्मक प्रमाण पद का आविर्भाव होता है। निष्कर्ष के रूप में लिखते हैं कि बाह्यतः मध्य कक्षा में आरोहण के कारण तृतीय पद स्थित प्रमाण द्वितीय पद ग्रहण करता है।

सूत्र में प्रयुक्त अक्षरों के अर्थ से भी यही स्पष्ट होता है। बाह्यतस्तु शब्द के प्रयोग विशेष से अभिप्राय है कि प्रमाण को अन्तः कक्षा में तृतीय पद के रूप में तथा बाह्य कक्षा में मध्यम पद के रूप में निरूपित किया है।

मेय – मात्र का विमिश्रण प्रमाण पद है। इस पद में मेय मातृभाव का तथा माता मेय भाव का ग्रहण करते हैं, अतः यह अन्योन्य भाव ग्रहण मार्ग होने के कारण सन्निपात पद है।

सिद्धान्ततः मिश्रपद मध्यम पद होता है जैसा कि समस्त वास्तु जगत में देखा जाता है। उदाहरण के लिए अहोरात्र का मिश्र रूप सन्ध्या है जो दिन एवं रात्रि का मध्य पद है। अतएव प्रमाता एवं प्रमेय के मिश्रित रूप प्रमाण पद को मध्यम पद निरूपित करना उचित है। मातृ-मेयात्मक इस मध्यम प्रमाण पद के दो रूप हैं अर्थात यह द्विस्वभावात्मक है। अतः प्रमेय

एवं प्रमाता का मिश्र स्वरूप शक्ति-शिवात्मक होने के कारण इस पद में स्त्री एवं पुरुष उभय के स्वभावों का सङ्कर (मिश्रण) है, जो स्त्री एवं पुरुष उभय के स्वभाव से युक्त होता है उसकी नपुंसक संज्ञा होती है, अतः इस पद को नपुंसक कहा है।

त्रयस्त्रिंशत् सूत्रम्

रश्मीननूदयति बिम्बमतः स्वरेषु
सर्गः सितांशुरणुबिन्दुरिनश्चकादौ।
यादौ शिखी महितबिन्दुरिति त्रिखण्ड्या
वर्णक्रमेण विदितं त्रिमहोमयत्वम्।।३३।।

व्याख्या

अथ स्वरादीनां प्रसिद्धं चन्द्रादिभावं सोपपत्तिकं प्रतिपादयति- रश्मीनित्यादि। बिम्बं सूर्यादीनां बिम्बं रश्मेरनु किरणानां पश्चातुदयति। अवयवोदयानन्तरमवयव्युदयः इति बहुमतमित्यर्थः। अतः तस्मात्कारणात् स्वरेषु विसर्गः सितांशुश्चन्द्रः अधिष्ठितश्चेति शेषः। अकारादि बिन्द्वन्तानां पञ्चदशः स्वराणां विसर्गापेक्षया प्रथमोच्चारणमेव प्रथमोदयोपलक्षकतया चन्द्रकलात्व-समर्पकम्। एवं चाकारादिबिन्द्वन्तपञ्चदशस्वराः कलाः, षोडशकलारूपो विसर्गश्चन्द्रस्वरूपमित्युपपादितम्। तथैव कादौ स्पर्शकदम्बके अणुबिन्दुः परिच्छिन्नबिन्दुः अन्योन्यान्तर्गतमेयमातृमिश्रस्वभावतया सापादिभान्त चतुर्वर्ण कलाद्वयरूपाङ्गाङ्गिरूपः इनः सूर्यो वाधिष्ठातेति शेषः। सूर्यस्य द्विस्वभावत्वादक्षरद्वयात्मकाः कलाः। अतः ककारादिनकारान्तैर्विंशत्या वर्णैर्दशकलाः सम्पद्यन्ते। तासां च पूर्ववदवयवकलात्वविवेकः। एकादश्या द्वादश्याश्च कलायादिस्वरूपाश्च तथा य र ल वादौ वर्ण गणे महितविन्दुः अनग्न्योपेतव्यः शिखी अनलः अधिष्ठातेति शेषार्थः पूर्ववत इति वर्णक्रमेण त्रिखण्ड्या मातृका-खण्डत्रयस्य त्रिमहोमयत्वं चन्द्रादि तेजस्त्रितयस्वभावत्वं विदितम्। अत्रायं सारो बिन्दु क्षकारादेः साम्प्रदायिकोपदेशः प्राक्प्रतिपादिते स्वप्नमध्यपदे मार्गइव अत्रापि जाग्रन्मध्यपदे मार्गे चैत्यचित्पर्याययोर्विसर्ग बिन्द्वोरन्योन्यनिलीनता लक्षण श्लेषः सुप्त्यादि पदत्रयावबोधके स्वरादि खण्डत्रये विभाव्यः। स्वरेषु तावदेकमात्रद्विमात्ररूपा बिन्दु विसर्ग कलाः प्रथम

द्वितीयोच्चारणोपलक्षितयोरन्तर्बहिः कक्ष्ययोः स्थिता। तथैव तत्पर्यन्ते समुच्चारण प्रयत्नोपलक्षितान्तर्बहि प्रसरणौ बिन्दुविसर्गौं तौ तदत्र जडविश्रान्ति पद सुषुप्तौ बहिर्विसर्गोऽन्तर बिन्दुरिति शक्तेरभ्यन्तरे शिव इति, चैत्य पर्याय शक्ति तत्वाद्यवस्थादयः। अथाजड विश्रान्तिरूप स्वप्नावबोधके व्यापकवर्गे य वर्गस्येषत्स्पृष्टता विषयत्वेन भेदप्रमातृकलात्वात विसर्गकलात्वं। शवर्गस्य विवृतता विषयत्वेनाभेदप्रमातृ बिन्दुकलात्व प्रवृत्ति निवृत्तिमेलनात्मनो व्यापक वर्गस्य उभय पर्यन्त गतौ मकारक्षकारौ भेदाभेद कलाधिष्ठातारौ विसर्ग बिन्दू। अत्रापि प्रथमद्वितीयोच्चारणोपलक्षिते अन्तर्बाह्यकक्ष्ये अतो बिन्दुगर्भे विसर्ग इति शक्तेरभ्यन्तरे शिव इत्यस्य स्वप्नात्मनो विश्रम पदस्य शिवतत्वतयाध्यवसायः अथान्योन्यग्रहणपदजागरावस्थाबोधके स्पर्शस्कन्धेकार्यज्ञेयरूपपृथिव्यादि-गन्धादिरूप दश विषय करण ज्ञान साधनरूप पाय्वादिघ्राणादि दशेन्द्रिय संयोगाद्दश कला निष्पत्तिः। तत्र विषयाणां जडत्वाद्विसर्गरूपता इन्द्रियाणाम जडत्वात् द्विन्दु रूपता। अत्र ग्रहणपदेकादीनां प्रथमोच्चारण रूपः पूर्व निपातोऽभ्यर्हित ग्राहकत्वमभिव्यक्ति द्वारा वेद्यतत्वस्य प्रथमाव्याप्तिमुपपादयति। सुप्तिस्वप्नयोस्तु विश्रान्ति पदत्वाद्बिन्दुविसर्गयोः पूर्व निपातोऽभ्यर्हित विश्रान्तिताभिन्नान्तरत्यन्त निलीनतामापादयति। इति निरवद्य प्रमेयं। स्पर्श पर्यन्ते पादिभान्त वर्ण चतुष्क सम्बन्धि द्विद्वि वर्ण निष्पन्नं कलाद्वयं विन्दुविसर्गरूपमधिष्ठातृ द्वयं प्रमाणकलानां मेयमातृ मिश्रतया द्विद्विवर्ण निष्पन्नत्वात्वर्णचतुष्केणाधिष्ठातृ तदङ्गबिन्दु विसर्ग कलाद्वयसिद्धिः। एवं स्थिते वेद्यस्य प्रथमव्याप्त्या खण्डत्रये विसर्गांश व्याप्तिः प्रवृत्ति पदे। अथ निवृत्तिपदे वेदकव्याप्त्यां खण्डत्रयेऽपि विन्द्वंशव्याप्तिरित्यनुसन्धेयम्।

भाषा टीका

सूत्रार्थ – रश्मियों के उदय के अनन्तर बिम्ब का उदय होता है। अतः स्वर वर्ग के अन्तर्गत व्यवस्थित विसर्ग चन्द्र है, क आदि वर्णों में उल्लिखित अणु अर्थात परिच्छिन्न बिन्दु सूर्य है एवं य आदि वर्ग में अधिष्ठित महित बिन्दु अग्नि है। इस प्रकार वर्णक्रम से विदित होता है कि स्वर, स्पर्श एवं व्यापक तीनों खण्डों में चन्द्र सूर्य एवं अग्नि का रूप विद्यमान है।

व्याख्या

स्वर आदि वर्गों में चन्द्र आदि का भाव प्रसिद्ध है। अन्यत्र भी कहा है

कि "त्रिखण्डं मातृका चक्रं सोम सूर्यानलात्मक"। इस सिद्धान्त का युक्ति युक्त प्रतिपादन यहाँ किया है।

बिम्ब अर्थात् सूर्य आदि की रश्मियों का उदय प्रथम होता है तदनन्तर बिम्ब का उदय होता है। अतः विद्वानों ने बहुमत से स्वीकार किया है कि अवयवों के उदय के अनन्तर अवयवी का उदय होता है। इस कारण से स्वर वर्ग के अन्तर्गत व्यवस्थित विसर्ग को चन्द्र के रूप में अधिष्ठित किया है। अकार से बिन्दु पर्यन्त पञ्चदश स्वरों का विसर्ग की अपेक्षा प्रथम उच्चारण नियत है; यह प्रथमोच्चारण प्रथम उदय का परिलक्षक है, जो पञ्चदश स्वरों में चन्द्र कलात्व का समर्पक है। अर्थात स्वर वर्ग के अन्तर्गत विसर्ग की अपेक्षा प्रथम उल्लिखित होने के कारण अ से बिन्दु (अं) पर्यन्त स्वर अवयव रूप पञ्चदश कलायें हैं। तात्पर्य यह कि पञ्चदश वर्णों में कलात्व की सिद्धि का कारण प्रथमोच्चारण है। इस प्रकार पञ्चदश स्वरात्मक अवयव रूप कलायें है तथा षोडषी कला विसर्ग है, जिसको बिम्ब अर्थात चन्द्र का स्वरूप निर्धारित किया है।

इसी उपर्युक्त सिद्धात के आधार पर स्पर्श एवं व्यापक वर्णों में कलाओं एव बिम्ब की व्यवस्था की चर्चा की गई है।

क आदि स्पर्श वर्णों के कदम्बक में अणु अर्थात-परिच्छिन्न बिन्दु को, श्लिष्ट मेय एवं मातृ की मिश्र स्वभावता के कारण, प से भ पर्यन्त चार वर्णों से निष्पादित अङ्गांङ्गि रूप कलाद्वयात्मक सूर्य के रूप में निरूपित किया है जो यहां अधिष्ठाता है।

मेय एवं मातृ का श्लिष्ट रूप होने के कारण सूर्य में द्विस्वभावात्मकता है, अतएव दो वर्णों से मिलकर सूर्य की एक कला का सम्पादन होता है। सूर्य की द्वादश कलायें निरूपित की गई हैं। क से न पर्यन्त बीस वर्णों में दो-दो वर्णों से मिलकर मातृ एवं मेयात्मक दश कलायें एवं प से भ पर्यन्त चार वर्णों से एकादशमीं एवं द्वादशमी प्रमाण कलाओं का निष्पादन होता है जो मेय एवं मातृ का मिश्र रूप होने से प्रमाणात्मक हैं।

उपरी प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार प्रथमोच्चारण प्रथम उदय का उपलक्षक है। यहां स्पर्श वर्ग में क से न पर्यन्त वर्णों के उच्चारण की प्रथम, तदनन्तर प से भ पर्यन्त वर्णों के उच्चारण की व्यवस्था है। अतः उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार क से न पर्यन्त वर्णों से निष्पादित दश कलायें

सूर्य के अवयव रूप हैं। तदनन्तर उल्लिखित प से भ पर्यन्त वर्णों से निष्पादित एकादश एवं द्वादश कलायें यादि स्वरूप अर्थात अन्तःस्थ सूक्ष्म रूप होने के कारण सूर्य की बिम्बात्मक कलायें हैं। इस प्रकार निष्पादित कलाओं का अधिष्ठाता सूर्य है।

उपर्युक्त सिद्धांत के आधार पर य र ल व आदि व्यापक वर्ग में महित बिन्दु अनिल है जो अधिष्ठाता है एवं तदनुसार बिम्बात्मक एवं कलात्मक रूपों का विवेचन है।

त्रिखण्डा मातृका चक्र के तीनों खण्डों में व्यवस्थित वर्णक्रम से सिद्ध है कि स्वर स्पर्श एवं व्यापक वर्णात्मक खण्डत्रय का चन्द्र सूर्य-अनलात्मक स्वभाव है।

सार रूप में तात्पर्य यह है कि प्राक्प्रतिपादित स्वप्न-मध्य-पद मार्ग में जिस प्रकार बिन्दु एवं क्षकार आदि के स्वरूप का उपदेश है उसी प्रकार जाग्रन्मध्य मार्ग में भी सुषुप्ति आदि अवस्थाओं के अवबोधक स्वर स्पर्श-व्यापक नामक खंडत्रय के अन्तर्गत चैत्य एवं चित् के पर्यायभूत विसर्ग एवं बिन्दु का अन्योन्य-श्लिष्ट स्वरूप विभाव्य है, जिसका विशेष विवेचन टीकाकार ने निम्न लिखित रूप में प्रस्तुत किया है।

(१) स्वर वर्ग के अन्तर्गत बिन्दु की कलाओं का एक मात्रात्मक एवं विसर्ग की कलाओं का द्विमात्रात्मक स्वरूप है। स्वर वर्ग के अन्तर्गत बिन्दु की कलाओं के बोधक अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, अं वर्णों का उच्चारण (अर्थात उल्लेख) प्रथम तदनन्तर आ आदि द्विमात्रिक वर्णों के उच्चारण की व्यवस्था है। एक मात्रिक वर्णों का प्रथमोच्चारण बिन्दु की कलाओं की अन्त:कक्षा में स्थिति का उपलक्षक है तथा द्विमात्रिक वर्णों का द्वितीय उच्चारण विसर्गकलाओं की वहिः कक्षा में स्थिति का उपलक्षक है। यहां जडविश्रान्ति पद सुषुप्ति के अन्तर्गत उपर्युक्त प्रकार से प्रतिपादित समुच्चारण प्रयत्नों से उपलक्षित, बिन्दु एवं विसर्ग के अन्तः एवं बाह्य प्रसारण से तात्पर्य है कि विसर्ग बाहिर तथा बिन्दू अन्त में स्थित है। अर्थात शक्ति के अभ्यन्तर में शिव व्याप्त है। इस प्रकार यह चैत्य की पर्याय भूत शक्ति तत्त्व की अवस्थायें हैं।

(२) द्वितीय पद अजड विश्रान्ति रूप स्वप्न का है जिसका व्यापक वर्ग अवबोधक है। व्यापक वर्ग के दो भाग हैं जिनमें प्रथम य वर्ग का उच्चारण (उल्लेख) होता है। य वर्ग ईषत्स्पृष्टि का विषय है अतएव यह

भेद पद है अतः यहाँ प्रमाता भेदात्मक होने से इसकी कलाओं को अभेदात्मक प्रमाता की कला के नाम से कहा गया है। व्यापक वर्ग का दूसरा भाग श वर्ग है जो विवृतता का विषय है अतः यह अभेद पद है जिसमें प्रमाता का अभेदात्मक रूप होता है अतः यहाँ अभेद-प्रमातृ-कलायें बिन्दु की कलायें हैं एवं पूर्व में कथित भेद प्रमातृ कलायें विसर्ग की कलायें हैं। इस प्रकार प्रवृत्ति एवं निवृत्त्यात्मक व्यापक वर्ग में मकार एवं क्षकार क्रमशः भेदाभेद कलाओं के अधिष्ठाता विसर्ग एवं बिन्दु का स्वरूप है।

यहाँ व्यापक वर्ग में प्रथम य वर्ग के उच्चारण की तथा द्वितीय श वर्ग के उच्चारण की व्यवस्था है। अतएव प्रथमोच्चारण से लक्षित य वर्गात्मक विसर्ग पद अन्तः पद है एवं द्वितीय उच्चारण से लक्षित बिन्दु बाह्य पद है। इसका तात्पर्य है कि इस अवस्था में बिन्दु के अन्तः में विसर्ग की स्थिति है।

अजड़ विश्रान्ति रूप स्वप्न अवस्था भेदात्मक है अतः इस अवस्था में भी शक्ति के अभ्यन्तर में शिव व्याप्त है तथापि विसर्ग की स्थिति बिन्दु के अन्तः में होने के कारण शिव तत्त्व की प्रधानता है अतः यह दशा अध्यवसाय अर्थात समुन्नत दशा है।

जड सुषुप्ति एवं अजड विश्रान्ति पद स्वप्न में बिन्दु एवं विसर्ग के स्वरूप का विवेचन करने के पश्चात अवजाग्रत में बिन्दु एवं विसर्ग की स्थिति का विचार करते हैं।

टीकाकार ने जाग्रत को अन्योन्य-ग्रहण-पद के नाम से व्यवहृत किया है। जाग्रत का अवबोधक स्पर्श स्कंध है जिसके अन्तर्गत क वर्ग पृथ्वी आदि पञ्चतत्वों का तथा च वर्ग गन्ध आदि पंच तन्मात्राओं का अवबोधक है तथा ट वर्ग कर्मेन्द्रियों का एवं त वर्ग ज्ञानेन्द्रियों का द्योतक है। पञ्च तत्त्वों एवं पञ्च तन्मात्राओं को विषय, कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों को करण नाम से सम्बोधित किया है। जाग्रत में करण द्वारा विषय का एवं विषय द्वारा करण का ग्रहण होता है अर्थात इन्द्रियों एवं विषयों में ऐक्य का आविर्भाव होता है। अतः जाग्रत को अन्योन्य ग्रहण पद कहा गया है। इस अवस्था में दस विषयों एवं दस करणों अर्थात ज्ञान की साधन भूत दस इन्द्रियों के योग से सूर्य की दस कलाओं की निष्पत्ति होती है। इस पद में विषयों को जड जडत्व के कारण विसर्ग रूप एवं इन्द्रियों को अजडत्व के कारण बिंदु रूप निरूपित किया गया है।

यहां ग्रहण पद में स्पर्श कदम्बक के अन्तर्गत विषयों के अवबोधक के वर्ग एवं च वर्ग का प्रथम उल्लेख है जिसको टीकाकार ने प्रथमोच्चारण रूप पूर्व निपात की संज्ञा दी है। यहां यह पूर्व निपात प्रधान है क्योंकि इसके द्वारा इन्द्रियों के ग्राहकत्व का अभिव्यञ्जन होता है। वेद्य अर्थात विषयों की प्रधानता के सूचक पूर्व निपात से सिद्ध होता है कि प्रथम व्याप्ति वेद्य तत्व की होती है तदनन्तर वेदक की व्याप्ति होती है। अर्थात प्रथम शिव का पशुत्व की ओर संसरण होता है तदनन्तर पशु का शिवत्व की ओर संसरण होता है। इस प्रकार क वर्ग एवं च वर्ग का स्पर्श कदम्बक में प्रथम उल्लेख करने का अभिप्राय है कि वेद्य तत्त्व प्रधान है अतएव इसकी व्याप्ति प्रथम होती है।

सुषुप्ति एवं स्वप्न, विश्रान्ति पद हैं इस कारण बिन्दु एवं विसर्ग का पूर्व निपात अभ्यर्हित है। अर्थात स्पर्श कदम्बक में क से न पर्यन्त वर्णों के प्रथम उल्लेख से इनके द्वारा अवबोधित बिन्दु एवं विसर्ग की प्रधानता प्रकट होती है तथा विश्रान्ति में बिन्दु एवं विसर्ग के अभिन्न एवं अत्यन्त शिलष्ट स्वरूप का आपादन होता है।

स्पर्श कदम्बक में क से न पर्यन्त वर्मों के उल्लेख के उपरांत प से भ पर्यंत वर्णों का उल्लेख है। प से भ पर्यंत वर्ण चतुष्क से सम्बन्धित दो दो वर्णों से निष्पादित दो कलायें बिन्दु एवं विसर्ग रूप हैं अतएव अधिष्ठातृ कलायें हैं। मेय एव मातृ पदों के मिश्रण से प्रमाण कलाओं का सम्पादन होता है। इस कारण प्रमाण कलाओं में दो दो वर्णों का योग है अतएव प से भ पर्यंत वर्णों की अङ्गभूत दो दो वर्णों से निष्पादित प्रमाणात्मक कलायें बिन्दु एवं विसर्ग रूप कलायें हैं। इस स्थिति में प्रवृत्ति पद के अन्तर्गत वेद्य की प्रथम व्याप्ति से तात्पर्य है कि खण्डत्रय में विसर्गांश की व्याप्ति है तथा निवृत्ति पद में वेदक की प्रथम व्याप्ति का अर्थ है कि खण्डत्रय में बिन्दु के अंश की व्याप्ति है।

चतुस्त्रिंशत सूत्रम्

खण्डक्रमेण शशिनो दहनाङ्गतोक्ता
तद्व्युत्क्रमेण जडभानु गुणत्वमग्नेः
खण्डेषु च क्रम विलोम जपेन चैत्य
चित्योः परस्पर पदाक्रमरीतिरुक्ता।। ३४।।

व्याख्या

खण्डत्रयं सप्रथमं स्वरादिपाठ तदनन्तरं व्यापकादि पाठश्च प्रथमं वेद्येन वेदकाक्रमणं पश्चाद्वैदकेन वेद्याक्रमणं बोधयतीत्युत्तरेण सूत्रेणाह खण्डक्रमेण इत्यादि। खण्डक्रमेण स्वरादि खण्डानां क्रमेणानुलोम पाठेन शशिनश्चन्द्रस्य दहनाङ्गता दहनं अङ्ग यस्येति विग्रहः तद्भावस्ततोक्ता तद्व्युत्क्रमेण तेषां खण्डानां व्युत्क्रमेण विलोम पाठेन अग्नेः जडभानु गुणत्वम्। जडभानुश्चन्द्रः गुणोऽङ्गंयस्य पूर्ववत् उक्तमित्यनुषञ्जनीयम्। खण्डानां क्रमव्युत्क्रमोक्त्या अकारादि क्षकारान्तवर्णानां क्रमव्युत्क्रमपाठोरिक्तरसति स्फुटेति स्फुटत्वाद्याह खण्डेषु चेति। खण्डेषु च क्रमविलोम जपेन क्रमः अनुलोमः विलोमस्तद्विपर्ययः तथा विद्येन जपेन चैत्य चित्योर्विसर्ग बिन्दोः परस्परमाक्रमरीतिः आक्रमः आकमणं रीतिः प्रक्रिया उक्ता अनुलोम जपेन चैत्येन चिदाक्रमणं विलोम जपेन चिता चैत्याक्रमणमिति योजना।।३४।।

भाषा टीका

मातृका के खण्ड त्रय के पाठ में प्रथम स्वर तत्पश्चात् स्पर्श वर्ग एवं व्यापक वर्ग का क्रम निर्धारित है। इसको अनुलोम पाठ कहा गया है। जब इसके विपरीत व्यापक वर्ग से पाठ का प्रारम्भ होता है तब स्पर्श एवं स्वर वर्गों का पाठ व्यापक वर्ग के पाठ के पश्चात् निर्धारित होता है। यह विलोम पाठ कहा गया है। अनुलोम पाठ में स्वर वर्णों के प्रवाह का अन्तिम समापन व्यापक वर्ग में होता है। स्वर वर्ग चन्द्र का रूप है तथा व्यापक वर्ग अग्नि का रूप है। अत: निष्कर्ष निकलता है कि अनुलोम पाठ में चन्द्र अग्नि के अङ्ग के रूप में परिणत हो जाता है। विलोम पाठ में व्यापक वर्ग का अनलात्मक रूप स्वर-वर्ग-गत चन्द्र के अङ्ग के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

इस प्रकार मातृका-खण्ड-त्रय के स्वाभाविक अनुलोम तथा विलोम पाठ के द्वारा चैत्य एवं चित् अर्थात् विसर्ग एवं बिन्दु के अन्योन्य अतिक्रमण का अभिव्यञ्जन होता है। अनुलोम क्रम से पाठ में चैत्य के द्वारा चित् का अतिक्रमण व्यञ्जित होता है अर्थात् प्रथम चैत्य के प्राधान्य में चित् तत्त्व चैत्य के अन्तर्गत व्याप्त रहता है। यहां इसको चैत्य के द्वारा चित्त का अतिक्रमण कहा गया है। विलोम पाठ में चित् का प्राधान्य होता है अत: यहां चित् के अन्तर्गत चैत्य का विलय हो जाता है। इसको चित् के द्वारा चैत्य पद का अतिक्रमण कहा गया है।

पञ्चत्रिंशत् सूत्रम्

स्वप्नश्च जाग्रदपि वासरपूर्वयामौ
तुर्यं पदद्वयवदुत्तर याम युग्मं
सुप्तिस्तुरीय लयभू प्रथमं क्षपार्ध
स्वप्न प्रजागरदशा लयभूर्द्वितीयम्।।३५।।

इति श्री मातृका चक्रविवेके तात्पर्य विवेकः प्रथमः खण्डः।

व्याख्या

अथ स्वप्न मध्यमे मार्गे दशानां पुनः पुनरावृत्त्या कालरूपतौ व्यवस्थापयति स्वप्नस्य इत्यादि। अहोरात्र रूपः खलुकालः अष्टयामात्मकः। तत्र स्वप्नश्च जाग्रदपि वासरस्य प्रथमयामः स्वप्नः सुषुप्ति रूपिण्या रात्रेरनन्तरं प्रवर्तमानत्वात्। वासरस्य द्वितीय यामो जाग्रत्स्वप्नानन्तरं प्रवर्तमानत्वात् ग्राहक रूपेण प्रमाणरूपभेद स्फुरण परमावधित्वाच्च पदद्वयवत् निवृत्ति जाग्रत् स्वप्नरूप पदद्वययुक्तं तुरीयं उत्तरयामयुग्मं वासरस्येति सम्बन्धः। तत्र तुर्य जाग्रत् तृतीय यामभेदः संसारस्य निवृत्ति प्रारम्भ रूपत्वात् तुर्य स्वप्नश्चतुर्थ यामः भेद रवेः रूप जाग्रतो भेद-संतापस्यातिमात्र निवृत्तेः। अथ तुरीयलयभूः उक्त निवृत्ति जाग्रत् स्वप्न रूप तुरीयता-दशा-विश्रान्ति भूमिः सुप्तिः।

सुप्तिः खलु भेदाभेद रूपाणां संसारदशानां विश्रमपदं कारण रूपत्वात्। अतस्तुरीय जाग्रत् विश्रान्तपदं सुषुप्ति रूपिण्याः रात्रेः प्रथमयामः। तुरीय स्वप्न विश्रान्ति पदं द्वितीययाम इति तुरीयलय भूः सुप्तिः प्रथमं क्षयार्धं यामद्वयं स्वप्न जागर दशालयभूः सुप्तिः। द्वितीयं क्षपार्ध स्वप्न विश्रमपदं तृतीययामो जाग्रद्विश्रम पदं रात्रि चतुर्थयाम इति सम्यगतुभवतां हृदयङ्गम प्रमेयतया मन्त्रार्थं प्राणभूतत्वाच्चै-तदुपदिष्टम्।

अथ प्रकरणपरिसमाप्ति वाच्य ग्रन्थस्वोपपत्तिमन्त्रामोद्देश्यमुपदिशन्नेतरस्य ग्रन्थप्रमेयाङ्गतां स्फुटीकरोति इतीत्यादि। अत्र मातृका शब्दस्य तन्त्रेण द्विरुक्ति-रवगन्तव्या तेन मातृका च मातृका चक्रं चेति लभ्यते। तयोर्विवेकोऽत्रेति विग्रहः। मातृका मन्त्रो मातृकायाश्चक्रं मातृका चक्रं मातृका वर्ण सन्निवेश वशेन सम्भूतं चक्रं मातृकैव चक्राकारेण सन्निविष्टेति भावः तथाहि मन्वस्त्रे अकाराद्यौकारान्त चतुर्दश स्वरेषु बिन्दु कलानां सप्तानामेकभागे सन्निवेशः विसर्ग कलानां

सप्तानामन्यभागे चक्रमध्ये प्रतिकोणे कोणाभ्यन्तर भाग विभावितेषु चतुर्दशसुदलेषु दशमूल विभावित वृत्ताकार दल तत्कर्णिकावृत रूप दल सहितेषु षोडशसु षोडशदल पद्मरूप बिन्दोविसर्ग चन्द्रस्तेष्वेवफ दलेषु एकैक दल व्यवहित दलाष्टक संभविताष्ट दल पद्म बिम्बो: बिन्दु वन्हिरिति बिन्दु विसर्ग वर्णयोः सन्निवेशः। विसर्ग व्याप्तेः प्राधान्ये विसर्गस्य वहिर्निवेशः बिन्दोस्तदन्तर व्याप्यत्वेनाभिमतत्वात् बिन्दुव्याप्तौ बिन्दु पदे बाह्यत्वाभिमानः विसर्ग पदेऽन्तरभिमान इत्यभिमानस्योभयाकार सम्भवादनवद्यम्।

दशारयुग्मे विषयेन्द्रियरूप विंशतिवर्णानां विंशतिकोमेषु यथाभिमुख्यं सन्निवेशः वहिर्दशारवाह्ये विदिक्चतुष्टयोपलक्षित तमर्म चतुष्टयस्य प्रतिपदमन्तर्भाग विभावित त्रिकोण चतुष्टये प्रकृत्यादिगणाऽन्त तत्वरूपाणां पादि भान्तानां सन्निवेशः। अथवा वेद्यवेद्करूपे कादिभान्तवर्ण कदम्बके कादयो द्वादशवर्णाः वेद्यरूपाः अवरोह क्रमेणभकारप्रभृति द्वादश वर्णाः वेदक रूपाः तेषां यथाक्रम समन्वयेन द्वादश कला निष्पत्तिः। तत्र प्रथमतः कलाद्वयं विम्बरूपं इतराः कला अवयवभूता कोणेषु सन्निवेश्याः। वेद्यवेदक व्याप्ति प्रक्रिया पूर्ववत्। अष्टकोणे एकतो भागे चतुर्षु कोणेषु शादिहान्त वर्ण चतुष्क विन्यासः। यादि चतुष्क मूले शादि चतुष्कान्ते च त्रिकोण बिन्दुरूप चक्रद्वये गुणत्रयाबृत गुणोत्तीर्ण जीवशिवयोः मकार क्षकारयोः सन्निवेशः तयोरन्योन्य व्यापकतयाभिमुख्येन चक्राद्यन्तोपलक्षके चक्र-मध्ये विनिवेश इत्यनवद्यम्। इति वर्ण सन्निवेश प्रक्रिया किञ्चिदुन्मिलिता मन्त्रार्थानुरोधेन मतिमद्भिर्वर्ण सन्निवेशात् चक्रे विशेषवत्तया कृतोऽपि अर्थ विशेषाभावात् प्रतिपादितेन सवर्णानुरूपेणानुरुध्यतइत्यनवद्यम्। तस्मात्रव त्रिकोण चक्रं मातृका चक्रमिति रहस्यम् ग्रन्थोऽयं तद्विवेकरूपः इदं च प्रकरणं ग्रन्थतात्पर्यप्रमेयमित्युक्तमिति शिवम्।।३५।।

विद्यामातृविवेचने पुरभिदः प्रज्ञापि सम्मुह्यतीत्यथीद्दशारयुतद्विदशार चतुर्विंशतिदल विवेके तन्नेत्यनेन कला द्वादशकेरवेर्दशावयवकला सद्विस्वरूपकले वेदितव्ये अष्टकोणे चैवमष्टदल विवेके वन्ह्यवयवकला।

भाषा टीका

सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत, क्रम से स्वप्न दशा की स्थिति मध्य में है। अतः दशाओं के इस क्रम को स्वप्न-मध्य मार्ग कहा गया है।

स्वप्न-मध्य मार्ग में पुन:पुन: आवृत दशाओं के काल की व्यवस्था का विवरण इस सूत्र में प्रस्तुत है।

अहोरात्र रूप काल के आठ याम होते हैं। सुषुप्ति रूपी रात्रि के अनन्तर स्वप्न का प्रवर्तन होता है अत: दिवस का प्रथम याम स्वप्न है। स्वप्न के पश्चात जाग्रत् दशा का प्रवर्तन होने के कारण तथा ग्राहक रूप में प्रमाणात्मक भेद-स्फुरण की चरम सीमा होने के कारण जाग्रत दशा दिवस का द्वितीय याम कहा गया है। इस प्रकार स्वप्न एवं जाग्रत दिवस का पूर्वार्ध है।

तुरीय दशा दिवस का उत्तरार्ध है। तुरीय दशा निवर्तमान जाग्रत तथा स्वप्न से युक्त होती है। अत: उपर्युक्त दिवस के पूर्वार्ध के दो पदों के समान ही तुरीय दशा में दिवस के उत्तरार्ध के दो युग्म हैं, जिनमें से तुर्य-जाग्रत् दशा, संसार की निवृत्ति का प्रारम्भिक रूप होने से दिवस का तृतीय याम है तथा तुर्य-स्वप्न चतुर्थ याम।

तुर्य-जाग्रत् के प्रवर्तन में भेदात्मक रवि की स्वरूप-भूत जाग्रत् दशा के भेदात्मक संताप की अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है अत: इसके पश्चात् उदित निवर्तमान-तुर्य-स्वप्न दशा दिवस का चतुर्थ याम प्रतिपादित किया गया है।

उपर्युक्त प्रकार से प्रतिपादित निवर्तमान जाग्रत् एवं स्वप्न दशाओं से युक्त तुरीय दशा की लय भूमि सुषुप्ति है। सुषुप्ति दशा, समस्त दशाओं की कारण होने से, भेदाभेद रूप संसरणात्मक दशाओं का विश्राम पद है अत: तुर्य-जाग्रत रूप विश्रान्ति पद सुषुप्ति रूपी रात्रि का प्रथम याम तथा तुर्य-स्वप्न रूप विश्रान्त पद द्वितीय याम है। इस प्रकार तुरीय दशा की लय भूमि सुषुप्ति के दो याम रात्रि के प्रथमार्ध हैं।

रात्रि के उत्तरार्ध के दो यामों में सुषुप्ति के अन्तर्गत स्वप्न एवं जाग्रत दशाओं का लय रहता है। इस उत्तरार्ध में स्वप्न के विश्रान्ति का पद तृतीय याम है तथा जाग्रत् का विश्रान्ति-पद चतुर्थ याम है।

सम्यक् अनुभव तथा प्रमेय को पूर्ण रूप से हृदयङ्गम करने के पश्चात् मन्त्रार्थ के प्राण भूत इस सिद्धान्त का उपदेश किया गया है। आगे प्रकरण की समाप्ति के कारण वाच्य ग्रन्थ की उपपत्ति एवं ग्रन्थ के नाम के उद्देश्य का निरूपण किया जाता है।

तन्त्र में मातृका शब्द का दो प्रकार से विचार किया गया है। मातृका

से तात्पर्य मातृका शक्ति एवं मातृका चक्र दोनों हैं। मातृका-चक्र-विवेक से मातृका एवं मातृका-चक्र उभय का विवेक ग्राह्य है। मातृका अर्थात् वर्णों के सन्निवेश से संभूत चक्र को मातृका-चक्र नाम से कहा गया है अथवा अन्य प्रकार से यह कहा जा सकता है कि मातृका ही चक्र के आकार में सन्निविष्ट है। (मातृका चक्र को श्री चक्र के रूप में प्रदर्शित किया गया है जिसका विवरण टीकाकार ने निम्न प्रकार से किया है।)

श्री चक्र के अन्तर्गत मन्वस्र अर्थात चतुर्दशार हैं। अकार से औकार पर्यंत चतुर्दश वर्णों से चतुर्दशार का चित्रण है। इन चौदह वर्णों में से अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ सात वर्ण बिन्दु कला के द्योतक हैं तथा शेष सात वर्ण आ, ई, ऊ, ॠ, लॄ, ऐ, औ विसर्ग कला के द्योतक हैं, जो कोणों के आन्तर भाग में विभाजित चतुर्दश दल के नाम से कहे जाते हैं।

श्री चक्र में षोडश दल पद्म वृत्ताकार प्रदर्शित हैं। षोडश दल चक्र के अन्तर्गत चतुर्दशार के चौदह वर्ण तथा कर्णिका से आवृत्त वर्ण द्वय अं, अ: के सहित सोलह वर्ण हैं इन सोलह वर्णों में आठ वर्ण बिन्दु रूप हैं जो पृथक-पृथक दल के नाम से व्यवहृत हैं। आठ वर्णों के समूह को विन्दु-आत्मक अष्ट-दल-पद्म बिम्ब कहा जाता है जो वह्नि रूप है। अन्य आठ दल विसर्ग हैं जो चन्द्र रूप हैं। इस प्रकार षोडषार में चतुर्दशार के चौदह वर्णों के साथ विन्दु एवं विसर्ग का सन्निवेश है।

जब विसर्ग-व्याप्ति का प्राधान्य होता है तब अन्त: में बिन्दु का सन्निवेश होने के कारण विसर्ग का वाह्य निवेश होता है तथा विन्दु-व्याप्ति का प्राधान्य होता है तब विन्दु का भान वाह्य कक्षा में होता है एवं विसर्ग की स्थिति विन्दु के अन्त: में होती है। इस प्रकार श्री चक्र के अन्तर्गत विन्दु एवं विसर्ग उभय पदों का बाह्य एवं अन्त: में प्रदर्शित-सन्निवेश युक्ति-युक्त है।

क वर्ग एवं च वर्ग तथा ट वर्ग एवं त वर्ग के बीस वर्णों से युक्त दो दशार चक्रों का श्री चक्र के अन्तर्गत चित्रण है। क वर्ग एवं च वर्ग से प्रदर्शित दशार पञ्चभूत एवं पञ्च तन्मात्राओं का द्योतक होने से विषय रूप है। ट वर्ग एवं त वर्ग से प्रदर्शित दशार इन्द्रिय रूप है। इस प्रकार दशार-युग्म में विषय एवं इन्द्रियों के द्योतक वर्णों की मुख्यता की दृष्टि से बीस वर्णों का बीस त्रिकोणों में सन्निवेश है।

बाह्य दशार के बाहिर दिशा में एक चतुष्कोण है जिसमें प, फ, ब,

भ वर्णों का सन्निवेश है। प्रत्येक पद के अन्त: भाग में एक-एक त्रिकोण विभावित है। चतुष्कोण में प, फ, ब, भ वर्ण क्रमश: प्रकृति, अहङ्कार, बुद्धि तथा मन के द्योतक हैं।

दशार युग्म एवं चतुष्कोण का उपर्युक्त तात्पर्यार्थ परम्परागत है किन्तु टीकाकार के मत में इसका विकल्पार्थ भी सम्भव है। ककार से भकार पर्यंत स्पर्श वर्ग के अक्षर संख्या में चौबीस होते हैं। जिनमें से अनुलोम क्रम से क से प्रारम्भ कर ठकार पर्यंत बारह वर्ण वेद्य रूप हैं तथा अवरोह क्रम से भकार से प्रारम्भ कर डकार पर्यंत बारह वर्ण वेदक रूप हैं। वेद्य वेदक रूप वर्णों के यथा क्रम अन्वय से दो-दो वर्णों को मिलाकर बारह कलाओं की निष्पत्ति होती है। (इस प्रकार क, भ, ख, ब, ग, फ आदि क्रमश: द्वादश कलाओं का आविर्भाव होता है।) इनमें से प्रथम दो कलायें विम्ब रूप हैं, तथा शेष दश कलायें अवयव रूप हैं जिनका कोणों में सन्निवेश किया जाना उचित हैं, जिनमें वेद्य वेदक क्रिया पूर्ववत अभीष्ट है।

श्री चक्र के अन्तर्गत मध्य में अष्ट कोण चित्रित हैं। इनमें से एक भाग के चार कोणों में यकार से लकार पर्यंत चार वर्णों का विन्यास है तथा शेष चार कोणों में शकार से हकार पर्यंत चार वर्णों का सन्निवेश है। यादि चतुष्क के मूल में तथा शादि चतुष्क के अन्त में त्रिकोण एवं विन्दु रूप के चक्रों का चित्रण है, जिनमें गुण त्रय से आवृत्त जीव के रूप के द्योतक मकार तथा गुणोत्तीर्ण शिव के रूप के द्योतक क्षकार का सन्निवेश है। जीव एवं शिव अन्योन्य व्यापक हैं अत: मुख्यता के आधार पर इन चक्रों का अन्त तथा मध्य में निवेश प्रदर्शित है। वर्ण सन्निवेश की यह प्रक्रिया अनवद्य प्रतीत होती है अत: इस प्रकार किञ्चित उन्मीलन किया गया है।

विद्वानों ने चक्र में वर्णों के सन्निवेश के आधार से अनुरोध पूर्वक यद्यपि विशेषतया मन्त्रार्थ किया है तथापि अर्थ विशेष का अभाव है अतएव सवर्णानुरूप प्रतिपादन की उपर्युक्त प्रक्रिया ही अनवद्य है। इस कारण नव त्रिकोण चक्र ही मातृका चक्र है यह रहस्य है। यह ग्रन्थ मातृका चक्र के विवेक का स्वरूप है तथा यह प्रकरण ग्रन्थ के तात्पर्य का प्रमेय है।

मातृका विद्या के विवेचन में इन्द्र की प्रज्ञा भी मोहित हो गई किन्तु यहां दशारद्वय तथा चतुर्विशति दल के विवेक में यह कथन सत्य नहीं है। रवि की द्वादश कलाओं में से दश कलायें रवि की अवयव कलायें हैं जो

विश्व रूप हैं। अष्टकोण के अन्तर्गत अष्टदल के रूप में वह्नि की अवयव कलायें प्रदर्शित हैं। इस प्रकार कलाओं का विवेक है।

चक्रं त्रित्रिककोंणविन्द्ववयवं यत्संन्निवेशो वह्नि-
र्मन्वस्रे प्रथितस्तदत्र न हि मे गर्हा प्रमादे गिराम्।
मातुर्मन्त्र तनोर्मिथश्च समये मय्यन्यतो दुर्लभा,
स्वाङ्ग क्रीडन योग्यता वितरणाद्यत् पुत्रकोऽहंकृतः।।

शिवानन्देन मुनिना देशिकादेश वर्तिना।
व्याख्यातं मातृकाचक्रविवेके प्रथमं पदम्।।

अनुवाद

विन्दु के अवयव रूप नवत्रिकोणात्मक श्री चक्र में चतुर्दशार के बाहिर (चतुष्कोण का) जो सन्निवेश दर्शाया गया है वह प्रमाद मात्र नहीं है। समय सिद्धान्त में प्रभाता एवं मन्त्रावयव (चतुष्कोण एवं दशार द्वय) के एकीकरण के सिद्धान्त का आविष्कार मैंने उसी प्रकार किया है जिस प्रकार अपने अङ्गों की क्रीडा की योग्यता के वितरण से पुत्र की उत्पत्ति होती है। यह सिद्धांत अन्यत्र उपलब्ध नहीं है, किन्तु यह मेरी वाणी का प्रमाद मात्र नहीं है अतः निन्दा का विषय न होकर स्तुत्य है।

गुरु के आज्ञावर्ती मुनि शिवानन्द ने मातृका-चक्र-विवेक के प्रथम पद की यह व्याख्या प्रस्तुत की है।

इति श्री स्वतन्त्रानन्दनाथ विरचित संस्कृत व्याख्या एवं कृष्णानन्द विरचित हिन्दी व्याख्या सहित श्री मातृकाचक्र विवेक का तात्पर्य-विवेक नामक

प्रथम खण्डः



श्रीमातृकाचक्र-विवेकः

द्वितीय खण्डः

अथ द्वितीय खण्डः

प्रथमं सूत्रम्

माया बलात्प्रथम भासि जडस्वभावं
विद्योदयादथ विकस्वर चिन्मयत्वम्।
सुप्त्याह्वयं किमपि विश्रमणं बिभाति
चित्रक्रमं चिदचिदेकं रसस्वभावम्।।१।।

व्याख्या

अथ मन्त्रखण्डानां दशाचतुष्टयाभिधानप्रक्रियां प्रतिपदमारभमाणस्तत्रादौ जीवशिवयोर्विश्रान्तिपदत्वेन सर्वसंसारबीजरूपतया चाभ्यर्हितां सुषुप्ति तदवच्छेदके स्वरखण्डे वितत्य विवरिष्यन् जडाजड रूपया सुप्तिरेकपदे सामरस्येन स्थिति चमत्कारमभिष्टौति मायेत्यादि। चिदचिदेक रसस्वभावे चिदचितोस्तत्वयोर्य एकोरसः गजबृषभचित्रन्यायादन्योन्याविरोधेन एकपदानु-प्रविष्टोभय तत्त्वभध्य सम्भूतो रसः। यत्र रसेजडस्याजडस्य च तत्त्वस्य प्रत्येकं भाग करणं विना सर्वतएव स्वरूपानुप्रवेशः यदैकस्मिंश्चित्रविशेषे गजबृषभयोः प्रत्येकमनुप्रवेशो भाग करणं विनैव साकल्येन तद्वत्। सोऽयं जडाजडमध्यैक रसः स्वभावः स्वरूपं यस्य तत्सुप्त्याह्वयं सुप्तिरिति व्यवह्रियमाणं किमप्यनिर्वचनीयं अनुभवैक वेद्यमितियावत्। विश्रमणं विश्रान्तिः बिभाति सर्वस्यानुभवविपयंस्फुरति। एतत्सुषुप्ति विश्रमणं विशेषणमुखेन स्फुटं व्युत्पादयति। चित्रेति मायेत्यादि च। चित्रस्यालेख्य विशेषस्य गजबृषम श्लेषकादेः क्रम एव क्रमः प्रकारो यस्य तत्। एकस्मिन्नेव सुप्तिविश्रमे जडाजड पर्याययोर्विसर्ग बिन्दोः प्रत्येक सर्वतोऽनु प्रवेश इति। चित्र विशेष सादृश्यं सुप्तिदशाया जडत्वं तावत्सर्वस्यानुभव सिद्धत्वात् सम्प्रतिपन्नम्। अजडत्वं तु एतावन्तं कालं सुखमहमस्वाप स्ममिति सुप्त्यन्त सम्भावित सुषुप्ति सुखानुवादेन गम्यते। चित्र शब्दस्य अद्भुतार्थत्वमप्यवगन्तव्यम्। एकस्यां सुप्तौ अन्योन्य विरुद्ध

जडाजड सामरस्यमद्भुतमिति। एवं सुप्तिविषययोः जडाजड प्रतीत्योर्मध्ये जडप्रतीतेः प्राथम्यमुपपादयति। मायेति। मायैव विद्यातोबलीयसी बाह्यकक्ष्या विलसन्शीलतया पाश्चात्य स्फूर्तिः स्फूर्तिप्राथम्यलक्षणं बलीयस्त्वं न लभते। उत्पत्तौ तु विद्याया एव प्राथम्यं न मायाया अतो माया बलात् गुप्ति विश्रमण प्रथमभासे जडस्वभावे। अथ विद्योदयादविक स्वर चिन्मयत्वं चित्सामरस्येन निस्पन्दस्येव तत्वस्य युगपज्जडाजडान्योन्य व्यापि रूप स्पन्दं चमत्कारश्चेति। सामरस्याज्जडाजड पर्यायाणिमिच्छाज्ञानक्रियानां यामलत्वमेव सिद्धान्ततया मन्त्रेनोच्यत इत्यवगन्तव्यम्अतः सुप्त्यादि दशासु सामरस्यं स्पन्दद्वयं च यामलं च सर्वतो विभावमीयम्। इच्छा ज्ञान क्रिया पर्यायस्य सामरस्य स्पन्दद्वयात्मनः पदत्रयस्य यामलत्वादेव एतदनन्तरमेतदिति न क्रमो नियतः अतएव तत्त्रितय बोधकानां मन्त्रखण्डानां न पौर्वापर्थक्रमः। तदात्मनो महाचक्राङ्ग भूत चक्र त्रितयस्य च न क्रम नियम इति सर्वत्र स्कन्ध त्रयस्य प्रत्येकं प्राधान्याभिव्यक्तयर्थ तत्त्वदाद्यावर्त प्रक्रिया प्रागुपपादिता।।१।।

भाषा टीका

सूत्र सार -

चित्र क्रम के समान स्वभावतया एक रस चित् एवं अचित् से युक्त सुषुप्ति नामक विश्रमण के अन्तर्गत माया के बल से इसके जड स्वभाव का भास प्रथम होता है तदनन्तर विद्या के उदय होने पर चिन्मयता का भास होता है।

व्याख्या

मातृका मन्त्र के खण्ड त्रय के स्वरूप का सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत् तुर्य एवं तुर्यातीत अवस्थाओं में निरूपण करने के हेतु, सर्व प्रथम, शिव एवं जीव की विश्रान्ति अवस्था होने के कारण सर्व संसार की बीज रूप सुषुप्ति का उसके अवच्छेदक स्वर खण्ड में विस्तृत विवरण, तथा एक सुषुप्ति पद में ही इसके जड एवं अजड रूपों की सामरस्यात्मक स्थिति के चमत्कार की स्तुति इस सूत्र में प्रस्तुत की है।

जिस प्रकार एक ही चित्र के अन्तर्गत, विभागीकरण के बिना, गज एवं वृषभ प्रत्येक का चित्रण अनुप्रविष्ट किया जाता है उसी प्रकार अन्योन्य

विरोध के बिना, अविभक्त चित् एवं अचित् उभय तत्त्वों में सम्भूत रस एकमात्र सुषुप्ति पद के अन्तर्गत अनुप्रविष्ट है। इस प्रकार जड एवं अजड तत्त्वों के एक रसात्मक स्वभाव से युक्त सुषुप्ति नाम से व्यवहृत, अनिर्वचनीय एवं अनुभव गम्य विश्रमण का अर्थात् विश्रान्ति पद का स्फुरण होता है जो सब के अनुभव का विषय है।

टीकाकार ने विश्रमण पद के विशेषणों का स्फुट व्युत्पादन किया है। विश्रमण पद का एक विशेषण चित्र-क्रम है, इस विशेषण के द्वारा गज-वृषभ के श्लेश के क्रम के समान एक ही सुषुप्ति रूप विश्रांति पद में जडाजड के पर्याय भूत विन्दु एवं विसर्ग प्रत्येक का सर्वतः अनुप्रवेश दर्शाया है। इसके अतिरिक्त विशेषण के रूप में प्रयुक्त चित्र पद के जडत्व के सादृश्य से सुषुप्ति-पद जडत्व की अभिव्यंजना होती है।

प्रसुप्त अवस्था में "मैं सुख से सोया'' इस प्रकार की अनुभूति का कथन सुषुप्ति के अन्त में किया जाता है। अतः उक्त प्रकार से अभिव्यक्त अनुभूति के कारण सुषुप्ति के अन्तर्गत व्याप्त अजडत्व अभिव्यञ्जित होता है। चित्र शब्द का 'अद्भुत्' अर्थ भी है अतः टीकाकार ने विशेषण के रूप में प्रयुक्त चित्र शब्द का अद्भुत अर्थ भी किया है। एक ही पद सुषुप्ति के अन्तर्गत अन्योन्य विरोधी जड एवं अजड तत्वों का सामरस्य ही अद्भुतता अर्थात् वैचित्र्य है।

अब सुषुप्ति के अन्तर्गत जडत्व की प्रतीति की प्राथमिकता का निरूपण करते हैं। वाह्य कक्षा में विलसनशील होने के कारण माया की स्फूर्ति विद्या की स्फूर्ति के अनन्तर होती है। अतः प्रथम स्फूर्ति अर्थात् उत्पत्ति के कारण विद्या को बलवती निरूपित करना उचित था; किन्तु ऐसा न करते हुए सूत्रकार ने विद्या की अपेक्षा माया को बलवती निरूपित किया है। इसका कारण निर्धारित करते हुए टीकाकार लिखते हैं कि सिद्धान्ततः प्रथम स्फूर्ति को वलीयता का लक्षण स्वीकार नहीं किया जा सकता। वाह्य स्फुरण में माया के अभ्यन्तर में विद्या तत्त्व व्याप्त रहता है। अतः केवल प्रथम स्फूर्ति के कारण विद्या को माया की अपेक्षा बलवती प्रतिपादित करना उचित नहीं है। बाह्य प्रसार एवं प्रथम अवभास के कारण विद्या की अपेक्षा माया बलवती है। अतएव सूत्रकार का यह है कथन कि माया के बल से सुषुप्ति के जड स्वभाव का भास प्रथम तदनन्तर विद्या के उदय से चिन्मयता का बोध होता है, युक्ति युक्त है। यहाँ चमत्कार यह है कि चित् के सामरस्य के कारण,

सुषुप्ति के अन्तर्गत, एकसाथ जड एवं अजड अन्योन्य व्यापी स्वरूप का निस्पन्द होता है।

जड एवं अजड की पर्यायभूत इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया में सामरस्य के कारण जो यामलत्व का आविर्भाव होता है उसका बोध भी सिद्धान्ततः मातृका-मन्त्र के द्वारा होता है। अतः सुषुप्ति आदि दशाओं में सर्वतः सामरस्य, स्पन्दद्वय एवं यामलत्व विभावनीय है। सामरस्य के कारण स्पन्द द्वय (जड-अजड) के पर्यायवाची इच्छा-ज्ञान-क्रिया में यामलत्व के आविर्भाव से पौर्वापर्य क्रम नियत नहीं है। अर्थात् ज्ञान के अनन्तर क्रिया एवं क्रिया के अनन्तर इच्छा इस प्रकार का क्रम नियत नहीं है। इसी कारण इच्छा-ज्ञान-क्रिया के बोधक मन्त्र खण्डों में भी कोई पौर्वापर्य क्रम नियत नहीं है। अतएव खण्डत्रयात्मक महाचक्र के अङ्गभूत चतुर्दशार आदि चक्रत्रय में भी किसी प्रकार के क्रम का नियम नहीं है। इस प्रकार स्कन्धत्रय के प्रत्येक स्कन्ध (सुषुप्ति आदि में) की प्रधानता को अभिव्यक्त करने के हेतु इनके आवर्तन की प्रक्रिया का पहिले ही प्रतिपादन किया जा चुका है।

द्वितीयं सूत्रम्

माता नभःक्षिति विभिश्र पदं प्रमाणं
वायुः शिखी च सलिलं च मही च मेयम्
ज्ञानात्म पूर्व पठितं युगलत्रयेऽपि
पश्चादुदीरित मिहाभिमतं क्रियात्म॥२॥

व्याख्या

अथ स्वरवर्ण प्रस्तावे सर्ववर्णानां सामान्यभूत भूतपञ्चकाभिद्यायकत्वं व्युत्पादयिष्यन् भूत पञ्चकस्य सकलसंसारकलापभूत प्रमातृ प्रमाणप्रमेयात्मतां व्युत्पादयति। मातेत्यादि। नभः क्षित्योर्विमिश्रपदंमाता देहात्मनोः पृथिव्याकाश-रूपयोरूभयोरपि प्रमात्राभिमान विषयत्वात्। वायुः शिखी च उभय प्रमाणं। शिखीवह्निः सलिलं च मही चोभयं प्रमेयं देहात्मनोरन्यतरस्मिन् प्रमातृत्वाभिमाने इतरस्य प्रभेयत्वमिति। पृथिव्याकाश रूपयोरुभयोरपि प्रमेयत्वं सम्भवति एव। आकाशात्मनः प्रभातृत्व पक्षापेक्षया पृथिव्याः प्रमेयत्वमुक्तमिति मन्तव्यम्। ज्ञानक्रिययोरितरेतराऽविना भाव स्वभावत्वात्। प्रमात्रादि पदत्रये प्रत्येकपदं

तयोद्वयोरपि स्थितिरित तद्विभागमाह। ज्ञानात्मेत्यादि। युगलत्रयेऽपि नभः क्षिति वायु शिखि सलिल महीरूपेयुग्मत्रय पूर्वपदेततन्नभो वायु सलिल रूपं ज्ञानात्मा। पश्चादुदीरितं क्षितिशिखिमही रूपं क्रियात्म ज्ञानम् प्रमाता आकाशः, क्रिया प्रमाता क्षितिरूपो देहाः, ज्ञानं प्रमाणं वायुः, क्रिया प्रमाणं बह्नि, ज्ञानं प्रमेयं सलिलं, क्रिया प्रमेयं महीति विभागः। अयं विभागः उत्तरत्र ज्ञान क्रिया प्रमात्रोरितरेतर व्याप्तौ प्रमाणादि पदद्वयेऽपि तत्तदंशत्वं भवेदिति तत्रोपयुक्ततयात्र प्रदर्शित इति मन्तव्यम्।।२।।

भाषा टीका

स्वर वर्णों के विवेचन के हेतु प्रस्तावना के रूप में समस्त वर्णों को पञ्चभूतात्मक व्युत्पादित करते हुए इस सूत्र में पञ्चभूतों को प्रथम प्रमाण आदि के रूप में निरूपित किया जा रहा है।

सूत्रसार -

नभ एवं क्षिति से विमिश्रित पद प्रमाता है। वायु एवं शिखी प्रमाण पद है, तथा सलिल एवं मही प्रमेय पद है। उपर्युक्त प्रकार से उल्लिखित तत्त्वों में से प्रथम पठित तीन तत्त्व नभ, वायु एवं सलिल ज्ञानात्मक हैं तथा पश्चात् पठित तीन तत्त्व क्षिति, शिखि एवं मही क्रियात्मक हैं।

व्याख्या

देहात्मक पृथ्वी एवं आकाश उभय तत्त्व प्रमातृत्व के अभिमान का विषय हैं अतएव नभ एवं क्षिति उभय तत्त्वों के मिश्र रूप को प्रमाता निरूपित किया है। प्रभातृ पद के निश्चय हो जाने पर तदनुसार वायु एवं अग्नि प्रमाण पद तथा सलिल एवं मही प्रमेय पद सिद्ध होते हैं। यदि प्रमाता के रूप में किसी अन्य तत्त्व को स्थापित किया जाता है तब शेष पद प्रमाण एवं प्रमेय का रूप ग्रहण करते हैं। अतः पृथ्वी एवं आकाश दोनों तत्त्वों का प्रमेयत्व सम्भव है। ज्ञान एवं क्रिया का अन्योन्य अविनाभाव स्वभाव सिद्ध है अतएव प्रमाता आदि प्रत्येक पद ज्ञान-क्रियात्मक हैं, इस कारण इनके विभागों का निरूपण करते हैं। नभ-क्षिति, वायु-शिखी, सलिल-मही दो-दो तत्त्वों से विमिश्रित तीन युगल हैं। इन युगलों में प्रथम उल्लिखित तत्त्व अर्थात् नभ, वायु, सलिल ज्ञानात्मक हैं तथा पश्चात् में उल्लिखित तीन तत्त्व

अर्थात् क्षिति, शिखी, मही क्रियात्मक हैं।

पुनः स्पष्ट करते हैं कि प्रथम युगल नभ-क्षिति में ज्ञानात्मक प्रमाता नभ तथा क्रियात्मक प्रमाता क्षिति रूप देह है। द्वितीय युगल में ज्ञानात्मक प्रमाण वायु तथा क्रियात्मक प्रमाण वह्नि है। तृतीय युगल सलिल-मही में ज्ञानात्मक प्रमेय सलिल तथा क्रियात्मक प्रमेय मही है। प्रभाता आदि पदों में इस प्रकार ज्ञान-क्रिया के विभाग हैं।

ज्ञान-क्रियात्मक प्रमाता पदों की इतरेतर व्याप्ति में प्रमाण तथा प्रमेय पदों के अन्तर्गत भी ज्ञान एवं क्रिया का अंश होता है। अतः उपयुक्त होने के कारण यहाँ इस प्रकार प्रदर्शित किया गया है।

तृतीयं सूत्रम्

वर्णां खवायु शिखितोयधराः क्रमेण
स्युः कण्ठ तालुक शिरोरदनोष्ठ जाता
स्थानोच्चयापचयजौ महदल्पभावौ
स्याद्व्युत्क्रमः पशुपदे सलिलानलादौ।।३।।

व्याख्या

एवं प्रमात्रादि रूपतया सकल संसार कलापस्य भूतपञ्चकस्य वर्ण बोध्यत्वं सम्बन्ध प्रवचन पूर्व व्युत्पादयति वर्णा इत्यादि। कण्ठ तालुक शिरोरदनोष्ठ जाताः कण्ठादि पञ्चस्थान सम्भूताः वर्णाः अकार कवर्ग हकाराः कण्ठजाः इकार चवर्ग यकार शकारास्तालुजाः ऋकार टवर्ग रेफ षकारा मूर्द्धजा लृकार तवर्ग लकार सकाराः दन्तजाता उकार पवर्ग वकाराः ओष्ठजा इति वैयाकरण मतानुसारेण वेदितव्यम्। उभय सन्धि रूपाणां सन्ध्यक्षराणामुभय रूपता। कूटाक्षरस्य स्थान कुटजन्यत्वमिति विवेकः। कण्ठाद्योष्ठान्त पञ्चस्थान जाता वर्णाः क्रमेण ख-वायु-शिखी-तोयधरा अकाशादि पृथिव्यन्त पञ्चभूत बोधकाःबोध्य बोधकयोरभेदोपचारद्वर्णानामाकाशादि त्योक्तिः कण्ठादिस्थान जातानां वर्णाना मकाशादि बोधने सम्बन्धमुपपादयति स्थानेति। महदल्प भावौ आकाशादीनां महावृत्यल्प वृत्तित्वेन मिथा प्रसिद्धानामन्योन्यापेक्षया महानल्पश्च उभौ भावौ स्वभावौ स्थानोच्चयापचयजौ स्थानस्य कण्ठादे उच्चयः उच्चत्वं

अपचयो नीचत्वं ताभ्यां जायेते सम्भाव्येते इति तज्जौ। अयमत्राभि प्रायः वर्णानां सुप्त्यादि दशावबोधने यथा सादृश्यं सम्बन्धः तेषामाकाशाद्यव बोधने च सादृश्यमिव सम्बन्धः। स्थान पञ्चके कण्ठस्य सर्वोन्नतस्थानतया तद्भवो वर्णोमहावृत्तिर्भूतपञ्चके महावृत्तिमाकाशं सादृश्येनावबोधयति। एवं तालु भवः शिरो भवाद्यपेक्षया महावृत्तिरास्याद्य पेक्षया महावृत्तिं वायुं सादृश्ये नैव बोधयति। एवमन्यदप्यूह्यम्। शिरसः पञ्चसुस्थानेषु मध्यत्वेनाभिमतत्वात् सर्वोच्चत्वं नाशङ्कनीयम्। कण्ठजादीनामाकाशादिबोधनं पशुपदे व्युत्क्रमे भजतीत्याह स्यादित्यादि। चैत्यव्याप्तिमत्खलु पशुपदं तत्र व्याप्ति परिग्रहेण पृथिव्या आकाश भावः। व्याप्ति भ्रंशादाकाशस्य पृथिवी भावः। तथा अनिलः कण्ठजैर्वर्णैराकाश भावं प्राप्तं पृथिव्युच्यते। तालु भवैर्वायुभावं प्राप्तं सलिलमुच्यते। शिरोभवैरजडांशकस्याहारो जडांश कोटि वह्निरुच्यते। वह्निर्जडाजडरूपंतेजः वायुरजड रूपं तेजः सलिलं जड तेज इति जाग्रत् स्कन्धे वक्ष्यमाणत्वात् दन्त्योष्ठ वर्णैः पृथिव्युदक रूपौ वाय्वाकाशौ उच्यते। सर्वत्रैव क्रिया व्याप्तिमती। पशुपदे क्रिया रूपा पृथिव्येव ज्ञानांशं जलं व्याप्नोतीति दन्त्योष्ठयोः पृथिवी जल बोधकत्वमेवोपपन्नम्। लकार वकारयोदंत्योष्ठयोः पृथिवी जल बीजत्वं प्रसिद्धमिति ततोऽपीदसुपपन्नम्। एवं च वर्णाः विवृतत्वादि प्रयत्नोपघटित सुषुप्त्यादि सादृश्येन सुषुप्त्यादि बोधकाः कण्ठस्थानोपघटित व्याप्ति तारतम्य रूपेण आकाशादि सादृश्येन आकाशादि बोधका सम्बन्धद्वयान्वयेन सुषुप्त्यादि विषयाकाशादि बोधकाः भवन्तीति मन्त्रस्य तत्व रहस्य प्रतिपादकता परमोपपत्तिमती।।३।।

भाषा टीका

प्रमाता आदि के स्वरूप होने के कारण संसार के कलापात्मक पञ्चभूतों के अवबोधक वर्णों का निरूपण करते हैं।

सूत्रसार

कण्ठ, तालु, शिर, दन्त, ओष्ठ अवयवों के संघट्ट से उद्भूत वर्ण क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी नामक पञ्च महाभूतों के अवबोधक हैं। वर्णों के उच्चारण-स्थानों के उच्चय एवं अपचय के द्वारा पञ्चभूतों के महत् एवं अल्प भाव का निर्धारण होता है। पशुपद में सलिल आदि का यह क्रम विपरीत हो जाता है।

व्याख्या

कण्ठ, तालु, शिव, दन्त, एवं ओष्ठ पांच स्थानों से प्राण वायु के आहत होने के कारण उच्चारण के रूप में वर्णों की उत्पत्ति होती है। अतएव उत्पत्ति स्थानों के नाम से वर्णों के नामों का व्यवहार होता है। व्याकरण के मतानुसार इस प्रकार अकार-कवर्ग-हकार वर्णों को कण्ठज. इकार-चवर्ग-यकार-शकार वर्णों को तालुज, ऋकार-टवर्ग-रेफ-षकार वर्णों को शिरोभव, लृकार-तवर्ग-लकार-सकार वर्णों को दन्तज, उकार-पवर्ग-वकार वर्णों को ओष्ठज नाम से संबोधित किया है। उभय सन्धि रूप अक्षरों की उभयरूपता है तथा कूट-जन्य होने के कारण क्षकार को कूटाक्षर कहा गया है।

कण्ठ से ओष्ठ पर्यंत पांच स्थानों से जन्य वर्ण क्रम से आकाश-वायु-शिखि-जल-धरा नामक पञ्च भूतों के बोधक हैं। सिद्धान्ततः बोध्य एवं बोधक अभेद अर्थात् एक रूप हैं। अतएव उपचार से वर्णों को आकाश आदि पञ्च महाभूतों का स्वरूप निरूपित किया है। कण्ठ आदि स्थानों से जन्य होने के कारण वर्णों में आकाशादि भूतों का बोध कराने के सामर्थ्य का प्रतिपादन ऊपर किया है, अतएव सूत्र के उत्तरार्ध में वर्णों में बोधकत्व की इस सामर्थ्य की उत्पत्ति के कारण का दिग्दर्शन करने के हेतु कण्ठ आदि स्थानों एवं आकाश आदि पञ्च भूतों में परस्पर सम्बन्ध का निरूपण किया है।

वर्णों के उच्चारण स्थानों के उच्चय एव अपचय के द्वारा आकाशादि भूतों के परस्पर महत् एवं अल्प भावों की उत्पत्ति होती है। अर्थात् कण्ठ आदि स्थानों के उच्चत्व एवं नीचत्व से आकाश आदि पञ्च भूतों की एक की अपेक्षा दूसरे से महावृत्ति एवं अल्पवृत्ति का निर्धार होता है। इसका तात्पर्य है कि वर्णों पञ्च महाभूतों में यथा सादृश्य सम्बन्ध है। इस यथा सादृश्य सम्बन्ध के कारण वर्ण पञ्च भूतों का बोध कराते हैं।

उच्चारण के पांच स्थानों में कण्ठ का सर्वोच्च स्थान है तथा पञ्च भूतों में आकाश की महावृत्ती अर्थात् सर्वोच्च स्थान है अतः कण्ठ से उद्भूत वर्ण स्थान की सर्वोच्चता के सादृश्य के कारण आकाश के बोधक हैं। इसी प्रकार तालू का शिर आदि स्थानों की अपेक्षा उच्चत्व है तथा शिखि आदि अन्य भूतों से वायु की उच्चता है। अतएव उच्चत्व के सादृश्य से तालु-जन्य वर्ण वायु तत्त्व का बोध कराते हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार अन्य वर्णों के द्वारा शेष भूतों के बोध का प्रतिपादन होता है।

यहां शङ्का हो सकती है कि शिर का स्थान अन्य स्थानों के मध्य में है इस कारण कण्ठ की अपेक्षा शिर को सर्वोच्च निरूपित करना अधिक उपयुक्त है किन्तु कण्ठ गत वर्णों में अन्य स्थान गत वर्णों की अपेक्षा अधिक विवृतत्व है जिससे आकाश का सादृश्य कण्ठ से निरूपित करना युक्ति युक्त है एवं कण्ठ स्थान अन्य स्थानों की अपेक्षा प्रथम है। अतएव कण्ठ की सर्वोच्चता सिद्ध है।

पशु पद में कण्ठज आदि वर्णों के द्वारा आकाश आदि का बोध व्युत्क्रम से होता है। पशु पद में चैत्य की व्याप्ति होती है जिसमें व्याप्ति के परिग्रह के कारण पृथ्वी आकाश-भाव को ग्रहण करती है तथा व्याप्ति भङ्ग के कारण आकाश पृथ्वी-भाव को ग्रहण करता है, तथा वायु कण्ठज वर्णों से बोधित आकाश भाव को प्राप्त करती है अतः यहाँ वायु को पृथ्वी के नाम से सम्बोधित किया जाता है। व्युत्क्रम में तालु भव वर्णों से बोधित वायु को सलिल एवं शिरोभव वर्णो के द्वारा बोधित अजडांश वह्नि को जडांश कोटि वह्नि के नाम से कहा जाता है।

जाग्रत् स्कन्ध में वह्नि को जडाजड (जड एवं अजड) रूप तेज, वायु को अजड रूप तेज, तथा सलिल को जड-तेज नाम से व्यवहृत किया जाता है। दन्त्योष्ठ वर्णों के द्वारा बोधित वायु एवं आकाश को पृथ्वी एवं उदक के रूप में सम्बोधित किया जाता है। पशु पद में सर्वत्र क्रिया की व्याप्ति होती है अतएव क्रिया रूपा पृथ्वी ही ज्ञानांश रूप जल में व्याप्त रहती है इस कारण दन्त्योष्ठ वर्णों के द्वारा पृथ्वी एवं जलके अवबोधन का प्रतिपादन उचित है। एवं प्रसिद्ध है कि दन्त्योष्ठ वर्ण लकार एवं वकार पृथ्वी एवं जल के बीज हैं इस कारण भी उपर्युक्त प्रतिपादन उपयुक्त है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मन्त्र के द्वारा तत्त्व के रहस्य की प्रतिपादकता युक्ति युक्त है। इस प्रकार विवृततत्त्व आदि प्रयत्नों से उपघटित सुषुप्ति आदि के सादृश्य के कारण वर्ण सुषुप्ति आदि दशाओं के अवबोधक हैं एवम् कण्ठ आदि स्थानों से उपघटित व्याप्ति के तारतम्य से आकाश आदि के सादृश्य के कारण वर्ण आकाश आदि पञ्चभूतों के बोधक हैं। अतएव उपर्युक्त सम्बन्ध द्वय के आधार पर सुषुप्ति आदि विषयणी दशाएं आकाश आदि भूतों की अवबोधक सिद्ध हो जाती हैं।

चतुर्थ सूत्रम्

इच्छाद्वयं भवति तालु भवोष्ठ वर्णौं
मूर्धन्य दन्त्य तनुमानयुगं क्रियादि।
संकोचभाव तदभाव वशादकार
सर्वोऽपि बिन्दुरपि सन् श्रितमातृभावः।।४।।

व्याख्या

अथ सकल संसार कारण रूपायां सुप्तौ कार्यकारणयोरेक रूप्य नियमाद्वासनारूपेण सर्वसंसारसंविधानेन भवितव्यमिति। अकारादिषु पञ्च स्वरेषु भेदाभेदरूपवासनां संसार सन्नाहमुपदर्शयति। इच्छेत्यादि। तालुभवौष्ठ वर्णौं इकारोकारौ इच्छाद्वयं भवति। जडाजडप्रभातोर्विसर्गं बिन्दोरिति सूत्रान्तोपदिश्यमान विसर्ग बिन्दु प्रमातृ सम्बन्धेन लभ्यते। इकारोकारयोर्व्याप्यपद एवेच्छात्वं वेदितव्यम् नतु व्यापकपदे विसर्ग व्याप्तौ। विसर्ग रूपः अकार एवेच्छा इकारस्तत्साधनं भवति। अकारेकारयोः क्रियात्वेनेकारस्याभावो। बिन्दु व्याप्तावपि बिन्दु रूप अकार एवेच्छा उकारस्तु तदेकाकारतां लभते ज्ञान रूपत्वात्। ततः यदापि विसर्गो व्यापि तदा उकारस्य बिन्द्विच्छांत्वं बिन्दो रूपरूपत्वात्। यदा बिन्दुर्व्यापी तदा इकारो विसर्गेच्छा तदुपरूपत्वादिविवेकः। मूर्धन्य दन्त्यौ ऋकार लृकारौ तत्त नु तत्स्वरूपं क्रियादि मान युगं कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रियरूपं प्रमाणयुगलमित्यर्थः। संकोचभाव तदभाववशात् संकोचभावो भेदरूपता तदभावस्त्वभेदरूपता। तद्वशात् अकार एव विसर्गो बिन्दुरपि संसृतभातृभावः प्रभातृ भावं श्रयतीत्यर्थः। इदमत्र रहस्यम्। अकार एवाभेद रूपो बिन्दुः अकार एव भेद रूपो विसर्गः तयोर्बिन्दु विसर्गयोः सामरस्यपदमप्यकार एव सामरस्य पदे निस्पन्द एवाकारः। ज्ञान क्रिया रूपबिन्दु विसर्ग इच्छारूपेण बहिः स्पन्द चमत्कारं परिगृहणाति। तत्रादौ यदा विसर्ग रूपेण स्पन्दते तदा प्रमातृभूत विसर्ग रूपाकार स्पन्द समकालमेव इकारादि वर्ण चतुष्टयात्मक स्त्री पुरूषः संसार कलापश्चाकार गर्भादिव वहिः स्पन्दते। यदा बिन्दु रूपेणाकारस्पन्दः तदा बिन्दुना प्रमाता सहैव निवृत्तिरूपः प्रागुक्त वर्ण चतुष्टयात्मकः संसार कलापः पूर्ववदकार गर्भादिव स्पन्दते। तदेवमकार एव सामरस्यपदमकारस्यैव। बिन्दु विसर्ग रूपेण बहिस्पन्दनमकारादेव सकल संसार कलाप भूत पञ्चकोत्पत्तिरकार एव मातृकोदय विश्रान्ति स्थानमित्युपनिषत्।।४।।

भाषा टीका

सूत्र सार -

तालु जन्य वर्ण एवं ओष्ठजन्य वर्ण इच्छाद्वय के बोधक हैं। मूर्धाजन्य एवं दन्त्य वर्ण उसके स्वरूप हैं अर्थात् प्रमाण युगल हैं, जो क्रिया का रूप हैं। संकोचभाव तथा संकोच के अभाव के वश अकार विसर्ग भी है तथा बिन्दु भी है तथा प्रमातृ भाव से युक्त है।

व्याख्या

नियम है कि कार्य एवं कारण में एकरूपता होती है अतएव सकल संसार की कारणरूपा सुषुप्ति के अन्तर्गत वासना रूप से सर्व संसार के संविधान की व्यवस्था की स्थिति आवश्यक है। अत: अकार आदि पञ्च स्वरों में अर्थात् अ इ उ ऋ लृ के अन्तर्गत भेदाभेद रूप वासनात्मक संसार का अर्थात् अहं का उपदेश इस सूत्र में करते हैं।

तालु-जन्य इकार एवं ओष्ठजन्य उकार जीव एवं शिव की इच्छा के क्रमशः द्योतक हैं। जड एवं अजड प्रमाता अर्थात् विसर्ग एवं बिन्दु का सूत्र के अन्तिम वाक्य में उल्लेख है अतएव यहाँ अभिव्यञ्जना होती है कि इच्छाद्वय से विसर्ग एवं बिन्दु की इच्छाओं का उल्लेख करने का तात्पर्य है। इकार एवं उकार व्याप्त पद में ही इच्छा के द्योतक हैं न कि व्यापक पद में।

विसर्ग व्याप्ति में विसर्ग रूप अकार ही इच्छा है एवं इकार उसका साधन है। अकार एवं इकार क्रिया का रूप हैं अत: विसर्ग व्याप्ति में इकार का अभाव हो जाता है तथा विसर्ग के अकार से ही इच्छा का बोध होता है। बिन्दु व्याप्ति में बिन्दुरूप अकार ही इच्छा का बोधक है उकार का अकार से एकाकार हो जाता है। कारण यह है कि अकार एवं उकार दोनों ज्ञान रूप हैं। तात्पर्य यह है कि जब विसर्ग व्यापी होता है तब बिन्दु का उपरूप होने से उकार बिन्दु की इच्छा का द्योतक है तथा जब बिन्दु व्यापी होता है तब विसर्ग का उपरूप होने से इकार उसकी इच्छा का द्योतक है।

मूर्धन्य एवं दन्त्य वर्ण ऋकार एवं लृकार क्रमशः इच्छा द्वय का स्वरूप हैं, एवं कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों का रूप होने से ज्ञानक्रिया रूप प्रमाण द्वय के द्योतक हैं।

सङ्कोचभाव अर्थात् भेदरूपता, सङ्कोचाभाव अर्थात् अभेदरूपता के वश अकार ही विसर्गं है एवं अकार ही बिन्दु है अतएव अकार ही बिन्दु-विसर्ग व्याप्ति में प्रमातृ-भाव को प्राप्त होता है। इसका रहस्य अर्थ है कि अकार ही अभेदरूप बिन्दु है तथा अकार ही भेदरूप विसर्ग है अतएव बिन्दु-विसर्ग का सामरस्य पद भी अकार ही है।

सामरस्य पद के अन्तर्गत निष्पन्द ही ज्ञान-क्रियात्मक बिन्दु-विसर्ग की इच्छा के रूप में वहिः स्पन्दनात्मक चमत्कार का रूप ग्रहण करता है। प्रथम जब विसर्ग रूप में स्पन्द होता है तब प्रमातृ-भूत विसर्ग रूप अकार के स्पन्द के समकाल में ही इकार अर्थात् अ इ ऋ लृ वर्ण-चतुष्टयात्मक स्त्री-पुरुष रूप संसार कलाप का अकार के गर्भ से ही बाह्य स्पन्द होता है तथा जब बिन्दु-रूप में अकार का स्पन्द होता है तब बिन्दु-प्रमाता अकार के साथ ही निवृत्ति रूप उपर्युक्त वर्ण चतुष्टयात्मक संसार-कलाप का पूर्ववत अकार के गर्भ से ही स्पन्द होता है। इस प्रकार अकार का सामरस्य पद अकार ही है अतएव उपनिषद का उपदेश है अकार से ही विन्दु-विसर्ग रूप बहिः स्पन्द होता है तथा सकल संसार की कलाप-भूत पञ्चभूतात्मक उत्पत्ति भी अकार ही है एव सकल-संसार की अवबोधक मातृका का उदय एवं विश्रान्ति स्थान भी अकार है।

टिप्पणी :-

(१) अहं = विश्व का आत्मा प्रकाश रूप स्व एवं पर का अवभासक है जिसको अहं नाम से सम्बोधित किया है।

"स्व परावभासन क्षम आत्मा विश्वस्य यः प्रकाशोऽसौ
अहमिति स एव उक्तोऽहंता स्थिति रीदृशी तस्य॥"

वर्ण माला का प्रथम अक्षर अकार एवं अन्त्य अक्षर हकार से समाहार से अहम् शब्द की रचना की गई है।

"अतोऽकार हकाराभ्यामहमित्य पृथक्तया।
प्रपञ्चं शिवशक्तिभ्यां क्रोडी कृत्य प्रकाशते।"

पंचम सूत्रम्

मूलद्वये स्फुरति मातृयमस्तदन्त-
रिच्छाद्वयं भवति मानयुगं तदन्तः।
एतत्समं पदमतो विषमं द्विरूपं
चैत्योच्छ्रये स्फुरति जातु चिदुच्छ्रये च।।५।।

व्याख्या

अथानन्तर वर्ण गर्भे वासनारूपेणावस्थित स्व स्पन्दद्वयवशात् वहिर्विलसितस्य विसर्ग बिन्दु संसारद्वय सन्नाह संस्थानस्य पदस्वरूपं दर्शयति मूलेत्यादि। मूलद्वये संसारकलाप पदस्य उभयोर्मूलयोः मातृकायुगं विसर्ग बिन्दुरूपं प्रभातृयुगलं स्फुरति तदन्तस्तयोरन्तः व्याप्य प्रदेशे इच्छाद्वयं इकारोकाररूपं यथा योगं भवतीति सम्बन्धः विसर्गस्यान्तः सन्निधौ इकारः बिन्दोरन्तः सन्निधौ उकार इति योजना। तयोस्तदन्तयोरिच्छयोरन्तः व्याप्य प्रदेशे मानयुगं ऋकार लृकार रूपं प्रमाणद्वयं भवतीति पूर्ववत्सम्बधः। विसर्गादिकारादारभ्य अकारेकारऋकारलृकारोकाराकारा इति विसर्गादि बिन्द्वन्त षड्वर्ण रूपं एतत्पदं समं विसर्ग बिन्दोःसमव्याप्तौ पदं अतः अस्मात्पदात्विषमं असमान रूपं पदं द्विरूपं भवति। जातु कदाचित् चैत्योच्छ्रययोर्विसर्ग व्याप्तौ बिन्दोरकारस्यादर्शनं उकार रूपैणैव तदवस्थानमिति पञ्चाङ्गत्वं जातु चिदुच्छ्रये चिद्व्याप्तौ विसर्गरूपस्याकारस्यादर्शनं इकार रूपैणैव तदवस्थानं उकारस्यापि बिन्द्वावकारेऽप्यैक्य रूप्यमिति चतुरङ्गता। एवं विषमं पदमुत्तरत्र प्रतिपादन परीक्षया योजनीयम्। पञ्चाङ्गकस्य विसर्गपदस्य सुप्ताद्यवस्थात्रय सम्भाविते त्रैरूप्ये पञ्च त्रिकोणाःसम्पद्यन्ते। चतुरङ्गस्य बिन्दुपदस्यापि तथात्वे चत्वारस्त्रिकोणाः सम्पद्यन्ते तथा च पञ्चत्रिकोण रूपस्य शक्तिपर्यायस्य विसर्गस्य चतुस्त्रिकोण रूपस्य शिव पर्यायस्य बिन्दोः समपदे अन्योन्य श्लेषेण नवत्रिकोणश्लेषात्मनः श्रीमहायन्त्रस्य सम्पत्तिरिति वेदितव्यम्।।५।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

मूलद्वय में दो मातृकाओं का स्फुरण होता है जो उनके अन्तः में अवस्थित

इच्छाद्वय की द्योतक हैं। पुनश्च इच्छाद्वयात्मक मातृकाओं के अन्तः में प्रमाण-युग की द्योतक दो मातृकाओं का स्फुरण होता है। इस प्रकार यह सम पद है जिससे द्विरूप विषम पद का स्फुरण होता है। चैत्य की व्याप्ति में विषम पद के एक स्वरूप का स्फुरण होता है तथा दूसरे रूप का स्फुरण चित् की व्याप्ति में होता है।

व्याख्या

पूर्व सूत्र में प्रतिपादित किया है कि अकार बिन्दु रूप, विसर्ग रूप एवं सामरस्य रूप है तथा अकार से ही निवृत्तिरूप वर्णचतुष्टयात्मक संसार कलाप का स्फुरण होता है। इस प्रकार अ, इ, उ, ऋ, लृ पञ्च स्वरों से भेदाभेदवासनात्मक संसार के अहम् रूप का प्रतिपादन किया है। इस सूत्र में अकार के अन्तः में वासना रूप से स्थित, दो प्रकार के स्पन्द के वश, वहिः विलसित विन्दुविसर्गात्मक संसरणों के स्वरूपभूत अः की व्याख्या की गई है।

सूत्र में उल्लिखित मूल द्वय से तात्पर्य विन्दु-विसर्गात्मक प्रमातृ-द्वय के बोधक अं एवं अः मातृका-द्वय से है। अ एवं अः रूप प्रमातृ-द्वय के स्फुरित होने पर इनके अन्तः में इकार एवं उकार रूप में स्थित तथा योग इनकी इच्छा द्वय का आविर्भाव होता है। अर्थात् विसर्ग के अन्तः में इकार एवं बिन्दु के अन्तः में उकार का आविर्भाव होता है जो क्रमशः विसर्ग एवं बिन्दु की इच्छा के द्योतक हैं।

विसर्ग एवं बिन्दु की इच्छाओं के अन्तर्गत अर्थात् व्याप्य प्रदेश में ऋकार एवं लृकार रूप प्रमाण-द्वय की स्थिति है।

विसर्ग के अकार से आरम्भ कर अकार, इकार, ऋकार, लृकार, उकार एवं अकार वर्णों से युक्त अर्थात् विसर्ग से बिन्दु पर्यंत छः वर्णों से युक्त सम पद है जिसमें विसर्ग एवं विन्दु की व्याप्ति सम है, इस कारण इस सम पद से द्विरूप विषम पद का आविर्भाव होता है। जब कदाचित् चैत्य का उच्छ्रय अर्थात् विसर्ग की व्याप्ति होती तब विन्दु के अकार का लोप हो जाता है तथा उकार के रूप में ही अकार का अवस्थान होता है अतः यह पद इ, उ, ऋ, लृ एवं अ से युक्त पञ्चाङ्गक विषम पद रह जाता है। जब कदाचित चित् तत्त्व की व्याप्ति होती है तब विसर्ग रूप अकार का लोप हो जाता है तथा इकार के रूप में ही अकार का अवस्थापन होता है

तथा उकार भी विन्दु के अकार से एक रूप हो जाता है। इस प्रकार विसर्ग रूप अकार एवं उकार के लोप हो जाने से विषम पद अ, इ, ऋ, लृ चार वर्णों से युक्त शेष रह जाता है।

सुषुप्ति आदि अवस्था त्रय से सम्भावित होने के कारण त्रैरूप्य पञ्चाङ्गक विसर्ग पद से पञ्च त्रिकोण का सम्पादन होता है एवं चतुरङ्ग अर्थात् चार वर्णों से युक्त बिन्दु पद से चार त्रिकोणों का सम्पादन होता है। इस प्रकार पञ्च त्रिकोणात्मक, शक्ति के पर्यायभूत, विसर्ग तथा चतुरस्त्रिकोणात्मक, शिव के पर्यायभूत बिन्दु के योग से उद्भूत सम पद के अन्तर्गत अन्योन्य श्लिष्ट नव त्रिकोण श्री-महायन्त्र की सम्पत्ति हैं। अर्थात् शक्ति के पांच त्रिकोण एवं शिव के चार त्रिकोणों के अन्योन्य श्लेष से श्री चक्र के स्वरूप का चित्रण किया गया है।

षष्ठं सूत्रम्

साम्यं भवेत् प्रकृतमन्त्र चमत्क्रियैव
वैषम्यद्भुततरा हि विमर्श वृत्तिः।
निस्पन्दतां समपदे सततं भजन्ति
प्रस्पन्दते चचिदचित्कलितोच्छ्रतत्वात्॥६॥

व्याख्या

उक्तमर्यादया नवाङ्गरूपस्य समपदस्य पञ्चाङ्गरूपस्य विसर्ग पदस्य चतुरङ्ग रूपस्य बिन्दु पदस्य मध्ये स्वाभाविक वैकारिक कक्ष्याविभागं दर्शयति साम्यमित्यादि। अत्र समविषम रूपे पदत्रये साम्यं समत्वं प्रकृतं भवेत्। यद्यपि यामलन्यायेन पदत्रयस्य पौर्वापर्याभावात् स्वाभाविकागन्तुक पर्यालोचनायाः निरवकाशः तथापि निष्पन्द विश्रान्ति रूपत्वेन समपदस्य स्वपदद्वयापेक्षया निर्विकारत्वमनुभवपदे स्फुरतीति तस्य प्रकृतित्वं मूलरूपत्वमितियावत्। वैषम्यं स्पन्दरूपं विषमत्वं तु चमत्क्रियैव चमत्कारमात्रमेव तत्रापि पर्यालोचने निष्पन्द स्वभावस्य भित्तिभूतस्यानुवृत्तत्वात्। कथं स्पन्दास्पन्दयोर्विरुद्धयोः सामानाधिकरण्यमित्यत्राह अद्भुतेत्यादि विमर्शवृत्ति सकलसंसार मूलभूतस्य महाप्रकृतेर्विमर्शस्य वृत्तिर्व्यापारः अद्भुततरा हि। तदेवाद्भुततरत्वमविधत्ते निष्पन्दतामित्यादि। समपदे सततं नित्यं निष्पन्दतां भजन्ति।

चिदचित्कलितोच्छ्रितत्वाच्चिचितोः प्रमात्रा संयोजित व्याप्तिरूपोच्छ्रितत्वात् प्रस्पन्दते च यौगपद्येन निष्पन्द स्पन्दद्वयप्रक्रिया चैवं निष्पन्द स्वरूपानुभवकाले स्पन्दद्वयं व्यावृत्ति रूपेणानुभूयत एव। अत्र निष्पन्द विश्राभे स्पन्दो न स्फुरतीति स्पन्दद्वयमनुसन्धाय खलु तदस्फुरणमनुसन्धेयम्। अतो निष्पन्दे पदे व्यावृत्ति विषयतया स्पन्दयोरनुभवोऽपि नियत एव। एवं जडस्पन्दानुभवकाले च विश्रान्त्य जडस्पन्दयोर्व्यावृत्ति विषयतयानुभवः अजडस्पन्दानुभवकाले च विश्रान्ति जडस्पन्दानुभव श्चैवमेवेति। अथवा सन्धिरेकाकारतया चैत्रमैत्रादीनामेकत्वे चैत्रो विश्रमते मैत्रो बहिर्मुखः स्पन्दते देवदत्तोऽन्तर्मुखः स्पन्दते इति यौगपद्यं पदत्रयस्य। अतो विमर्शवृत्तिरद्भुततरेति यथोक्तम्।।६।।

भाषा टीका

उपर्युक्त पूर्व सूत्र में प्रतिपादित मर्यादा के अनुसार नवाङ्ग रूप अर्थात नवत्रिकोण रूप समपद, पञ्चाङ्ग रूप विसर्ग पद एवं चतुरङ्ग रूप विन्दु पद के अन्तर्गत स्वाभाविक एवं वैकारिक कक्षाविभाग का निरूपण इस सूत्र में किया जाता है।

सूत्र सार -

सम-विषम रूप पदत्रय में समत्व प्रकृत अर्थात् स्वाभाविक रूप है। स्पन्द रूप वैषम्य चमत्कार अर्थात् वैकारिक रूप है। सम से विषम की उत्पत्ति होती है यह विमर्श की अद्भुतता है एवं सम पद में यह विमर्श निष्पन्द स्थिति में रहता है एवं विषम पद में चित् एवं चैत्य के उच्छ्रय के कारण स्पन्दित होता है।

व्याख्या

शिव-शक्ति के स्वरूपभूत श्रीचक्र के अन्तर्गत नव-त्रिकोण को सम पद तथा पृथक् रूप में शिव के चार त्रिकोण एवं शक्ति के पांच त्रिकोणों को विषम पद निरूपित किया गया है। नव त्रिकोणात्मक शिव-शक्ति का स्वाभाविक रूप समत्व है। यद्यपि यामल सिद्धान्त के अनुसार पद-त्रय के पूर्व एवं अपर क्रम का अभाव होने से स्वाभाविक एवं आगन्तुक पर्यालोचना के लिये अवकाश नहीं है, तथापि विषम पद-द्वय की अपेक्षा निष्पन्द विश्रान्ति रूप सम पद में निर्विकारत्व की अनुभूति की स्फूर्ति होती है अतएव सम

पद का प्रकृत अर्थात् मूल रूप समत्व है एवं वैषम्य अर्थात् स्पन्द रूप विषमत्व चमत्कार मात्र है, किन्तु पर्यालोचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह वैषम्य निस्पन्दात्मक समत्व की अनुवृत्ति है अतएव निस्पन्द पद स्पन्द की भित्ति अर्थात् आश्रय है।

स्पन्द एवं अस्पन्द दो विरोधी तत्त्व हैं अतः प्रश्न उत्पन्न होता है कि दो विरोधी तत्त्वों का समानाधिकरण्य किस प्रकार सिद्ध हो सकता है? अर्थात् दो विरोधी तत्त्वों का एक ही समय में एक ही आधारभित्ति के अन्तर्गत तादात्म्य संभव नहीं है। सूत्रकार इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि विमर्श वृत्ति की यह अद्भुतता है। अर्थात् सकल संसार की मूलभूत महाप्रकृति के विमर्श के व्यापार नित्य निस्पन्दता को प्राप्त होता है, तथा चित् एवं अचित् प्रमाता द्वय से संयोजित व्याप्ति रूप उच्छ्रिति अर्थात् उच्छलन के कारण प्रकृति के विमर्श का प्रस्पन्द होता है। इस प्रकार निस्पन्द एवं बिन्दु-विसर्गात्मक स्पन्द-द्वय की प्रक्रिया का प्रवर्तन युगपत् अर्थात् एक ही काल में होता है, एवं निष्पन्द-स्वरूप के अनुभव-काल में व्यावृत्ति रूप से (अर्थात् प्रत्यावर्तित रूप से) स्पन्द-द्वय की अनुभूति होती है। यहाँ निष्पन्द-विश्राम पद से स्पन्द स्फुरित नहीं होता है अतः विन्दु-विसर्गात्मक स्पन्द-द्वय में अनुसन्धान के पश्चात् अस्फुरण (निष्पन्दत्व) का अनुसन्धान करना चाहिये। इस प्रकार निष्पन्द पद में, व्यावृत्यात्मक स्वरूप के कारण, स्पन्द-द्वय का अनुभव नियत है।

जड-स्पन्द के अनुभव-काल में स्पन्द-द्वय व्यावृत्ति का विषय होता है अतः विश्रान्ति अजडात्मक होती है तथा अजड अर्थात् चिदानुभव काल में जड-स्पन्दात्मक विश्रान्ति का अनुभव होता है।

स्पन्द एव अस्पन्द की युगपत् अनुभूति को विकल्प से स्पष्ट करते हैं। सन्धि अवस्था में ऐक्य का अनुभव होता है इस कारण चैत्र, मैत्र आदि की एकाकारता में चैत्र की विश्राम-अवस्था मैत्र का बर्हिमुख स्पन्द एवं देवदत्त का अन्तः मुख स्पन्द युगपत् प्रतिपादित किया जा सकता है। अर्थात् एक ही तत्त्व में स्पन्दत्व एवं निष्पन्दत्व का समावेश है। उसी का जडात्मक तथा अजडात्मक स्पन्द होता है तथा वही निष्पन्द तत्त्व है अतः यह विमर्श-वृत्ति अद्भुततर कही गई है॥६॥

सप्तम् सूत्रम्

चैत्यं यदोल्लसति संघटितस्वकेच्छम्
चित् स्वंस्वभावमणुमाश्रयतेनिजेच्छाम्।
अन्तर्भवेदथ चिदुल्लसनेतु चैत्यम्
पंचाङ्गकम् जडपदमूचतुरङ्गमन्यत्।।७।।

व्याख्या

चैत्यमित्यादि प्रबोध सौकर्याय प्राग्व्याख्यातस्य विसर्गपद पञ्चत्वबिन्दुपद-चतुष्टयप्रमेयस्येदं सूत्रम्। चैत्यं विसर्गः बहिः पृथिवीरूपान्तःप्रकृतिरूपः यथा संघटित स्वकेच्छं चवर्गाकारः इकारप्रतिपाद्य गन्धाद्यहङ्कार रूपिण्यां तदा स्वकीयेच्छया स्वस्यैवरूपान्तरेण संघटितंसम्बन्ध सत् उल्लसति। यथाचित् अणुं सङ्कुचितं स्वंस्व सम्बन्धि स्वभावं स्वरूपंनिजेच्छां अकार उकार-प्रतिपाद्यापरिमित प्रमातृरूपां आश्रयते तदाकारेण तिष्ठति चिदुल्लसने तु चैत्यं विसर्गतन्मयः परिमित प्रमाता च अन्तर्भवेत्। चितीतिशेषः चैत्यस्वरूपान्तर मिच्छैव तिष्ठति। अतः कारणात् जडपदं पञ्चाङ्गकम। अन्यत् अजडपदं चतुरङ्कम्।।७।।

भाषा टीका

पूर्व में प्रतिपादित विसर्गपद की पञ्चाङ्गता एवम् बिन्दु पद पर चतुरङ्गता के सुलभ बोध के हेतु इस सूत्र की रचना की गई है।

सूत्रसार -

जब चैत्य सङ्घटित स्वकीय इच्छा से उल्लसित होता है तब चित् अपने अणु स्वरूप में परिणत हो जाता है तथा अपनी इच्छा को भी उसके आश्रित कर लेता है, तथा जब चित् का उल्लास होता है तब चैत्य उसके अन्तः में प्रविष्ट हो जाता है। इस प्रकार जड पद पञ्चाङ्क एवं अजड पद चतुरङ्गक रह जाता है।

व्याख्या

सम पद अ, इ, उ, ऋ, लृ, अ वर्णों द्वारा संघटित है। सम पद से विषम पद का आविर्भाव होता है। जब चैत्य वर्ग एवं इकार द्वारा प्रतिपाद्य

गन्ध एवं अहङ्कार रूपिणी इच्छा से स्वयं को रूपान्तर से सम्बन्ध कर उल्लसित होता है तब चित् अपने अणु अर्थात् संकुचित स्वरूप को अकार एवं उकार द्वारा प्रतिपाद्य अपरिमित प्रमातृ रूपा निज इच्छा के आश्रित अर्थात् तदाकार हो जाता है। तात्पर्य यह कि चैत्य के उल्लास में चित् चैत्य के अन्तः में प्रविष्ट हो जाता है अतः चित् के स्वरूप के द्योतक अकार का लोप हो जाता है एवं अकार चित् की इच्छा के द्योतक उकार से तदाकार हो जाता है इस प्रकार अकार का लोप होने से विसर्गात्मक विषम पद में इ, उ, ऋ, लृ, अ, पांच वर्ण शेष रह जाते हैं जो इसके अङ्ग के रूप में व्यवहृत हैं। अतः यह पञ्चाङ्गक पद कहा गया है।

जब चित् का उल्लास होता है तब चैत्य अर्थात् विसर्ग के अन्तः में प्रविष्ट परिमित प्रमाता उसके (चित् के) अन्तः में लीन हो जाता है तथा उसके अन्तर में ही उसकी (परिमित प्रमाता की) इच्छा की स्थिति रहती है। इस प्रकार विसर्ग के स्वरूप के द्योतक अकार का लोप चित् के स्वरूप के द्योतक अकार में हो जाता है तथा चित् की इच्छा के द्योतक उकार का लोप भी चित् में हो जाता है। इस प्रकार चिदात्मक विषम पद में अ, इ, ऋ, लृ चार वर्णों का समावेश शेष रहता है। यह चार वर्ण ही इस के अङ्ग कहे गये है अतः यह अजड पद चतुरङ्गक कहा गया है।

टिप्पणी -

अ, इ, उ, ऋ, लृ, अ छः वर्णों से युक्त सम पद में दो बार अकार का उल्लेख है। प्रथम अकार विन्द्वात्मक अकार है जो चित् के स्वरूप का द्योतक है तथा अन्त का अकार विसर्ग का द्योतक है। चैत्य के उल्लास में विसर्गात्मक अकार की स्थिति रहती है तथा विन्दु के अकार का लोप होता है। चिदुल्लास में विन्द्वात्मक अकार की स्थिति रहती है तथा विसर्ग के अवबोधक अकार का लोप हो जाता है।

अष्टमं सूत्रम्

अन्तर वहिः करण जृम्भणयोरदीर्घ
दीर्घस्वरेषु जडसंसरणं द्विरूपं।
ए ऐ इति द्वयमिहोल्लिखति क्रमेण
स्वीयेच्छया पदयुगे घटनं जडस्य।।८।।

व्याख्या

प्रमेय प्रमाण प्रमातृ रूप कक्ष्यात्रयोपलक्षितानां स्वप्नादीनां कारणरूपतया कक्ष्यात्रयवति सुषुप्ति पदे पञ्चपञ्चरूपह्रस्वदीर्घस्वरवर्गद्वयविभक्त-बिन्दुविसर्ग-पदात्मिकायां प्रमेय कक्ष्यायां सुषुप्ति सुषुप्तौ तद्विश्रान्त तत्कारणभूत भेदाभेद मिश्र प्रमातृ संसार वासनां व्युत्पाद्य इदानीं सन्ध्यक्षर चतुष्करूपे सुषुप्ति प्रमाणपदे ग्राहक पदत्वात् भेदादि प्रमातृ संसार विलासं दर्शयति अन्तरित्यादि। अन्तर्वहिःकरणजृम्भणयोः क्रमादन्तर्बहिरिन्द्रिय समुन्मेषे च सति जड संसरणं परमित प्रमातृ संसार द्विरूप स्वप्न जाग्रद्रूपेणेत्यर्थः। तत्सरणद्वयं कर्म ए ऐ इति वर्ण द्वयं कर्तृ अदीर्घदीर्घस्वरेषु पञ्चपञ्चात्मना पदद्वय रूपेण स्थितेष्वित्यर्थः। अधिकरण सप्तमी ह्रस्वस्वर पदरूपे अधिकरणे येकार स्वप्न रूपमन्त संसारमुल्लिखति बोधयति। दीर्घस्वर पदे अधिकरणे ऐकारो जाग्रद्रूपं बहिः संसारं बोधयति। ए ऐ इति द्वयं रूपं सद्बोधयतीत्यत्राह क्रमेणेत्यादि। क्रमेण पदयुगे अन्तर्वहिरूपे जडस्य प्रभातुः अन्तर्बहिःपद योरेकमात्र-द्विमात्राकाररूपस्य स्वीयेच्छया अन्तर्बहिरेक द्विमात्रेकार रूपया घटनं सत् संघट्टनरूपं सत् एकारः खल्वकारेकार घटनरूपः तत्रैवैकारे अकारेकारयोः द्वितीयमात्रायोगेन निष्पन्नत्वात् अकारेकार घटन रूपा ऐकारः अत्रेदं हृदयं स्पर्शव्यापक बोध्ययोः जाग्रत्स्वप्नयोः संसार पदयोः प्रतिपदमादौ प्रमेयकक्ष्या मध्यतः प्रमाण कक्ष्या अन्ततः प्रमातृकक्ष्याचोपलक्ष्यते। तत्कारणरूपतया सुषुप्तावपि कक्ष्यात्रयं तत्रादौ ह्रस्वदीर्घरूपा दश स्वराः प्रमेय कक्ष्या, सन्ध्यक्षर चतुष्टयं प्रमाणकक्ष्या, बिन्दुविसर्गौ प्रमातृकक्ष्या। एवं सति प्रमेय कक्ष्या जड विश्रान्ति पदं, प्रमातृ कक्ष्या अजड विश्रान्तिपदं, प्रमाणकक्ष्या जडाजडयोः संसारपदं तस्य संसार पदस्य विश्रान्ति मूलत्वात् विश्रान्तिरूपेप्रमेय पदे संसार वासना इच्छाद्वयं भवतीत्यादि सूत्र चतुष्टयेन निरूपिताऽनेन सूत्रेण सन्ध्यक्षररूपे प्रमाणपदे ए ऐ इति वर्ण द्वयं जडप्रमातुरन्तर्बाह्य संसारौ प्रतिपाद्यते। प्रमाणत्वात् सन्ध्यक्षराणां द्वि द्वि वर्ण रूपता। सुषुप्तेः विश्रान्ति पदत्वेन तत्रेच्छामत्रस्यैव संसारस्यैवोपपत्तिः। अकारस्य विसर्गेच्छायां इकार ऋकार लृकाराकार रूपः संसारो निलीयावतिष्ठते। ततस्तादृगिच्छया योग एव विसर्गस्य चित्पदग्राहकत्वमिति एकारस्य ग्राह्यग्राहकोभयरूपता। एवमैकारादिष्वपि बोध्यम् स्वप्न प्रमातुरेव वहिर्मुखत्वेन जाग्रत् प्रमातृत्वमिति। एकारस्यैव अकार इकार द्वितीय मात्रा योगेन सन्धि वशादकारत्वमिति नायमैकार आकार ईकार योगो निष्पन्नः। तथात्वे सन्धि वशादेकारत्वमेवैति। एतेन स्वप्नस्यान्तः सीमतया बिन्दु पदत्वं जाग्रतो बाह्य सीमतया विसर्ग पदत्वमिति सूचितम्।।८।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

अन्तः एवं बहिः इन्द्रियों के उन्मेष के कारण क्रमशः अदीर्घ एवं दीर्घ स्वरों में निरूपित जडात्मक संसरण के दो रूप है। जड के इन दो पदों का घटन स्वकीय इच्छा से होता है एवं पद-द्वय का बोध क्रमशः ए, ऐ, वर्णं-द्वय के द्वारा होता है।

व्याख्या

प्रमेय-प्रमाण-प्रमातृ रूप कक्षा त्रय से उपलक्षित स्वप्न आदि अवस्थाओं के कारणभूत कक्षात्रयात्मक सुषुप्ति पद में अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ एवं आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ नामक पांच अदीर्घ एवं पांच दीर्घ वर्णात्मक स्वर वर्ग द्वय में विभक्त बिन्दुविसर्गात्मिका प्रमेय कक्षात्मक (अर्थात् प्रमेय रूप से निरूपित) सुषुप्तिपद के अन्तर्गत उसके विश्रान्त अर्थात् कारण भूत भेद, अभेद एवं मिश्र प्रमाता की संसार वासना का व्युत्पादन पूर्व सूत्रों में किया गया है। (संक्षेप में तात्पर्य यह कि प्रमेय रूप में निरूपित कारण भूत सुषुप्ति के भेदात्मक, अभेदात्मक एवं मिश्रात्मक प्रमाता त्रय की इच्छा शक्ति का निरूपण पूर्व सूत्र में किया गया है। आगामी विषय को स्पष्ट करने के हेतु टीकाकार ने सुषुप्ति पद के विशेषण के रूप में कक्षा त्रय, अदीर्घ-दीर्घ स्वर एव प्रमाता त्रय का विवरण प्रस्तुत किया है) इस सूत्र में तथा आगामी सूत्र में चार सन्ध्यक्षरों के द्वारा सुषुप्त्यात्मक प्रमाण पद का, इसके ग्राहकत्व रूप के कारण, भेद, अभेद एवं मिश्र प्रमातृ-संसार के विलास का दिग्दर्शन कराते हैं।

अन्तः एवं बहि इन्द्रियों के क्रमिक उन्मेष के कारण जो स्वप्नात्मक एवं जाग्रदात्मक द्विरूप जड-संसरण (अर्थात् परिमित प्रमातृ संसरण) होता है, वह कर्म है जिसका अवबोध ए, ऐ वर्णद्वय के द्वारा होता है। द्विरूप जड-संसरणात्मक कर्म के कर्ता स्वप्न-प्रमाता एवं जाग्रत-प्रमाता हैं जिनका प्रतिपादन पांच अदीर्घ एवं पांच दीर्घ स्वरों के द्वारा किया गया है। जड प्रमाता के पदद्वय के अवबोधक के रूप में ए ऐ, वर्णों की स्थिति है। सूत्र में कथित स्वरेषु पद में अधिकरण सप्तमी का प्रयोग है जिससे तात्पर्य है कि ह्रस्व-स्वर रूप अधिकरण में येकार स्वप्न रूप अन्तः संसार का अवबोधक है, एवं दीर्घ स्वर रूप अधिकरण में यैकार के द्वारा जाग्रदात्मक बहिः संसार का बोध होता है।

उक्त प्रकार से ए, ऐ के स्वरूप का बोध होने से स्पष्ट होता है कि एकमात्रिक एवं द्विमात्रिक अकार द्वारा अवबोधित अन्तः एवं बहिः रूप जड (अर्थात् विसर्गात्मक) प्रमाता की स्वेच्छा से अन्तः वहिः उभय पदों में जडात्मक संसरण के बोधक एक मात्रिक एवं द्विमात्रिक 'ए' के स्वरूप का संघट्टन होता है। निष्कर्ष यह है कि अकार द्वारा अवबोधित विन्दु एवं विसर्गात्मक उभय प्रमाता की इच्छा का द्योतक इकार है, अतएव अ एवं इ के संघट्टन से ए कार की निष्पत्ति एवं अकार इकार की द्वितीय मात्रा के योग से ऐ कार की निष्पत्ति होती है।

उपरि प्रतिपादित विषय का सार रूप में निरूपण करते हैं। स्पर्श वर्ग एवं व्यापक वर्ग द्वारा अवबोधित जाग्रदात्मक एवं स्वप्नात्मक संसरण द्वय के प्रत्येक पद के अन्तर्गत प्रथमतः प्रमेय कक्षा को, मध्यतः प्रमाण कक्षा को तथा अन्तः प्रमातृ कक्षा को उपलक्षित किया गया है। (इस सम्बन्ध में बत्तीस एवं तेतीस सूत्रों की टीका महत्त्वपूर्ण है।) कार्यात्मिका जाग्रत् एवं स्वप्न दशाओं की कारणदशा सुषुप्ति है। कार्य एवं कारण एक रूप होता है अतएव इस सिद्धान्त के अनुसार कारणभूत सुषुप्ति पद में भी उपर्युक्त प्रकार से प्रमेय आदि कक्षाओं का क्रमशः निरूपण आवश्यक है। इस कारण अदीर्घ एवं दीर्घ दश स्वर वर्णों अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ एवं आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ के द्वारा सुषुप्ति के अन्तर्गत प्रथम प्रमेयात्मक कक्षा को उपलक्षित किया है तथा ए, ऐ, ओ, औ चार सन्धि अक्षरों के द्वारा प्रमाण कक्षा को एवं विन्दु-विसर्ग के द्वारा प्रमातृ-कक्षा को उपलक्षित किया है।

सुषुप्ति पद में उपर्युक्त प्रकार से प्रमेय आदि के व्यवस्थापन से स्पष्ट होता है कि प्रमेय कक्षा जडात्मक विश्रान्ति पद, प्रमातृ कक्षा अजडात्मक विश्रान्ति पद, एवं प्रमाण कक्षा जडाजडात्मक संसार पद है। जडाजडात्मक संसार पद की विश्रान्ति का मूल होने के कारण, विश्रान्ति रूप प्रमेय पद के अन्तर्गत संसार वासना अर्थात् स्वप्नात्मक एवं जाग्रदात्मक प्रमाता-द्वय की इच्छाओं की स्थिति है जिसका पूर्व कथित चार सूत्रों के द्वारा प्रतिपादन किया गया है। वर्तमान सूत्र में सन्ध्यक्षर रूप प्रमाण पद के अन्तर्गत ए, ऐ वर्णद्वय के द्वारा जड-प्रमाता के अन्तः एवं बाह्य संसरणों का प्रतिपादन किया है।

प्रमेय एवं प्रमाता का मिश्र रूप प्रमाण पद है। सन्ध्यक्षर प्रमाण पद के अवबोधक हैं अतएव प्रमाणत्व की मिश्र रूपता के यथारूप अवबोधन के हेतु सन्धि अक्षरों का स्वरूप दो दो वर्णों के योग से सम्पादित है।

विश्रान्ति पद होने के कारण सुषुप्ति के अन्तर्गत संसार की उपपत्ति इच्छा मात्र है। बिन्दु रूप अकार की विसर्गात्मिका इच्छा के अन्तर्गत इकार, ऋकार, लृकार एवं (विसर्ग का आश्रय भूत) अकार रूप संसार लयावस्था में स्थित रहता है। इस प्रकार निरूपित विसर्गात्मिका इच्छा योग के कारण विसर्ग में चित् पद की ग्राहकता का प्रतिपादन किया गया है।

एकार में ग्राह्य एवं ग्राहक उभयरूपता है। इसी प्रकार ऐकार में भी उभय रूपता की योजना है। स्वप्न-प्रमाता की बहिर्मुखता ही जाग्रत्प्रमातृत्व है अर्थात् बहिर्मुख स्वप्न प्रमाता को ही जाग्रत्प्रमाता के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस प्रकार प्रमाता द्वय के स्वरूप के निर्धारण से अवगत होता है कि एकार ही अकार एवं इकार की द्वितीय मात्रा के योग से सन्धिवश ऐकार रूप हो जाता है। (अर्थात् स्वप्न-प्रमाता का अवबोधक एकार ही जाग्रत्प्रमाता के अवबोधक ऐकार का रूप ग्रहण करता है।) आकार एवं ईकार के योग से ऐकार के स्वरूप की निष्पत्ति नहीं होती है। इस कारण सन्धिवश ही ऐकारत्व का निरूपण किया गया है। सन्धि अक्षरों के इस प्रकार निरूपण से स्पष्ट है कि स्वप्न की अन्तः सीमा पर्यंत बिन्दु-पद एवं जाग्रत् की बाह्य सीमा पर्यंत विसर्ग-पद सूचित किया गया है।

नवम् सूत्रम्

अन्तर्बहिः करम वृत्तिवशाददीर्घ
दीर्घ स्वरेष्वजड संसरणं द्विरूपम्।
ओ औ इति द्वयमिहोल्लिखति क्रमेण
स्वीयेच्छया द्विरजडस्य पदस्ययोगम्।।९।।

व्याख्या

अत्र जडप्रमातुरन्तबहिः संसाराणामोकारौकारबिधयौ निरूपयति अन्तरित्यादि। अन्तर्बहिःकरण वृत्तिवशात् पूर्ववदन्तरबहिरिन्द्रियोल्लासवशात् द्विरूपमजडसंसरणं अजडप्रमातृ संसारं पूर्ववददीर्घदीर्घ स्वरेषु पदद्वय रूपेषु अधिकरण भूतेषु अजडस्य पदस्य अजडप्रमातुर्बिन्दोरित्यर्थः। स्वीयेच्छया अन्तर्बाह्यकक्ष्ययोः द्विःद्विवारं योगं संघट्टनं कर्म ओ औ इति द्वयं कर्तृ उल्लिखति

सूचयति। अकारात्मनो बिन्दोः ह्रस्वस्वरेषु स्वीयेच्छया उकारेण अन्तः पद एव योगः तस्यैव बहिः पदे दीर्घ स्वरेषु पद भूतेषु द्वितीयमात्रायुक्तया उकार रूपया इच्छया द्वितीय मात्रा युक्तस्यैक बारं योग इति। तद्योग निष्पन्न स्वरूपा ओकारौकारान्तं योगौ सूचयतः इति तात्पर्यम्। ओकारौकारयोः प्रत्येकं ग्राह्य ग्राहकोभय रूपत्वादिति विवेकः पूर्ववत्।।९।।

भाषा टीका

सूत्रसार :-

अन्तः एवं बहिः इन्द्रियों की वृत्ति के कारण अदीर्घ एवं दीर्घ स्वरों के अन्तर्गत निरूपित अजड संसरण के दो रूप हैं जिन का बोध ओ, औ वर्णों के द्वारा होता है एवम् यह द्विरूप संसरण स्वकीय इच्छा से होता है।

व्याख्या

अजड-प्रमाता के अन्तः एवं बहिः संसार के विषय के रूप में ओकार एवं औकार का प्रतिपादन इस सूत्र में किया गया है। अन्तः एवं बहिः इन्द्रियों के उन्मेष के कारण, जैसा कि पूर्व सूत्र में निरूपित किया है उसी के अनुसार अधिकरण-भूत अदीर्घ एवं दीर्घ स्वरों के द्वारा निरूपित पदद्वय में विन्दुरूप अजड-प्रमाता का संसरण दो रूपों में स्वकीय इच्छा से होता है। अन्तः एवं बहिः कक्षा-द्वय में संघट्टित यह संसरण कर्म है जिसके अवबोधक ओ एवं औ वर्ण-द्वय के अवबोधक ओ एवं औ वर्ण हैं। अकारात्मक बिन्दु का ह्रस्व स्वरों के अन्तर्गत स्वकीय इच्छा रूप उकार के द्वारा अन्तः पद का योग निरूपित है। इसके बाह्य पद में दीर्घ स्वरों के अन्तर्गत पदभूती द्वितीय मात्रा की युक्ति से अर्थात् द्वितीय मात्रा से युक्त उकार रूप इच्छा से एक बार योग होता है। इस प्रकार ओकार में एक मात्रा का योग करने से औकार प्रत्येक का संघट्टन होता है अतः ग्राह्य एवं ग्राहक उभय रूपों में ओकार एवं औकार प्रत्येक का निरूपण किया गया है।

दशमं सूत्रम्

भेदेऽपि बिन्दुरबिभेदपदे विसर्गो
ज्ञानक्रियास्थलतयान्तर बाह्यसीम्नोः।
दृष्टाविहप्रकरणस्य बलात्स्वभावम्
नैवाप्नुतः स्फुटमभेद बिभेद रूपम्।।१०।।

व्याख्या

ननु बिन्दुरभेदरूपः विसर्गो भेद रूपः कथं भेद प्रमातुरन्तः पदे स्वप्ने बिन्दुत्वम्। अभेद प्रमातुर्बहिः पदे तुरीय जाग्रति विसर्गमित्यत्राह भेदेऽपीति। भेद संसारे बिन्दुः ह्रस्व स्वर वर्गाधिष्ठाता अविभेद पदे अभेद संसारे विसर्गः दीर्घस्वर वर्णाधिष्ठाता च आन्तरबाह्य सीम्नो भेद स्वप्ने तुर्यजाग्रति च ज्ञानक्रिया स्थलतया अन्तः पदस्य ज्ञानस्थलतया बहिः पदस्य क्रिया स्थलतया दृष्टौलक्षितौ एकरौकार रूपेणेत्यर्थः एतौ बिन्दु विसर्गौ प्रकरणस्य बलाद् भेदाभेद रूपस्य प्रकरणस्य बलाद्। अभेद विभेद रूपं स्वभावं बिन्दोरविभेद रूप स्वभावः विसर्गस्य बलाद्। अभेद विभेद रूपं स्वभावं बिन्दोरविभेद रूप स्वभावः विसर्गस्य विभेद रुपः तं स्वभावं स्फुटमभिव्यक्तं तथा यथा नैवाप्नुतः स्फुटस्यैव स्वभावस्य नैवाप्नुत इति निषेधात्। किञ्चित् स्वभावे प्राप्नुतएवेति गम्यते। अयमर्थः भेद स्वप्नपदे निविष्टो बिन्दुः भेद प्रकरणबलाद–भेदरूपं स्वभावं नस्फुटमाप्नोति किञ्चिदाप्नोत्येव शुद्ध भेदपदाज्जाग्रतः स्वप्ने अविभेदः स्पर्शवशात् विशेषः। एवं तुरीय जागृति निविष्टो विसर्गोऽपि अभेद प्रकरणबलात् भेद रूपं स्वभावं स्फुटं नाप्नोति। किंचित् तु आप्नोत्येव। शुद्धाभेदरूपात् तुरीयस्वप्न पदात् तुर्य जाग्रतो भेद स्पृष्टि वशाद्विशेषोऽस्त्येवेति मन्तव्यम्।।१०।।

भाषा टीका

अन्वय – भेदेऽपि विन्दु एवं अभेदपदे विसर्ग, आन्तर एवं बाह्य सीम्नोः ज्ञान-क्रिया स्थलतया दृष्टौ (एतौ बिन्दु विसर्गो) प्रकरणस्य बलात् (अविभेद-विभेद) तं स्वरूपं नैवाप्नुत।

सूत्रसार -

भेद पद में बिन्दु एवं अभेद पद में विसर्ग, आन्तर एवं बाह्य सीमा के अन्तर्गत ज्ञान तथा क्रिया के रूप में लक्षित हैं। यह विसर्ग एव बिन्दु, अविभेद-विभेद रूप प्रकरण के बल के कारण, अपने मूल अभेदात्मक एवं भेदात्मक स्वभाव को प्राप्त नहीं होते हैं।

व्याख्या

उपर्युक्त दो सूत्रों में जड एवं अजड प्रत्येक का स्वप्न एवं जाग्रत् दो रूपों में संसरण दर्शाया गया है। यद्यपि बिन्दु अभेद रूप है तथापि भेद-प्रमाता के अन्तः पद में अर्थात् स्वप्न-पद में बिन्दुत्व का प्रतिपादन किया है। इसी प्रकार विसर्ग यद्यपि भेद पद है तथापि अभेद-प्रमाता के बाह्य पद अर्थात् तुर्य-जाग्रत् पद में विसर्गत्व का प्रतिपादन किया गया है। यह शङ्का का विषय हो जाता है जिसका निराकरण करते हैं।

अ, इ, उ, ऋ, लृ पांच स्व ह्रस्वर वर्ग का अधिष्ठाता बिन्दु तथा 'आ' आदि पञ्च दीर्घ स्वर वर्ग का अधिष्ठाता विसर्ग है। इस प्रकार अधिष्ठाता के रूप में प्रतिपादित विन्दु एवं विसर्ग क्रमशः भेदात्मक एवं अभेदात्मक संसरण की आन्तर एवं बाह्य सीमा के अन्तर्गत ज्ञान एवं क्रिया के रूप में लक्षित हैं, अर्थात् भेद प्रमाता की आन्तर सीमा भेदात्मक स्वप्न पद में ज्ञान के रूप में विन्दु तथा बाह्य सीमा अर्थात् तुर्य-जाग्रत् पद में विसर्ग क्रिया के रूप में लक्षित है। विन्दु एवं विसर्ग का स्वाभाविक रूप, अर्थात् विन्दु का अभेदात्मक रूप एवं विसर्ग का भेदात्मक रूप, भेद एवं अभेद रूप प्रकरण के बल के कारण स्फुट रूप में अभिव्यक्त नहीं होता है अर्थात् केवल किञ्चित् अभिव्यक्ति होती है।

तात्पर्य यह कि भेदात्मक स्वप्न पद के अन्तर्गत निविष्ट विन्दु में भेदात्मक प्रकरण के बल से अभेद रूप स्वभाव की स्फुट अभिव्यक्ति नहीं होती है। अपितु किञ्चित् मात्र स्वभाव अभिलक्षित होता है। शुद्ध भेदात्मक-जाग्रत् की तुलना में भेदात्मक-स्वप्न के अन्तर्गत अविभेद का स्पर्श मात्र विशेष है। इसी प्रकार तुर्य-जाग्रत् में निविष्ट विसर्ग भी अभेद प्रकरण के प्रभाव से अपने भेदात्मक स्वभाव को पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं करता है। शुद्ध अभेदात्मक तुरीय-स्वप्न पद की अपेक्षा तुर्य-जाग्रत् में भेद-स्पृष्टि के कारण कुछ विशेषता है (अर्थात्

तुर्य-जाग्रत् में पूर्ण रूप से अभेद की अभिव्यक्ति नहीं होती है जाग्रत् की गन्ध शेष रहती है)

एकादशं सूत्रम्

बिन्दुः कला अपि विसर्ग कला गुणाः स्युः
सर्गः कला अपि च बिन्दुकलाङ्गभूता।
बिन्द्वग्निरष्टकलयेव विसर्ग पायी
सर्गस्तु षोडशकलो दृढबिन्दुरिन्दुः।।११।।

व्याख्या

अथ अस्मिन् सुषुप्तिपदे बिन्दुविसर्गयोस्तत्कलाश्च अन्योन्य शिलष्टतयाऽङ्गाङ्गिभावः समान इति प्रतिपादयन् बिन्दु विसर्गयोः बिम्बस्वरूपं व्युत्पादयति बिन्दुरित्यादि। बिन्दुस्तत्कला अपि विसर्गस्य तत्कलानाञ्च गुणाः अङ्गानि स्युः। विसर्ग व्याप्त्यभिमाने सतीति वेदितव्यम्। अथ सर्गौ विसर्गः तत्कला अपि बिन्दोस्तत्कलानां चाङ्गभूता भवतीति बिन्दुव्याप्त्यभिमाने सतीति वेदितव्यम्। अथ बिन्दोः कतिकलाः विसर्गस्य कतीत्यत्राह। बिन्द्वग्नीत्यादि बिन्द्वग्निः अग्निरूपो बिन्दुः अष्ट कला एव ह्रस्वस्वराः पञ्च एकारौकारौ द्वे अं इति स्व स्वरूपमेका कलेति सम्भूय बिन्दोरष्टौकला बिन्दोरङ्गभूता विसर्गकला अष्टौ सन्ति। तथा च कथं बिन्दोरष्ट कलस्यमित्यत्राह। विसर्गपायीति। विसर्ग चन्द्ररूपं पिबतीति चन्द्रपायी। बिन्द्वग्निः बिन्द्वावग्नौ कला सहितो विसर्ग एकाकारतां भजतीति बिन्दोरष्टावेव कलारित्यर्थः दृढबिन्दुः स्वव्याप्तावपि अनुच्छिन्नबिन्दुः। तदुच्छेदे विसर्गस्वरूपस्यैक्य सिद्धेः। इन्दुश्चन्द्ररूपो विसर्गस्तु षोडशकलोऽङ्ग भूताभिबिन्दुकलाभिः सह दीर्घस्वर पञ्चक एकारौकार अःकाररूप विसर्ग कला षोडशेति योजना।।११।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

बिन्दु एवं बिन्दु की कलायें, विसर्ग एवं विसर्ग की कलाओं के अङ्ग हैं। इसी प्रकार विसर्ग की कलायें बिन्दु एवं बिन्दु की कलाओं के अङ्ग हैं।

अग्नि रूप बिन्दु, विसर्ग का शोषण कर लेता हैं, अतएव इसकी केवल आठ कलायें हैं। विसर्ग की सोलह कलाएं हैं, तथा विसर्ग इन्दु का स्वरूप है। अग्नि रूप बिन्दु को दृढ अर्थात् अनुच्छिन्न बिन्दु कहा गया है।

व्याख्या

सुषुप्ति-पद में बिन्दु एवं विसर्ग तथा उनकी कलाओं का, अन्योन्य शिलष्टता के कारण, समान रूप में अङ्गाङ्गिभाव है। इस का प्रतिपादन करते हुए बिन्दु एवं विसर्ग के विम्ब के स्वरूप का निरूपण करते हैं।

विसर्ग-व्याप्ति के अभिमान के अन्तर्गत बिन्दु एवं बिन्दु की कलायें विसर्ग एवं विसर्ग की कलाओं के अङ्ग हैं। इसी प्रकार बिन्दु-व्याप्ति के अभिमान के अन्तर्गत विसर्ग तथा विसर्ग की कलायें बिन्दु एवम् बिन्दु की कलाओं के अङ्ग हैं।

अग्नि रूप बिन्दु की आठ कलायें हैं। अ, इ, उ, ऋ, लृ पञ्च ह्रस्व-स्वर, अं के सहित बिन्दु की आठ कलायें हैं, तथा यहाँ विसर्ग की आठ कलायें बिन्दु की अङ्ग हैं। यहाँ शङ्का होती है कि बिन्दु के अन्तर्गत बिन्दु की आठ तथा विसर्ग की आठ कलाओं के सहित सोलह कलाओं का निरूपण करना उचित है: किन्तु सूत्रकार ने बिन्दु को अग्नि रूप प्रतिपादित किया है जिसके कारण बिन्दु विसर्गपायी है अर्थात् बिन्दु के द्वारा विसर्ग का शोषण हो जाता है अत: विसर्ग की कलाओं का बिन्दु के अन्तर्गत पृथक अस्तित्व नहीं रहता है। अतएव बिन्दु की कलाओं की संख्या केवल आठ ही है। बिन्दु के अन्तर्गत विसर्ग की कलाओं का पूर्ण लय हो जाता है। कलाओं की एकाकारता का यह स्वरूप दृढ़ बिन्दु अर्थात् अनुच्छिन्न बिन्दु की व्याप्ति के अन्तर्गत कहा गया है।

इन्दु रूप विसर्ग की सोलह कलायें हैं। विसर्ग के अन्तर्गत बिन्दु का लोप नहीं होता है अपितु पृथक रूप से बिन्दु विसर्ग के अन्त:में व्याप्त रहता है अतएव विसर्ग के अन्तर्गत विसर्ग की आठ एवं बिन्दु की आठ-एकत्र सोलह कलायें निरूपित की गई हैं। आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ दीर्घस्वर पञ्चक, ऐकार, औकार एवं अ: एकत्र आठ कलायें विसर्ग की हैं।

बिन्दु की आठ कलाओं का निरूपण ऊपर किया जा चुका है। इस प्रकार बिन्दु एवं विसर्ग की कलाओं की एकत्र संख्या सोलह नियोजित है।

द्वादशं सूत्रम्

बिन्दोः कला अपि विसर्ग कलाश्च सप्त
सप्तैतदन्वयवशेन चतुर्दशारम्।
बिन्द्वग्निरष्टदल पद्मगतस्तदन्तः
सर्गश्च षोडशकलाब्ज गतोऽस्यचान्तः॥१२॥

व्याख्या

इदानीं बिन्दु विसर्गयोस्तत्कलानांच अन्योन्य श्लेषं महायन्त्रस्य सुषुप्तिपदे चतुर्दशारचक्रे समुपदर्शयति बिन्दोरित्यादि। बिन्दोः कला अपि सप्त। विसर्ग कलाश्च सप्त। उभय अवयविकलां विनेति विज्ञेयम्। एतत् सप्तकद्वयस्यान्वय वशेन श्लेषवशेन चतुर्दशारं सम्पद्यत इति शेषः। तदन्त तस्य चतुर्दश कोणस्यान्तः प्रागोपदिष्ट सुप्तिविभावना मर्यादया बिन्द्वग्निरष्टदलपद्म गतः। अस्य च अष्टदल पद्मरूपबिम्बस्य बिन्दोरन्तर्विसर्गश्च षोडश दलाब्जगतः। अत्रापि प्राक्प्रतिपादित प्रक्रियानुसन्धेया।।१२।।

भाषा टीका

व्याख्या

महायन्त्र श्रीचक्र के अङ्गभूत एवं सुषुप्ति-पद के अवबोधक चतुर्दशार चक्र के अन्तर्गत बिन्दु-विसर्ग एवं उनकी कलाओं के अन्योन्य श्लेष को इस सूत्र के द्वारा दर्शाया गया है।

अवयवी कलाओं के बिना अर्थात् अं, अः के बिना बिन्दु की सात कलायें तथा विसर्ग की सात कलायें शेष रह जाती हैं। इस सप्तक द्वय के श्लेष के वश चतुर्दशार का सम्पादन होता है। सुषुप्ति की विभावना की पूर्व प्रतिपादित मर्यादा के अनुसार चतुर्दश कोण के अन्तर्गत अग्नि रूप बिन्दु के द्योतक अष्ट-दल पद्म का चित्रण है। इस अष्ट-दल पद्म रूप विम्ब के बिन्दु के अन्तः में विसर्ग स्थित है जिसका बोध षोडश-दल पद्म से होता है। यहाँ भी पूर्व प्रतिपादित प्रक्रिया का अनुसन्धान करना चाहिये।

त्रयोदशं सूत्रम्

ह्रस्वस्वराष्टदल भागनलो हि दीर्घ-
मात्रात्म षोडशदलाम्बुज भाक्छसाङ्कः।
चन्द्रार्कयोस्त्रिगुणिताष्ट कलात्मनोस्या-
बिन्दौ प्लुताष्टक दलात्मनियुक्तिरग्निः।।१३।।

इति श्री मातृकाचक्र-विवेके सुषुप्ति-विवेको द्वितीयःखण्डः।

व्याख्या

इदानीं प्रकारान्तरेण बिन्दुकला विविक्ता एवं विसर्गस्य षोडशदलान् समुपदर्शयन् बिन्दु विसर्गस्य तत्सामरस्यरूपं पदत्रयं स्वरवर्गे समुपदर्शयति ह्रस्वेत्यादि। अनलोबिन्दुः ह्रस्वस्वर रूपाष्टदलपद्मबिम्बगतः स्यात् शशाङ्को विसर्गः दीर्घमात्रात्मषोडशदलाम्बुजभाक्। अष्टसु दीर्घस्वरेषु या मात्रा षोडशतदात्मक षोडश दलाम्बुजबिम्ब संश्रित इत्यर्थः। प्रतिवर्णं द्विमातृतया षोडशमात्रा सम्पन्नेषु दीर्घस्वर वर्णेषु यद्यप्यष्टौ मात्रा बिन्दुरूपाः बिन्दुसाहित्येनेव विसर्ग संस्थाननियमात् तथापि बिन्दोर्ह्रस्वस्वर रूप विविक्त विषय संभवात्षोडषमात्रात्मकं दीर्घस्वराष्टकं विसर्गस्य विविक्तो विषयइत्यभिमानः एवं च चन्द्रार्कयोर्विसर्गबिन्दोरभेद पदाधिष्टातुर्बिन्दोरर्कत्व-मप्यनेन सूच्यते अभेदखण्डस्यैकाधिष्ठातृत्वात्। भेद चमत्कार सम्पत्तिरभिहितत्वात् सावशेष जगत्स्वामी कर्णोर्कः। निरवशेष जगत्स्वामीकरणोऽनलः इति। तस्मादभेदबिन्दोरुभयोरपि व्यवहारइतिभावः। तयोर्विसर्गबिन्दुरूपचन्द्रार्कयो-स्त्रिगुणिताष्टकलात्मनोःत्रिगुणिताष्टकलाश्चतुर्विंशतिकलातदात्मनोबिन्दोरष्टौकलाः। विसर्गस्यदीर्घस्वरमात्रारूपाः षोडशकलाः। संभूयोभयोश्चतुर्विंशतिकलाः तद्रूपयोरेतयोः प्लुताष्टकदलात्मनिचतुर्विंशतिमात्रामिरष्टौप्लुताः सम्पद्यन्ते। प्लुतस्यत्रिमातृत्वात्। तस्मिन्महाबिन्दावग्नौभेदाभेदोभयपक्ष व्यापित्वादयंमहा-बिन्दुरग्निरेव। नतु सूर्यव्यवहारस्यापि पदं तस्मिन्नग्नौ तयोश्चन्द्रार्कयोर्युक्तियोगः स्यात्। प्लुतस्य नासान्तर नादत्वात्। तदात्मकस्यास्यसामरस्य पदस्य प्रवृत्ति-निवृत्ति स्पन्दभित्तिभूत-निष्पन्दभूतस्य महातत्त्वस्य शाश्वतत्वमित्युपदिष्टम्।।१३।।

भाषा टीका

सूत्रसार :-

अनल ह्रस्व-स्वर रूप अष्ट-दल-पद्म में चित्रित है। दीर्घ मात्रात्मक षोडश-दल-पद्म का चित्रण शशाङ्क की प्रतिकृति है। इस प्रकार चन्द्र एवं अर्क की कलाओं की संख्या अष्टकलात्मक बिन्दु की कलाओं की संख्या से त्रिगुणित हो जाती है। (ऐसी दशा में) अग्नि रूप बिन्दु का स्वरूप प्लुतात्मक अष्ट-दशा के द्वारा निरूपित किया जाता है।

व्याख्या

बिन्दु का जिस प्रकार गत सूत्र में निरूपण किया गया है, इस सूत्र में सूत्रकार ने उससे भिन्न रूप में बिन्दु के स्वरूप का निर्धारण किया है।

गत सूत्र में षोडश दल का सम्यक् निरूपण किया गया है। इस सूत्र में स्वर वर्ग के अन्तर्गत बिन्दु, विसर्ग एवं इनके सामरस्य रूप पद त्रय का निरूपण किया जाता है।

श्रीचक्र में चित्रित ह्रस्व-स्वर रूप अष्ट-दल-पद्म के विम्ब के अन्तर्गत अनल अर्थात् बिन्दु निर्दिष्ट है। तथा दीर्घ मात्रात्मक षोडश-दल-पद्म के अन्तर्गत शशाङ्क अर्थात् विसर्ग का निर्देशन किया गया है। आठ दीर्घ स्वरों (अर्थात् आ, ई, अं, अः) में सोलह मात्राओं का योग है। प्रत्येक वर्ण में दो मात्राएँ हैं (जैसे अ + अ = आ) इस प्रकार प्रतिवर्ण में दो मात्राओं के योग से सम्पादित षोडश मात्रात्मक दीर्घ स्वरों में यद्यपि आठ मात्राऐं बिन्दु रूप हैं, जिनका बिन्दु के साहित्य से ही विसर्ग के अन्तर्गत समावेश है, तथापि पृथक् से ह्रस्व-स्वरों के रूप में बिन्दु के विषय का निर्देशन है अतएव ऐसा अभिमान (प्रतीत) होता है कि षोडश मात्रात्मक दीर्घस्वराष्टक विसर्ग का पृथक विषय है। उपर्युक्त प्रकार से बिन्दु एवं विसर्ग के विषयों का पृथक निर्देश होने के कारण यह स्पष्ट होता है कि विसर्ग एवं बिन्दु ही चन्द्र एवं अर्क है। बिन्दु ही अभेद पद का अधिष्ठाता होता है अतः यहाँ बिन्दु का अभेद पद के अधिष्ठाता के रूप में निर्देश किया गया है।

अर्क को भेदात्मक चमत्कार की सम्पत्ति निरूपित किया जाता है अतः यह सावशेष जगत् का स्वामी है तथा निरवशेष जगत् का स्वामी अनल है, इस कारण अभेद पदात्मक बिन्दु का सावशेष एवं निरवशेष उभय रूपों में व्यवहार किया गया है।

विसर्ग एवं बिन्दु रूप चन्द्रार्क की कलाओं का योग चौबीस है। यह संख्या अष्ट-कलात्मक अनल संख्या की तीन गुना है। प्लुत में तीन मात्राएं होती हैं, अत: चन्द्रार्क की चौबीस मात्राओं को तीन से विभाजित करने से इसके अन्तर्गत प्लुतों की संख्या आठ निर्धारित होती है। तात्पर्य यह कि त्रिगुणित अष्ट कलात्मक अनल का वास्तविक रूप अष्ट प्लुतात्मक है जिसको महाबिन्दु कहा गया है। भेदाभेदात्मक उभय पक्षों में व्यापी होने के कारण यह महाबिन्दु ही अग्नि है। इसका व्यवहार केवल सूर्य नाम से नहीं किया जा सकता है। अपितु चन्द्रार्क का यह युक्ति योग अग्नि के अन्तर्गत है।

नासिका के अन्तर्गत नाद को प्लुत कहा है। अत: विसर्ग एवं बिन्दु का नाद रूप प्लुतात्मक सामरस्य पद प्रवृत्ति एवं निवृत्ति रूप स्पन्द का आश्रयभूत निष्पन्दात्मक महातत्त्व है, जिसको शाश्वत तत्त्व के रूप में उपदिष्ट किया है।

विशेष

अविभेद विभेद मिश्रणैस्त्रिभिरङ्गैर्घटितैकभूर्तिका
हृदयेषु विभाति शाङ्करी स्वरवर्गार्थमयी महात्मनाम्।

अभेद, भेद एवं भेदाभेद रूप अङ्गों से घटित स्वर वर्ग की अर्थमयी शाङ्करी एक मूर्ति महात्माओं के हृदय में प्रकाशित होती है।

भागद्वय स्फुरित बिन्दु विसर्ग रूपं
तत्सामरस्य पदलक्षक मध्य रेखम्।
आलोच्यमर्थवदनुत्तरवर्ण बिम्बमर्च्यं च
जप्यमपि चाखिल सिद्ध मूलम्।

बिन्दु एवं विसर्ग रूप दो भागों में स्फुरित, मध्य रेखा के रूप में (बिन्दु एवं विसर्ग के) सामरस्य पद की लक्षक, अखिल सिद्धि का मूल, अनुत्तर वर्ण अकार का बिम्बभूत अभेद रूप एक (शाङ्करी) मूर्ति आलोच्य एवं जप्य है।

अन्तः स्फुरिद्विन्दु पदं वहिष्ठात्तद्दूर्ध्वतस्त्वष्ट विसर्ग रूपं।
इकार बिम्बं समुपासनीय मकार बिम्बं च ततो विलोमं।।

अन्त: में बिन्दु पद का स्फुरण होता है, इसके पश्चात् बाह्य में आठ विसर्ग वर्णों का स्फुरण होता है। अत: अनुलोम क्रम से इकार बिम्ब की उपासना प्रथम, तत्पश्चात् विलोम क्रम से अकार की उपासना करनी चाहिये।

टिप्पणी -

इस खण्ड के प्रथम सूत्र में स्पष्ट किया है कि "**माया बलात् प्रथम भासि जड-स्वभावं ...**" सुषुप्ति दशा में चित् एवं अचित् एकरस है तथापि माया वली होने के कारण सुषुप्ति के अचित् स्वरूप के दर्शन प्रथम होते हैं अतः माया के अवबोधक इ (बिम्ब) की उपासना प्रथम कही गई है। तत्पश्चात् चित् स्वरूप के द्योतक अकार बिम्ब की उपासना का विलोम क्रम से विधान है।

मध्ये विमिश्रपदलक्षक पूर्ण बिन्दु-
मूर्द्धे तले च चिदचित्पद खण्ड बिन्दुम्।
ईकार बिम्ब मिन चन्द्रकृशानुरूपम्
श्रीपादुकां पर शिवस्य शिरस्यु शेयात्।।

मध्य में मिश्र पद का लक्षक पूर्ण बिन्दु, ऊर्ध्व में तथा अधः में चित् अचित् पद के द्योतक खण्ड बिन्दु हैं। सूर्य, चन्द्र एवं कृशानु रूप ईकार विम्ब पर शिव की श्रीपादुका है जिसका शिरस्थान में ध्यान करना चाहिये।

नित्या षोडशिकात्मिका स्वर कला नित्य त्रिकोणाकृतिः;
नव्येद्रव्यरसैकदभ्रलहरी साक्षात्कृव्योमभिः।
यः सम्यग्वर्रिवस्यति स्फुरणया तस्याम्बिकानुग्रहे;
गूढोऽप्येष हृदिस्फुरेत् स्वरगणस्यार्थः कृतार्थत्वभूः।।

षोडशिकात्मिका अर्थात् सोलह वर्णों से युक्त स्वर कला नित्य है तथा त्रिकोणाकृति भी नित्य है। नव्य द्रव्य रस के एक्य की लहरी का व्योम में साक्षात्कार होता है। इस लहरी के स्फुरण से जो सम्यक् रिवम्या (पूजा) करता है उसको अम्बिका के अनु-ग्रह से स्वर समूह का गूढ़ अर्थ भी स्फुरित होता है।

शिवानन्देन मुनिना देशिकादेशवर्तिना।
द्वितीये मातृकाचक्र-विवेके व्याकृतं पदे।।

गुरु की कृपा से शिवानन्द मुनि ने मातृकाचक्र-विवेक के द्वितीय खण्ड में इन पदों की रचना की है।

इति श्री स्वतन्त्रानन्दनाथ विरचित मातृकाचक्र-विवेक की शिवानन्द कृत संस्कृत व्याख्या एवं कृष्णानन्द कृत हिन्दी व्याख्या का द्वितीय खण्ड।

द्वितीय खण्डः

श्रीमातृकाचक्र-विवेकः

तृतीय खण्डः

अथ तृतीय खण्डः

प्रथमं सूत्रम्

विश्वस्य कारण दशेति विचारतैवम्
कार्यक्रमो भवति कार्यमिदं विमर्शात्।
विश्रान्तमात्मनि पराह्वयवाचि सुप्तौ
विश्वं वमत्यथ विबोधपदे विमर्शः।।1।।

व्याख्या

अथ स्कन्धान्तरमारभमाणः पूर्वोत्तरस्कन्धयोः सम्बन्ध दर्शनाय पूर्वस्कन्ध तात्पर्याभिधान पूर्वमुत्तरस्कन्ध प्रमेयं प्रस्तौति। विश्वस्य इत्यादि। इत्युक्त प्रकारेण विश्वस्य विश्रान्ति संसाररूपेण कारणकार्यरूपस्य कारणदशा विश्रान्तिरूपा अवस्था निरूपिता विश्रान्ति रूपा सुषुप्तिः कारणरूपं विश्वं, संसाररूपा स्वप्नादयः कार्यरूपं विश्वं, संसाररूपा स्वप्नादयः कार्यरूपं विश्वमिति भावः। एवं कार्यक्रमः। यदा कारणक्रमः तदा कार्यस्यापि क्रमः कारणकार्यमोरेकरूपत्वा-दितिभावः प्रमेयादि कक्ष्यात्रय संपन्नत्वात् जडाजड व्याप्त्यादिः कारणक्रमः। एवमेव कार्यक्रमोऽपि कार्यनिष्ठः प्रमेय कक्ष्यादिक्रमः कार्यक्रमः। इदं कार्यविश्वं विमर्शाद्भवतीति शेषः। इदमीदृगित्यनुसन्धान मूलं वाचकत्वरूपं कार्य विश्वानुसंधानं विमर्शः अतः कार्यरूपस्य विश्वस्य विमर्शमूलत्वम्। अयं विमर्शः सुषुप्तिविश्रान्तौ केन रूपेण स्थितः इत्यत्राह। विश्रान्तमित्यादि। विमर्शः सुप्तौ सुषुप्तिकाले पराह्वयवाचि परेति व्यह्रियमाणायां वाचि। आत्मनि स्वाकारे परावाग्रूपे स्वात्मनीत्यर्थः। विश्रान्तं निलीनं विश्वम्। अथ सुषुप्त्यनन्तरं विबोधपदेऽप्युत्त्थान दशायां वमति बहिरुद्वमति अनेन विश्वस्य विमर्श गर्भ एव स्थितिरुद्दिष्टा। तद्विलास रूपत्वात् विमर्श विळास एव विश्व सविलासः सुप्ति दशायां परावाग्रूपेण विश्रान्ति तत्वलीनेविमर्शे स्वयमपिनिलीनः प्रबोध पदे अन्तर्बाह्येन्द्रियात्मना स्फुटस्वरूपस्य विमर्शस्य गर्भान्निस्सरतीति भावः।।१।।

भाषा टीका

नवीन खण्ड का प्रारम्भ, वर्तमान स्वप्न-स्कन्ध का प्रस्ताव, पूर्व स्कन्ध का तात्पर्य एवं सम्बन्ध इस सूत्र में प्रस्तुत किया गया है।

सूत्रसार -

सुषुप्ति विश्व की कारण-दशा है जिसका विचार द्वितीय खण्ड में किया गया है, इस खण्ड में कार्य-रूप विश्व के क्रम का विचार किया जा रहा है। विमर्श से कार्य-विश्व की उत्पत्ति होती है। व्युत्थान दशा में विमर्श, परावागात्मक सुप्ति के अन्तः में विश्रान्त, विश्व की उत्पत्ति करता है।

व्याख्या

विश्व, विश्रान्ति एवं संसार दो रूपों में प्रवाहित है। विश्रान्ति रूपा सुषुप्ति विश्व की कारण अवस्था है अतएव सुषुप्ति अवस्था में प्रादुर्भूत विश्व को कारणविश्व कहा गया है। स्वप्न आदि अवस्थायें संसरणात्मक हैं अतएव कार्य-रूप हैं। अतः स्वप्न आदि अवस्थाओं में अनुभूत विश्व का कार्यविश्व के नाम से व्यवहार होता है। तात्पर्य यह कि विश्रान्ति रूपा सुषुप्ति से कारण विश्व की तथा संसरणात्मक स्वप्नादि अवस्थाओं से कार्य-विश्व की उत्पत्ति होती है।

सिद्धान्ततः कारण तथा कार्य में एकरूपता होती है अतः कारणगत क्रम के समान ही कार्य-गत क्रम भी निर्धारित है। जडाजड तत्त्व से व्याप्त सुषुप्ति दशा में कारण-विश्व का क्रम प्रमेय आदि तीन कक्षाओं में सम्पन्न है। अतः कार्य-विश्व का क्रम प्रमेय आदि तीन कक्षाओं में सम्पन्न है। अतः कार्य-विश्व के क्रम का सम्पादन भी प्रमेय, प्रमाण एवं प्रमाता रूप तीन कक्षाओं में होना चाहिये। वाणी के रूप में कार्य-विश्व के इदं, ईदृग् एवं इति के अनुसंधान का मूल विमर्श है, अतएव कार्य-विश्व का मूल भी विमर्श सिद्ध होता है। अर्थात् कार्य-रूप विश्व की उत्पत्ति का कारण भी विमर्श ही है। इस सिद्धान्त का समर्थन करने के हेतु प्रथम सुप्त्यात्मक विश्रान्ति में विमर्श की स्थिति का निरूपण करते हैं। सुषुप्ति दशा में विमर्श के अन्तः में परावाणी लीन रहती है, अतएव परावाणी के अन्तः में लीन विश्व भी विमर्श के अन्तर्लीन सिद्ध होता है। इस प्रकार परावाणी के अन्तर्लीन अर्थात् स्वयं के अन्तः में लीन विश्व को विमर्श, सुषुप्ति के पश्चात् व्युत्थान दशा में बाह्य कक्षा में प्रकट करता है। इससे सिद्ध है कि विमर्श के गर्भ में ही विश्व की स्थिति रहती है तथा विमर्श के विलास का

स्वरूप होने के कारण विश्व स्वयं भी विमर्श का विलास सिद्ध हो जाता है। सुषुप्ति दशा में विमर्श का यह विश्व रूप विलास-परावाणी के रूप में विमर्श के अन्तर्गत लीन रहता है जो प्रबोधावस्था में अन्तः एवं बाह्य इन्द्रियों के साधन से विमर्श के गर्भ से बाहर प्रस्फुटित होता है।

द्वितीयं सूत्रम्

वाणीपराखलु ऋकारलृकाररूपा
संकोचगन्ध सहिता गगनेऽपिसुप्तौ।
संकोच एव चिदचिद् गगनस्यवाणी
तद्व्योम सङ्कुचति च प्रकृतौविमर्शे।।२।।

व्याख्या

विमर्श पारावाग्रूपेणसुषुप्तिविश्रान्तौ तिष्ठतीत्युक्तम्। प्रमेयप्रमाणप्रमातृरूपे-अकाराद्युकारान्त विश्रान्तिपदेपरावाचः किं स्थानं कः स्वभावः इत्यत्राह वाणीत्यादि। परावाणी ऋकार लृकाररूपाखलु अनेन परावाग्रूपस्य विमर्शस्यप्रमाणत्वमुक्तम्। व्युत्थानपदेष्वपि विमर्श प्रमाण रूपइतिवेदितव्यम्। प्रमाणरूपाणामिन्द्रियाणां अनुसन्धानरूपत्वादनुसन्धानस्य विमर्शरूपेणपर्य–वसानादिन्द्रियाण्येव विमर्शस्य स्वरूपमितिनिष्कृष्टो विवेकः। ऋकारलृकारात्मनः प्रमाणस्य परावाक्तत्व विमर्शरूपतायामुपपत्यन्तरमासां सङ्कोचयति। गगनेतिसामान्यरूपायामपिसुप्तौ पूर्णस्वभावायामितिभावः। सङ्कोचगन्ध सहिता ऋकार लृकारयोरिकारोकारापेक्षया सङ्कोच भावः प्रतीयते। व्यञ्जनवर्णेष्विव स्थौल्यानुभात्। ननु परा वाचो विमर्शस्य सङ्कोचः स्वभावश्चेत् तदानीं खलु सङ्कोचभावोपलक्षित ऋकार लृकारात्मक प्रमाणत्वोपपत्तिरिति परावाचो विमर्शस्य सङ्कोच स्वभावतामुपपादयति। सङ्कोचेति। चिदचित्गगनस्य चिदचिदचित्सामरस्यरूपस्य गगनस्यविश्रान्तिः सङ्कोच एव। वाणीविमर्शदशायां विश्रान्तस्वभावः पूर्णतयानुभूयते। स एव स्वभावोयथानुसन्धान भूमिकां प्रतिग्रहणाति तथा ग्राह्यग्राहकोभयाभाषात्मकविमर्श रूपेणसङ्कुचति। गगनस्य शब्दाकारेणखलुसङ्कोचः विश्रान्तिरूपस्य गगनस्यशब्दरूपविमर्शानांसङ्कोच इत्युपपन्नम्। ननु पूर्णतयास्थितं तद्विश्रातिगगनं कुतोहेतोविमर्शात्मना सङ्कोचभावं प्राप्नोति इत्यत आह तद्व्योमेति। तद्व्योम विश्रान्ति गगनं विमर्शेप्रकृतौ स्वभावे

सति सङ्कुचति। विमर्शात्मना सङ्कोच भाव परिग्रहोविश्रान्तिः तत्वस्य स्वभावः न कश्चिदप्यत्रहेतुरितिभावः।।२।।

भाषा टीका

सूत्र सार -

पूर्ण सुषुप्ति में भी ऋकार तथा लृकार रूपा परा-वाणी का सङ्कोचमय स्वरूप है। चिदचित् गगन की सङ्कोचावस्था ही वाणी है तथा विमर्श दशा में व्योम अपने ही भाव में स्वयं को संकुचित कर लेता है।

व्याख्या

प्रथम सूत्र में सुषुप्त्यात्मक विश्राम्त अवस्था में विमर्श का स्वरूप परावागात्मक प्रतिपादित किया गया है। अकार से उकार पर्यन्त वर्णों के द्वारा अवबोधित परा-वाणी का स्थान तथा स्वभाव इस सूत्र में निर्धारित किया गया है।

द्वितीय खंड के चतुर्थ सूत्र में ऋकार व लृकार को ज्ञान तथा क्रिया का प्रमाण पद प्रतिपादित किया गया है, तथा इस सूत्र में ऋकार एवं लृकार को परावाणी का स्वरूप कहा गया है। अत: परावागात्मक विमर्श भी स्वत: प्रमाण-पद सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार व्युत्थान दशा में भी इसको प्रमाण रूप स्वीकार करना युक्तियुक्त है।

व्युत्थान दशा में इन्द्रियाँ प्रमाण-स्वरूप हैं अतएव अनुसंधान रूप होने के कारण तथा अनुसंधान का विमर्श के रूप में पर्यवसान होने के कारण इन्द्रियाँ ही विमर्श का स्वरूप हैं: ऐसा निष्कर्ष निकलता है।

परावागात्मक विमर्श रूपता में ऋकार-लृकारात्मक प्रमाण की उपपत्ति में अन्तर है। प्रथम सूक्ष्म है तथा द्वितीय स्थूल है। पूर्ण सुषुप्ति में भी ऋकार तथा लृकार का इकार तथा उकार की अपेक्षा अधिक सङ्कोच प्रतीत होता है। अर्थात् व्यञ्जन वर्णों के समान ही इनकी स्थूलता का अनुभव होता है। अत: परावाची विमर्श का स्वभाव यदि सङ्कोचयुक्त सिद्ध हो जाता है, तब सङ्कोच भाव से उपलक्षित ऋकार-लृकार की प्रमाण रूप में उपपत्ति युक्तियुक्त सिद्ध हो जाती है। अत: परावाची विमर्श के सङ्कोचात्मक स्वभाव को सिद्ध करते हैं।

सामरस्यात्मक चिदचित् गगन के विश्रान्ति एवं सङ्कोच दो स्वरूप हैं।

वागात्मक विमर्श दशा में गगन के विश्रान्ति स्वभाव का पूर्ण अनुभव होता है तथा यही विश्रान्ति-स्वभावात्मक गगन अनुसन्धान के अनुसार भूमिका ग्रहण करता है एवं ग्राह्य-ग्राहक रूप में अवभासित विमर्श के अन्तर्गत स्वयं को सङ्कुचित कर लेता है। अर्थात् विश्रान्ति रूप गगन का शब्द के आकार में सङ्कोच हो जाता हैं। यही मत युक्तियुक्त प्रतीत होता है अब केवल शङ्का शेष रहती है कि गगन के सङ्कोच का कारण क्या है? इसके समाधान में सूत्रकार का कथन है कि विश्रान्ति तत्त्व स्वभावतः विमर्शात्मक सङ्कोचभाव को ग्रहण करता है अन्य कोई कारण नहीं है।

तृतीयं सूत्रम्

धर्मे स्वके स्वरस वाहिनि वाक्स्वरूपे
लग्नं परं गगनमप्युपयाति सत्ताम्।
सत्वाय नित्यमुपगूढ विमर्शतत्वम्
तद्धर्मतां गगनमप्युपयाति चित्रम्।।३।।

व्याख्या

इदानीं कार्यरूप जगद्बीजस्य विमर्शस्य कारणरूप जगद्बीजत्वमपि प्रतिपादयन् महत्वतां व्युत्पादयति धर्म इत्यादि। स्वरस वाहिनि स्वतः एव प्रवहण शीले न त्वन्य प्रेरणया तथात्वे तस्यापि प्रेरकस्य प्रेरण संकल्परूपं विमर्श विना प्रेरणानुपपत्तेः। तस्यापि विमर्शस्य विमर्शान्तरं विनाऽप्रवहणमित्यनवस्थया विमर्शस्य पर्यन्ततया स्वरस वाहित्वमङ्गीकार्यम्। अतः स्वरस वाहिनि वाक्स्वरूपे चिद्धर्म एव च चितो जननलयाच्चेति प्राक्प्रतिपादित मर्यादया धर्मे विमर्शस्वरूपे स्वके धर्मे लग्नं सत् परं गगनमपि चिदचित्सामरस्य रूपं विश्रान्तितत्वमपि सत्तामुपयातीति विमर्शसीमानुप्रवेशाभावात्। नास्त्येव सा चिदपीति प्रागुक्तक्रियया विश्रान्तितत्वस्यापि स्वरूपासिद्धेः। अतः सत्वाय सत्तासिद्धये नित्यं नियतं उपगूढ विमर्शतत्त्वं आलिङ्गितविमर्शतत्वं गगनमपि चिदचित्सामरस्यरूपं विश्रान्ति गगनमपि तद्धर्मतां तस्य विमर्शस्य धर्मतामुपयाति। चित्रं अन्योन्य धर्म धर्मित्वमद्भुतमित्यर्थः। प्राक्प्रतिपादितोऽयमर्थः विमर्शस्य सर्वप्रकारजगन्मूलत्व-प्रवचनप्रस्थाने विमर्शप्रभाव व्युत्पादनायाऽनुस्मृतः इति निरवद्यम्।।३।।

भाषा टीका

कार्य-जगत् का बीजभूत विमर्श कारण-रूप जगत् का भी बीज है; इस सिद्धान्त तथा इसके महत्त्व का प्रतिपादन इस सूत्र में करते हैं।

परम-व्योम का संकोच वाक्तत्त्व के रूप में होता है; अत: परम-व्योम धर्मी तथा वाक्तत्त्व उसका धर्म कहा जाता है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन पहिले कर चुके हैं। अन्वय व्यतिरेक से धर्मी-परम-व्योम की सत्ता से उसके धर्म वाक्-तत्त्वविमर्श की सत्ता की सिद्धि होती है, किन्तु इस सूत्र में इसके विपरीत, वाक्-तत्त्व विमर्श की सत्ता से परमव्योम की सत्ता की सिद्धि की गई हैं। यद्यपि परम-व्योम का धर्म विमर्श है तथापि अपने ही धर्म स्वरस-प्रवाही-विमर्श, के अन्तर्गत नित्य संलग्न रहने से ही व्योम की सत्ता का ज्ञान होता है। यदि विमर्श क्रिया की नित्य सत्ता स्वीकार न की जावे तब परम-व्योम की सत्ता का ज्ञान सम्भव नहीं है। इस प्रकार परम-व्योम को प्रकाशित करने के कारण विमर्श धर्मी बन जाता है तथा व्योम उसका धर्म हो जाता है। अर्थात् परमव्योम एवं विमर्श में अन्योन्य धर्म-धर्मी सम्बन्ध स्थापित है। यही परम आश्चर्य है।

विमर्श को स्वर-प्रवाही इसलिये कहा गया है कि विमर्श-क्रिया का प्रवाह स्वत: होता है अन्य किसी की प्रेरणा से नहीं। यदि किसी अन्य प्रेरणात्मक तत्त्व को स्वीकार किया जावे तब अनवस्था दोष उत्पन्न हो जाता है।

चित् का अचित् में तथा अचित् का चित् में सतत प्रवाह होता रहता है। चित् का विकसित रूप अचित् है अत: अचित् में चित् की सदैव व्याप्ति होने से चित् की सत्ता के बिना अचित् की सत्ता सम्भव नहीं है। अत: अचित् चित् का धर्म है तथा चित् धर्मी है।

इसी प्रकार यदि प्रत्यक्ष रूप से अचित् का दर्शन न हो तब इसके अंतर्गत व्याप्त चित् की सत्ता का भास संभव नहीं है। यहाँ अचित् धर्मी है तथा चित् उसका धर्म है। तात्पर्य यह कि चित् एवं अचित् समान रूप से एक-दूसरे के धर्म तथा धर्मी हैं।

चतुर्थं सूत्रम्

तस्मात्परैव जननी समुपासनीया
व्योम्नः परस्यगतजाड्यमियंहरूपम् ।
बध्नातिचेयमिदमशसमुच्छयेण
जन्तून्विमोचयतिचोन्नमिताऽहमंशात्।।४।।

व्याख्या

अतः सर्वमूलतया विमर्शतत्वमेवोपासनीयमित्याह तस्मादित्यादि। तस्माद्विश्रान्सेरपि मूलत्वात् कारणत्वात् जननी सर्वमूलत्वात् सर्वमातृका परैव विमर्श शक्तिरेव समुपासनीया। एवकारः पर्यालोचितोवाऽस्य निर्णयमभिधत्ते तामेव पर्यालोचनामुद्धाटयति व्योम्नेत्यादि। परस्य व्योम्नः उपास्यत्वेन सम्मानितस्यति भावः। गतजाड्य निर्विमर्शतया सम्भावित जाडयशङ्का व्यपेतं रूपम्। इयं हि खलु परावाक् चेतनरूपतयोपास्यत्बेनाभिमतस्य परम गगनस्य चैतन्यकला स्थानम्। अत एवाव्यक्त चैतन्यादंशात् अभ्यर्हितेतिभावः। अनेन विमर्शस्य प्रकाशैकात्म्यमुपपादितम्। विमर्शस्य परमोपास्यत्व कथनात्तदात्मकस्य प्रमाणतत्वस्व विशेषेणोपास्यन्वमुपपादितम्। अयमर्थो महायन्त्र प्रथमोपासनायोग्यप्रमुखपद चतुरस्त्ररूपस्य प्रमाण चक्रस्य सन्निवेशादभिव्यक्तः। उपास्यत्वेन व्युत्पादितस्य विमर्शस्यैवोपासनाप्रवृत्तिमूलं वन्धमोक्षैककर्तृ प्रतिपादयति बध्नातीत्यादि। इयमेव विमर्शरूपिणी परा इदमंश समुच्छ्रयेण स्वस्वरूपोभयभागयोर्मेदा मेदरूपयो रिदमहमंशयोर्मध्ये इदभ्रंश समुच्छ्रयेण जन्तून् बध्नाति। सर्वत्र वस्तुनि इदमाकार प्रतीतौ देहमात्रेप्यहमाकारप्रतीतौ सैवोच्छितेदन्ता प्रतीति खलु बन्धः। उन्नमिताहमंशाज्जन्तून विमोचयति च इदम्प्रतीत्यन्यथाभावेन सर्वत्राहन्ता प्रतीत्योल्वण्यमेवच मोक्ष इति भावः।

अनयीर्बन्धमोक्षयोर्विमर्शरूपिणी पराशक्तिरेवमूलम्। स्वरसवाहिनी खलुपरा यस्य यस्य हृदये इदन्तौल्वण्येनाहंता न्यग्भावेन प्रवहति स स बद्धो भवति यस्य यस्य हृदये अहन्तौल्वण्येनइदन्ता न्यग्भावेन प्रवहति स स मुक्तो भवतीति भावः।।४।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

अतः परा जननी ही उपासनीय है। परा जननी पर-व्योम का जाड्य रहित रूप है। जब इसके इदं अंश का समुच्छ्रय होता है तब यह बन्धन का हेतु है तथा अब अहं अंश का समुच्छ्रय होता है तब यह जीवों के लिये मोक्ष दातृ है।

व्याख्या

सब का मूल होने के कारण विमर्श तत्त्व को उपासनीय निरूपित करने के हेतु यह सूत्र लिखा गया है। विश्रान्ति का मूल अर्थात् कारण विमर्श शक्ति है, अतः सब की जननी होने से विमर्श शक्ति परा की उपासनीय है। यह निर्णयात्मक मत है।

पर व्योम निर्विमर्श है अतः इसका रूप जाड्य की शंका से व्यपेत अर्थात् परे है। अतएव पर-व्योम की ही उपास्य के रूप में भावना की जानी चाहिये। परा वाक् परम व्योम की चैतन्य कला का स्थान है क्योंकि यह चेतन रूप से उपास्य है। अतः परा वाक् अव्यक्त चैतन्य अंश से अभ्यर्हित है। इस उक्ति से विमर्श का प्रकाश के साथ एकात्मकता का प्रतिपादन किया गया है। विमर्श को परम उपास्य निरूपित करने से तदात्मक प्रमाण तत्त्व का भी विशेषतया उपास्यत्व प्रतिपादित हो जाता है। प्रमाण तत्व की प्रथम पूजनीयता अभिव्यक्त करने के हेतु महायन्त्र श्रीचक्र के अन्तर्गत प्रमाण चक्र रूप चतुरस्र को प्रथम चित्रित किया गया है।

उपास्य रूप में व्युत्पादित विमर्श की उपासना में प्रवृति का मूल कारण इसकी वन्ध एवं मोक्ष कर्तृता है। अर्थात् विमर्श शक्ति ही वन्ध एवं मोक्ष कर्तृ है अतः उपासना में प्रवृति का मूल कारण विमर्श की गन्ध एवं मोक्ष कर्तृ शक्ति है।

विमर्श के स्व स्वरूप के भेदात्मक एवं अभेदात्मक दो अंश हैं जिनका इदं एवं अहं नाम से उल्लेख किया गया है। विमर्श रूपिणी परा शक्ति के इदं अंश का जब उत्कर्ष होता है तब यह प्राणियों के बन्धन की कर्तृ है। सर्वत्र वस्तुओं में इदमाकार की प्रतीति होने पर देह मात्र में अहं की प्रतीति होती है अर्थात् अनात्म देह को ही आत्मा के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस

प्रकार की प्रतीति में इदंता का उच्छ्रय अर्थात् प्राधान्य होता है। यह इदंता प्रतीति ही बन्ध है।

जब अहं अंश उन्नत होता है तब विमर्श रूपिणी परा शक्ति जीव की मोक्ष दातृ होती है। इदंता की जब अन्यथा भाव में प्रतीति होती है तब अहंता प्रतीति की प्रधानता कही जाती है जो मोक्ष अवस्था है। इस प्रकार बन्ध एवं मोक्ष की मूल कारण विमर्शरूपिणी शक्ति है।

जिसके हृदय में इदंता अंश की प्रधानता एवं अहंता भाव की न्यूनता होती है, तब स्वरस प्रवाहिनी परा के प्रवाह को बन्ध कहा जाता है। तथा जिसके हृदय में अहंता की प्रबलता एवं इदंता की न्यूनता का प्रवाह होता है तब उसको मुक्त कहा जाता है।

पञ्चमं सूत्रम्

त्रेधेदमित्यहमिति स्फुरणात्मिकाया-
स्तस्या स्ववूपमुभयांश समाऽसमत्वे।
तद्धर्म संगति वशेन तथा त्रिरूपो
धर्मी च चैत्यचितिमेलनसिद्धरूपः।।५।।

व्याख्या

पूर्व सूत्रेण इदमहमात्मकौ प्रत्ययौ विमर्श रूपिण्याः परायाः स्वरूपे उभौ भागाविति सूचितम् अनेन सूत्रेण तभेबार्थ स्फुटीकरोति। त्रेद्येत्यादि। इदमित्यहमिति यत् स्फुरणद्वयं तदात्मिकाया तस्याः परायाः स्वरूपं त्रेधा भागत्रयविशिष्टत्वादिति भावः। के ते भागाः इत्यत्राह उभयांशेत्यादि इदमित्यहमिति स्फुरणरूपयोरुभयोरशयोः समासत्वेन त्रिधेत्यन्वयः। इदमहमशयोः साम्यमेको भागः तयोरसमत्वे इदमिति स्फुरणोल्वणतायामेको भागः। अहमिति स्फुरणोल्वणतायामन्योभाग इति। तौ द्वौ भागौ समत्वभावेनसम्भूय त्रयो भागाः। अत्रापि जडाजडसाम्यानाभिव भागकरण बिना प्रत्येकं सर्व सन्निविष्टानां समत्वादि स्वरूपाणामंशत्वमुपचारः। एवं धर्मरुपं विमर्शं पर्यालोच्य प्रक्रिया साम्येन प्राक् प्रतिपादितस्यापि धर्मिणस्त्रैरूप्यमनुस्मरति। तत्धर्म संगति वशेन उक्त नवीन त्रिरूपस्य तस्य विमर्शात्मनो धर्मस्य संसर्गवशेन धर्मी

च तथा त्रिरूपः त्रैरूप्योपलक्षितं धर्मिणं प्रदर्शयति चैत्येति। चैत्य चितिमेलन सिद्धरूपः व्याप्ति मताचैत्येन व्याप्तिमत्याचिता तदुभय मेलनेन सिद्धस्वरूपेत्यर्थः इदन्तौल्वण विमर्शसंगतिवशात् व्यापक चैत्यरूपः धर्मी अहन्तोल्वणविमर्शसंगतिवशात् व्यापक चिद्रूपो धर्मी इदन्ताहन्ता साम्येन स्तिमित विमर्श संगतिवशात् चिच्चैत्य साम्यरस्य रूपो धर्मीति विवेकः।।१५।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

इदं एवं अहं रूप में स्फुरणात्मिका परा के तीन भाग हैं। इदं एवं अहं अंश के सम, असम एवं उभयात्मक स्फुरण से यह तीन भागों में विभक्त होता है, धर्म के संगति के वश धर्मी भी तीन रूपों में विभक्त है तथा चैत्य एवं चिति के मेलन से धर्मी के इस रूप की सिद्धि होती है।।५।।

व्याख्या

पूर्व सूत्र में सूचित किया गया है कि विमर्श-रूपिणी परा के स्वरूप में इदमात्मक प्रत्यय एवं अहमात्मक प्रत्यय दो भाग हैं। इस सूत्र में इस भाव को स्पष्ट रूप में प्रतिपादित किया जाता है।

अहं एवं इदं स्फुरण-द्वय-मय परा के तीन रूप है। परा के यह तीन भाग इदं एवं अहं उभय अंशों के सम एवं असम स्फुरण से घटित होते हैं। इदं एवं अहं अंशों के साम्य से एक भाग तथा इदं अंश के असमत्व से दूसरा भाग जिसमें इदं अंश का प्राधान्य होता है तथा तीसरा भाग वह है जिसमें अहं अंश की प्रधानता होती है। इस प्रकार परा के इदं एवं अहं अंश समत्व एवं असमत्व को प्राप्त हो कर त्रेधा विभक्त हो जाते हैं। यहां अंश शब्द का प्रयोग उपचार से किया गया है। वस्तुतः इदं-अहं अंशों से परा के रूप का ही बोध होता है। जिस प्रकार विभागकरण के बिना ही अविभाजित एक जडाजड के साम्य का कथन किया गया है उसी प्रकार अविभाजित समत्व रूप को उपचार से अंश शब्द से निर्वचन किया है।

इस प्रकार धर्मरूप विमर्श की पर्यालोचना करके प्रक्रिया की समानता के कारण प्राक् प्रतिपादित धर्मी को भी तीन रूपों में निरूपित किया जाता है। उक्त त्रिरूप विमर्शात्मिक धर्म के संसर्ग के वश धर्मी भी उसी प्रकार त्रिरूप है।

चित् एवम् चैत्य के मेलन से धर्मी के स्वरूप की सिद्धि होती है। जब धर्मी का इदंताप्रधान विमर्श से संसर्ग होता है तब यह व्यापक चैत्य रूप धर्मी है, अहंता प्रधान विमर्श के संसर्गवश धर्मी का व्यापक चित् रूप होता है तथा अहंता-इदंता के साम्य से स्तिमित विमर्श की संगति (वश) धर्मी चिच्चैत्ये का सामरस्य रूप कहा जाता है।

षष्ठं सूत्रम्

विश्रान्ति धामनि निजाश्रययोर्विमर्श
श्चिच्चैत्ययोर्भवपदे स्वयमाश्रयोऽपि।
एतद्वयं निजसमाश्रयमेव कुर्वन्
स्वैरक्रमेण विलसत्यबहिर्बहिश्च।।६।।

व्याख्या

अथ सूत्रत्रयेण परमशिव भट्टारक स्वातन्त्र्य शक्तेर्विमर्शस्य निराधार विलसन चमत्कारान् प्रदर्शयति। विश्रान्तीत्यादि। विमर्शः कर्ता विश्रान्ति धामनि बिश्रामपदेसुषुप्तावित्यर्थः। निजाश्रययोः चिच्चैत्वयोर्विश्रान्तेः निःशब्दतया विमर्शश्चिच्चैत्ययोराश्रितो लीन इत्युपपन्नम्। भव पदे संसारपदे स्वयमाश्रयो भवपदस्य विकल्पमूलत्वाद्विकल्पस्य विमर्शत्वात्तत्र पदे प्रमात्रादिकः सर्वोप्यर्थो विमर्शमूल एवेति चिच्चैत्योः प्रमात्रोरपि विमर्शाश्रितत्वम्। तथा धर्मिणोरप्याश्रयो विमर्श एतद्वयं चिच्चैत्यरूपं धर्मिद्वयं निजसमाश्रयमेव स्वमाश्रयमेव कुर्वन् अबहिः अन्तः सीमायां बहिश्च बहिः सीमायाञ्च स्वैरक्रमेण बाह्यादभ्यन्तरं वा अभ्यन्तराएद्वाह्यंवेति एवमादिभिः स्वरस प्रबहणक्रमैर्विलसति।।६।।

भाषा टीका

अब तीन सूत्रों में परम शिव भट्टारक की विमर्श नामक स्वातन्त्र्य शक्ति के निराधार विलास अर्थात् चमत्कार का निरूपण किया जाता है।

विमर्श, सुषुप्ति नामक विश्रान्ति पद में, निःशब्द होने के कारण चित्-चैत्य में आश्रित अर्थात् लीन हो जाता है। जब विमर्श का संसार के रूप में प्रवर्तन होता है तब चित् चैत्य का आश्रय विमर्श होता है। इसका कारण

यह है कि संसार पद का मूल विकल्प तथा विकल्प का मूल विमर्श है अतएव संसार पद में प्रमाता आदिक समस्त अर्थों का मूल विमर्श ही है। अतएव चित् चैत्य रूप प्रमाता द्वय का आश्रय विमर्श ही सिद्ध होता है।

इस प्रकार चित् एवं चैत्य रूपी धर्मी द्वय को स्वयं के अन्तः में आश्रित कर विमर्श अन्तः एवं वहिः सीमा में विलास करता है। अर्थात् विमर्श, चित्-चैत्य रूपी धर्मी द्वय का आश्रय बन कर स्वैर क्रम से बाह्य से अभ्यन्तर में तथा अभ्यन्तर से बाह्य जगत् के रूप में स्वच्छन्दता पूर्वक (स्वरस) प्रवाहित होता हैं।

सप्तमं सूत्रम्

स्वप्नेस्फुरत्यबहिरिन्द्रियमूर्तिरन्त-
र्बाह्ये बहिः करणमूर्तिरथप्रबोधे।
संकोचमाश्रयति पूर्वपदेऽत्र
किञ्चिदत्यर्थमुत्तरपदे तु तमादधाति।।७।।

व्याख्या

स्वप्नेत्यादि स्वप्ने अबहिरिन्द्रियमूर्तिर्मनोबुद्धिस्वरूपाः, अन्तरम्यन्तर कक्ष्यायां स्फुरति। जगद्रूपं स्वविलासं दर्शयतीति भावः। स्वप्नशब्दः प्रकृतिसंसारस्याप्युप-लक्षकस्तत्रापि मनोबुद्धिरूपेण विमर्शस्य जगदुद्वमनात्। अथानन्तरं प्रबोधे सुषुप्ति-निवृत्याशुद्धजागद्रूपे प्रबोध बहिः करणमूर्तिः श्रोत्रादि बागादि ज्ञानक्रियेन्द्रिय स्वरूपः। बाह्य बाह्यकक्ष्यायां स्फुरतीति सम्बन्धः। अत्र स्वप्नजाग्रदूपपदद्वये यत्पूर्वपदं स्वप्न स्तत्र किञ्चित्सङ्कोचमाश्रयति। सुषुप्तौ विश्रान्त्यैकरस्येन पूर्णस्य विमर्शस्य तदन्तरपदे स्वप्ने ईषत्संकोचस्तद्वशात् प्रमातृप्रमेयरोरपि तथात्वम्। तमेव जाग्रत्संकोचमाह उत्तरपदेत्विति। उत्तरपदे स्वप्नान्तरपदे जाग्रति अत्यर्थमतिमात्रम् तं सङ्कोचमादधाति अङ्गीकरोति।।७।।

भाषा टीका

व्याख्या

स्वप्न दशा में विमर्श अबहिर-इन्द्रिय अर्थात् मन बुद्धि के रूप में अभ्यन्तर

कक्षा के अन्तर्गत स्फुरित होता है। इसका अर्थ है कि स्वप्न दशा में विमर्श अपने जगद्रूप विलास को अभ्यन्तर में प्रदर्शित करता है। स्वप्न शब्द प्रकृति संसार का भी उपलक्षक है अतएव प्रकृति संसार अवस्था में भी विमर्श से मन एवं बुद्धि के रूप में जगत् का स्फुरण होता है। इसके अनन्तर सुषुप्ति से निवृत्ति होने पर शुद्ध जाग्रत् रूप प्रबोध अवस्था में बहिः करण की मूर्ति श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियों एवं वाक् आदि क्रिया इन्द्रियों के रूप में विमर्श का बाह्य कक्षा में स्फुरण होता है।

यहां स्वप्न पद में विमर्श का किञ्चित सङ्कोच होता है। सुषुप्ति रूप विश्रान्ति में एक रस होने के कारण पूर्णत्व को प्राप्त विमर्श का स्वप्न पद में सङ्कोच हो जाता है। इस कारण, इस अवस्था में स्वप्नात्मक प्रमाता एवं प्रमेय का रूप भी सङ्कोचमय हो जाता है। उत्तर पद अर्थात् जाग्रत् अवस्था में विमर्श का यह ईषत्-सङ्कोचमय रूप पूर्ण सङ्कोच के रूप में परिणत हो जाता है। अर्थात् स्वप्न में ईषत् सङ्कुचित् विमर्श जाग्रत् अवस्था में पूर्ण सङ्कोच को प्राप्त होता है।

अष्टमं सूत्रम्

संकोचवर्तिपरसीमनि वाह्यरङ्गे
व्याप्तिं समर्पयति नान्तर धाम्नि पूर्णे।
विश्रान्तिमर्पयति पूर्णतरामितोऽपि
मायाचमत्कृतिमवाप्य जडो विमर्शः।।८।।

व्याख्या

पशोः संसारपदे विमर्शस्य माया चमत्कार परिग्रहेण विपरीत प्रतीति रूपेण विलसनं दर्शयति। सङ्कोचेति। सङ्कोचवर्ति परसीमनि संकोचभाव परमपदे बाह्यरङ्गे जाग्रत्पदे व्याप्तिं समर्पयति पूर्णतामारोपयति। घटपटादीनां प्रस्फुटं साक्षात्करणेन जाग्रत्प्रकाश एव पूर्णेत्यनुसंधत्ते। पूर्णे जाग्रदयेक्षया पूर्णे सङ्कोचस्येषन्मात्रत्वात् आन्तर धाम्नि आन्तर कक्षायां स्वप्न इत्यर्थः। अत्र व्याप्तिं पूर्णतां न समर्पयति स्वप्नप्रकाशस्य जाग्रत्प्रकाशादल्पत्वमनु संधत्ते। साक्षात्कृतानामपि घटपटादीनां जाग्रदुदये अन्तर्धानात् स्वप्न प्रकाशस्य निष्प्रकाशसुषुप्तिकल्पत्वमेवेति प्रतिपद्यत इत्यर्थः। इतोऽपि स्वप्नात्पूर्णतरामतिपूर्णाम् विश्रान्तिसुषुप्तिमितीऽपि

स्वप्नादल्पमिति सङ्कोचपदं प्रतिपद्यते। कस्यचिदपिघटपटार्दिप्रतिपत्तेरिति भावः। एवं विमर्शस्यविपरीतप्रति भाने निमित्तमाह-मायेत्यादि। मायाचमत्कृतिमवाप्य जड सन् विमर्श एव विपरीत रूपोभवतीव्वर्थः। न क्वचिन् मायाविद्या नाम तत्वम्। विमर्शएवेदन्तौल्वण्येन संभाषमानामायेत्युच्यते स एवाहन्तौल्वण्येन भासमानोविद्येति व्यपदिश्यत इति वेदितव्यम्।।८।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

सङ्कोच की चरम सीमा जाग्रत अवस्था में विमर्श पूर्णत्व को प्राप्त करता है। अन्तर्धाम स्वप्न पद में विमर्श को यह पूर्णत्व प्राप्त नहीं है। माया के चमत्कार के कारण जाग्रत् अवस्था में प्रस्फुटित विमर्श सुषुप्ति में पूर्ण विश्रान्तिमय है।

व्याख्या

इस सूत्र में जीव की संसार दशा के अन्तर्गत माया के चमत्कार के परिग्रहण के कारण विपरीत प्रतीति के रूप में विमर्श का विलास दर्शाया गया है।

सङ्कोच भाव की चरम सीमा जाग्रत अवस्था में विमर्श व्याप्ति अर्थात् पूर्णता को प्राप्त होता है। इस अवस्था में घट-पट आदि बाह्य जगत का प्रस्फुट साक्षात्कार होने के कारण जाग्रत् के अंतर्गत अवस्थित प्रकाश को पूर्ण कहा है। अंतर्धाम अर्थात् स्वप्न अवस्था में विमर्श व्याप्ति अर्थात् पूर्णता को प्राप्त नहीं करता है इस कारण जाग्रत की अपेक्षा स्वप्न में प्रकाश की न्यूनता सिद्ध होती है। जाग्रत् अवस्था का उदय होने पर स्वप्न के अंतर्गत साक्षात् रूप में प्रस्फुटित घट पट आदि अंतर्धान हो जाते हैं। सुषुप्ति की भाँति स्वप्न-प्रकाश की भी निष्प्रकाश कोटि में गणना की जाती है।

विमर्श स्वप्न की अपेक्षा सुषुप्ति में भी पूर्णतर विश्रान्ति को प्राप्त होता है। अर्थात् सुषुप्ति अवस्था में स्वप्न की अपेक्षा विमर्श का अधिक संकोच नहीं होता है। अतएव स्वप्न में प्रकटित घट पट आदि की प्रतीति न होने से सुषुप्ति में विश्रान्ति का पूर्णत्व होता है। तात्पर्य यह कि स्वप्न पद की अपेक्षा जाग्रत में विमर्श के सङ्कोच का पूर्णत्व है जो जड़ विमर्श के बाह्य कक्षा में क्रिया की पूर्णता को प्राप्त करता है। अन्तः सुषुप्ति अवस्था में वही विमर्श विश्रान्ति रूप पूर्णता को समर्पित करता है। जाग्रत एवं सुषुप्ति दो अवस्थाओं के अन्तर्गत विमर्श की इस विपरीत

प्रतीति का कारण माया अथवा विद्या नामक कोई पृथक् तत्त्व नहीं है अपितु जब विमर्श में इदंता का प्राधान्य होता है तब इसको माया नाम से व्यवहृत किया जाता है एवं जब अहंता का प्राधान्य होता है; तब विमर्श को विद्या के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

नवमं सूत्रम्

इच्छाद्वयान्तरित मानयुगे यवर्गे
स्वाप्ने जडाखलुदशा समवेक्षणीया।
मातृत्वमत्रमनसो हि लकारमूर्तेः
स्वप्नो हि मानसिक संसरणं प्रसिद्धं।।९।।

व्याख्या

इदानीमिच्छामात्रसंसारस्य सुषुप्तेरनन्तरं ज्ञानक्रिया संसारयोः स्वप्नजाग्रतोर्मध्ये विसर्गप्रकरणत्वात् क्रियाप्राधान्येन यद्यपि जाग्रतः प्रथमविवेकौचित्यं तथास्योत्पत्ति क्रियासृष्ट्या ज्ञानस्य प्रथमत्वात् ज्ञान संसारस्य स्वप्नस्य प्रथमं विवेकमाचरमाण ईषत्सङ्कोचरूपां स्वप्नदशामीषत्संकोचवतियवर्गे निरूपयति इच्छेति। इच्छाद्वयान्तरित मानयुगे स्वरपदप्रक्रियानुसारेण इकारोकारसङ्कोच रूपयोः इकारवकारयोः जडाजडेच्छात्वम्। तेन इच्छाद्वयेन अन्तरितं मध्ये कृतं मानयुगम्। ऋकार लृकार सङ्कोचरूप रेफ लकरात्मकं क्रियाज्ञानरूपं प्रमाणयुगं यत्र तस्मिन् यवर्गे जडास्वप्नेदशा जीव सम्बन्धिनी भेद स्वप्नदशा समवेक्षणीया खलु यवर्ग स्वप्न दशयोरीषत्सङ्कोच रूपयोः सादृश्ययोगादिति भावः। अत्र स्वप्ने लकारमूर्तेर्मनस एव प्रमातृत्वम्। लकारः खलु ज्ञान प्रमाणस्थानीयः। अन्तः करण संसारे स्वप्ने ज्ञान रूपं प्रमाणम् मन एव नतु श्रोत्रादयो नतु स्वतन्त्राणीन्द्रियाण्येव निजनिजेषु विपयेषु प्रवर्त्तन्त इत्यनुभवः। मनसः किं स्वरूपं वेत्यत आह। श्रोत्रादीनां वहीरूपमान्तररूपं यथा (दा) श्रोत्रादयो बहिर्निमीलिता अन्तः प्रवर्त्तन्ते तथा (दा) श्रोत्रादीनामेव तथान्तरं रूपं मन इत्युच्यते। यदा बहिरुन्मीलिताः प्रवर्त्तन्ते तदानीं श्रोत्रादि व्यवहारति विज्ञेयम्। अन्तः श्रोत्रादीनामन्तः पदे मन इति व्यवहारात्। ज्ञानेन्द्रियस्थानीयो लकारो मन एव एवं कर्मेन्द्रियस्थानीयो रेफो बुद्धिः कर्मेन्द्रियाणामभ्यान्तररूपं बुद्धिरित्यवगन्तव्यम्। स्वप्ने मनस एव प्रमात्रादि त्रिपुटीभाव परिग्रह चमत्कारेण

संसरणं न तु तात्विक देह रूपस्य प्रमातृः तथात्वे स्वप्नानुभूतानामर्थानां जाग्रति सम्पात प्रसक्तेः। अतो मनस एव महाशक्तेर्विमर्शस्य त्रिपुटीरूपेण स्वप्ने विलसनं तस्यैव मनसो बहिरपि श्रोत्रादि रूपस्य विषयाकारेण विलसनमिति जगतो न कुत्रापि बहिरन्तर वा विमर्शांदन्यतः परमाण्वादे सिद्धिरिति गुरुकटाक्ष-निरस्तमायान्धकाराणां सम्प्रतिपन्नम्। स्वप्न संसारस्य तात्विक देह प्रमातृ कर्तृत्वे जाग्रति तत्संपादौचित्यात् तत्संपादस्यादर्शनात् स्वप्नो मनो विलास इति लौकिकस्यापि सम्प्रतिपन्नमिति तदपेक्षया स्वप्न निर्विवादं मनस एव प्रमातृत्वमिति तथोक्तम्। तामेव लौकिक सम्प्रतिपत्तिमुद्घाटयति स्वप्नोहीति।।९।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

य वर्ग के अंतर्गत इच्छाद्वय के मध्य में प्रमाण युगल की स्थिति है। अतएव य वर्ग द्वारा अवबोधित स्वप्न अवस्था जडात्मिका निरूपित की गई है। इस अवस्था में लकार मूर्ति मन प्रमाता है। अतः स्वप्नावस्था मानसिक संसरण के रूप में प्रसिद्ध है।

व्याख्या

इच्छा-मात्र के संसरण की अवस्था सुषुप्ति के अनन्तर एवं ज्ञान-क्रियात्मक स्वप्न-जाग्रत् अवस्थाओं से पूर्व अर्थात् सुषुप्ति एवं स्वप्न-जाग्रत् अवस्थाओं के मध्य में विसर्ग की स्थिति है। विसर्ग नाम क्रिया का है, जाग्रत् में क्रिया की प्रधानता है अतएव यद्यपि जाग्रत् की स्थिति स्वप्न से पूर्व स्वीकार करने में औचित्य है तथापि उत्पत्ति क्रम में ज्ञान की प्राथमिकता कही गई है क्योंकि सुषुप्ति में प्रथम स्वप्न के अन्तर्गत ज्ञान का आविर्भाव होता है तथा क्रियात्मक जाग्रत् का तत्पश्चात् उदय होता है। इस कारण ईषत्-संकोच रूपा स्वप्न दशा का निरूपण ईषत्-संकोचवती य वर्ग के अन्तर्गत किया जाता है।

स्वर वर्ग की प्रक्रिया के अनुसार इकार जड इच्छा का तथा उकार अजड इच्छा का अवबोधक है। इकार का संकोच यकार तथा उकार का संकोच व कार में हो जाता है अतएव संकुचित रूप में यकार जड इच्छा का एवं वकार अजड इच्छा का रूप है। ऋकार एवं लृकार का संकुचित रूप रेफ एवं लकार है। जिनको य वर्ग में यकार एवं वकार के मध्य में दर्शाया गया है। इसका तात्पर्य है कि यकार एवं वकार द्वारा अवबोधित जड एवं अजड इच्छा के

मध्य में ऋकार एवं लृकार के संकोच रूप रेफ एवं लकार द्वारा अवबोधित ज्ञान-क्रिया की स्थिति है। य वर्ग में वर्णों का क्रम य र ल व है ज्ञान-क्रिया के द्योतक र ल वर्णों की स्थिति य एवं व के मध्य है अर्थात् जड एवं अजड प्रमाता की इच्छाओं के मध्य ज्ञान-क्रिया की स्थिति है। य वर्ग एवं स्वप्न उभय का रूप ईषत् संकोच से युक्त है अतः ईषत् संकोच के सादृश्य के कारण य वर्ग को स्वप्न दशा कहा गया है।

स्वप्न अवस्था में लकार का मूर्त स्वरूप मन प्रमाता होता है। लकार ज्ञान-प्रमाण का स्थान है। अन्तःकरण के रूप में संसृत स्वप्न अवस्था के अंतर्गत ज्ञान रूप प्रमाण पद मन ही है न कि श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ। कारण यह है कि मन के अभाव में इन्द्रियों का अपने-अपने विषयों में प्रवर्तन नहीं होता है। यह अनुभव से सिद्ध है।

अब मन के स्वरूप का निरूपण करते हैं। श्रोत्र आदि इन्द्रियों के बहिः एवं अन्तः दो रूप हैं अर्थात इन इन्द्रियों का बाह्य एवं आन्तर दो रूपों में प्रवर्तन होता है। श्रोत्र आदि इन्द्रियों का जब अन्तः में प्रवर्तन होता है तब इनके आन्तर रूप को मन के नाम से व्यवहृत किया जाता है तथा जब बाह्य कक्षा में उन्मीलित होकर इन्द्रियों का बाह्य प्रवर्तन होता है तब इनका श्रोत्र आदि के नाम से व्यवहार होता है।

लकार, जिसका ज्ञानेन्द्रियों के स्थान के रूप में प्रतिपादन किया गया है वह मन ही है। इसी प्रकार कर्मेन्द्रियों के स्थान के रूप में प्रतिपादित रेफ बुद्धि है अर्थात् कर्मेन्द्रियों का आन्तर रूप बुद्धि है।

स्वप्नावस्था में प्रमाता-प्रमाण प्रमेयात्मक त्रिपुटी के परिग्रहण का जो चमत्कार होता है वह मन का संसरण है अर्थात् केवल मानसिक है तथा स्वप्न में उक्त प्रकार से अनुभूत अर्थों का जाग्रत अवस्था में तात्त्विक देहात्मक प्रभाता द्वारा अनुभव नहीं होता है। अतएव स्वप्न के अन्तर्गत विमर्श-शक्ति का त्रिपुटी के रूप में जो विलास होता है वह केवल मानसिक है अर्थात् मन के अन्तर्गत ही है। बाहिर भी श्रोत्र आदि इन्द्रियों के विषयों के आकार में वही मन विलास करता है। इस प्रकार विमर्श से पृथक् परमाणु आदि अन्य किसी तत्त्व से, जगत् की आन्तर अथवा बाह्य स्थिति सिद्ध नहीं होती है। अतः बाह्य एवं अन्तः उभय संसरणों का कारण विमर्श ही है। जिनके हृदय का माया रूपी अन्धकार गुरु के कटाक्ष से निरस्त हो गया है उन महापुरुषों के अनुभव से यह सिद्धांत सम्प्रतिपन्न है।

स्वप्नात्मक संसरण में जिस अनुभूति का सम्पादन होता है तात्त्विक देहात्मक प्रमाता द्वारा अनुभूत जाग्रत् अवस्था में भी उसका संपादन उचित कहा जा सकता है

किन्तु इस प्रकार स्वप्न अनुभूति जाग्रत् में दृष्टिगत नहीं होती है अतः स्वप्न मनोविलास मात्र है ऐसा लौकिक अनुभव से भी सिद्ध है। परिणामतः स्वप्न अवस्था में निर्विवाद रूप से मन का ही प्रमातृत्व सिद्ध है।

दशमं सूत्रम्

स्वस्यैव शक्तिरवमर्शमयी स्वगर्भे
ग्रस्तस्तयैव मनसावपुरादिमूर्त्त्या।
आत्मा स्वरश्मिपटलस्थगितोऽर्यमेव
नाभाति किञ्चिदपि कञ्चुकपञ्चकान्तः।।१०।।

व्याख्या

इदानीं चित्तत्वस्यात्मनः स्वान्तःस्थयैव विमर्श पर्यायया मनः शक्त्या देहाद्यन्तः प्रपञ्च पृथिव्यादि वाह्य प्रपञ्च रूपिण्या संवरणचमत्कारं व्युत्पादयति स्वस्यैवेत्यादि। अवमर्शमयी विमर्श रूपिणी शक्तिः स्वस्यैव स्वसम्बन्धिन्येव अस्या स्थितिरपि स्वगर्भेधर्मत्वात् मनसा मनो रूपिण्या तयैव वपुरादिमूर्त्त्या देहपृथिव्यादि प्रपञ्चभूमिका परिग्राहिण्या ग्रस्तः व्याप्तः। अनेन प्रपञ्चेन अहं कवलित इति विमर्शस्यैव विपरीतप्रतीति चमत्कार भावाद् ग्रसन् चमत्क्रिया विषयः नतु परमार्थतो ग्रस्तः। विद्योदयादनन्तरं स्वरूपपर्यालोचनायांस्वस्य प्रपञ्चेन कवलनं विमर्श चमत्कारमात्रे पर्यवस्यतीति स्वधर्म विलासस्तेन कथं स्वस्यावरणमित्येतदुपमामुखेन समर्थयति स्वरश्मीति। स्वरश्मि पटलेन स्थगितः छन्न अर्यमा सूर्य इव कञ्चुक पञ्चकस्य मनः शक्ति समुन्मिषित परिच्छिन्नसंकल्प रूप वेद्यादि पञ्चाङ्ग पदात्मनः। अतः व्याप्य कक्ष्यायां नाभाति न प्रभाति। यथा सूर्यः स्वरश्मिपटलेनैवाच्छादितो न दृग्विषयबिम्बः तथायमप्यात्मा स्वशक्ति विलासेन। अतेव स्वरश्मि चक्ररूपेण प्रपञ्चेन छन्नोन्तर्हित चिदात्मकमूलरूप इत्युपपन्नमितिभावः।।१०।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

विमर्शरूपिणी शक्ति अपने अंतः में गर्भित मनोरूप शरीर से स्वयं ग्रस्त है।

अतः जिस प्रकार स्वयं के रश्मि पटल से आच्छादित सूर्य का बिम्ब दृष्टिगत नहीं होता है उसी प्रकार पञ्च कञ्चुक से आच्छादित आत्मा का आभास नहीं होता है।

व्याख्या

चित् तत्त्व अपने अन्तः में स्थित विमर्श की पर्यायवाची मनोशक्ति के आवरण से आच्छादित है। देह आदि अन्तः प्रपञ्च एवं पृथिवी आदि बाह्य प्रपञ्च मनोशक्ति का स्वरूप हैं, जिससे चित् तत्त्व आवृत्त है। विमर्श द्वारा चित् तत्त्व के संवरण का यह चमत्कार इस सूत्र में प्रतिपादित है।

विमर्श रूपिणी शक्ति के अन्तः में गर्भित होने के कारण मन विमर्श का धर्म है। देह प्रपञ्च एवं पृथ्वी आदि प्रपञ्च अर्थात् अन्तः एवं बाह्य प्रपञ्च विमर्श के मनोरूप धर्म का स्वरूप है, जिस से आत्मा ग्रस्त है। इस प्रपञ्च के कारण अहं भाव का निरास हो जाता है। प्रपञ्च द्वारा चित् तत्त्व को ग्रसन करने की यह चमत्क्रिया विमर्श की विपरीत प्रतीति भाव का चमत्कार मात्र है। वस्तुतः यह ग्रसन पारमार्थिक नहीं है। विद्या के उदय होने पर स्वरूप की पर्यालोचना में, स्वयं के प्रपञ्च के द्वारा चिदात्म तत्त्व का ग्रसन विमर्श शक्ति का चमत्कार मात्र है।

मन विमर्श का ही धर्म है अतः यह प्रश्न उठता है कि अपने ही धर्म से विमर्श स्वयं अपना आवरण किस प्रकार कर सकता है। इस शंका को सूर्य के उदाहरण से सिद्ध करते हैं। जिस प्रकार अपने ही रश्मि पटल से आच्छादित सूर्य का बिम्ब दृष्टिगोचर नहीं होता है उसी प्रकार आत्मा अपनी ही विमर्श शक्ति के विलास से प्रादुर्भूत मनोशक्ति के संकल्प से उन्मिषित पञ्च कञ्चुकों से आच्छादित होकर अवभासित नहीं होता है। अतः अपने ही रश्मि चक्ररूपी प्रपञ्च से आच्छन्न अंतर्हित चिदात्मक तत्त्व ही मूल रूप है एवं विश्व प्रपञ्च विमर्श शक्ति की विपरीत-प्रतीति का चमत्कार मात्र है।

एकादशं सूत्रम्

आत्मान्वितं वपुरहंकृतिधीमनांसि
त्रीण्यान्तराणि करणानि पदं प्रमातुः।
एतन्मनो विलसितं यदि पञ्चरूपं
माया पदं पदमिदं प्रकृतेस्तु साक्षात्।।११।।

व्याख्या

अथ विसर्ग व्याप्ति विषयतया सम्भावित पञ्चाङ्गकस्य स्वप्न पदस्य संस्थानमुपदर्शयन् वक्ष्यमाण प्रकृतेः संसारपदादन्य भेदमुपपादयति। आत्म इत्यादि। आत्मान्वितं वपुः आत्मना सह परिगणितं वपुः अहङ्कृति धीमनांसि अहंकार बुद्धिमनो रूपाणि त्रीण्यान्तराणि करणानि। सम्भूय पञ्चाङ्गकं स्वप्नरूपं प्रमातुः पदमित्यस्मिन्नर्थे प्रमातुरात्मन एव स्वाम्यमुक्तम्। अस्य पदस्यात्म शक्ति मनो विलास रूपत्वादात्म विलासरूपत्वमर्थात्सिद्धमिति जाग्रति मानसिक संसाररूपं प्रकृति पदं वक्ष्यमाण प वर्गरूपम्। तत्राप्यात्मा वपुः पर्याय प्रकृतिः, अहङ्काराद्यन्तः करणत्रयमिति पञ्चाङ्ग पदम्। तथा च प्रकृतिपदात् स्वप्नपदस्य को भेद इत्यत्राह। एतदित्यादि। एतत्पञ्चरूपं पदं मनो विलसितं यदि मनस एव तात्विक देहे प्रमातृनिर्व्यपेक्षस्य यदि विलसितं तदानीं स्वप्न पर्यायं माया पदं भवति। साक्षाच्चेदहमेवं स्मरामीति जाग्रत्प्रकृति रूप प्रमातृमूलं चेत्प्रकृतेः पदं भवतीति भावः।।११।।

भाषा टीका

सूत्र सार -

प्रमातृ-पद आत्मा, वपु (शरीर) तथा अन्तःकरण रूप अहङ्कार, बुद्धि एवं मन से अन्वित है अर्थात् युक्त है। जब यह पञ्चाङ्गी स्वरूप केवल मन का विलास मात्र होता है तब इसको माया पद के नाम से व्यवहार किया जाता है तथा तब इस पञ्चाङ्गी प्रमाता का प्रत्यक्ष अनुभव होता है तब इसका उल्लेख प्रकृति नाम से होता है।

व्याख्या

सम्भावित पञ्चाङ्गक स्वप्न पद विसर्ग व्याप्ति का विषय है अतः इस सूत्र में स्वप्न के संस्थान का निर्देश करके आगे निरूपित किये जानेवाले प्रकृति संसार पद से स्वप्न पद का भेद प्रदर्शित किया है।

आत्मा, शरीर, मन, बुद्धि एवं अहङ्कार पांच से मिलकर प्रमाता पद का रूप बनता है। यहां प्रमाता के साथ पद शब्द का प्रयोग करके प्रमाता को आत्मा का स्वामी निर्धारित किया गया है। स्वप्न गत प्रमाता पद में आत्मशक्ति मनोविलास रूप है इस कारण सिद्ध है कि वस्तुतः यह मनोविलास आत्म-विलास ही है।

जाग्रत् दशा में, जैसा कि आगे निरूपित किया जावेगा, मानसिक संसार रूप प्रकृति पद का अवबोधक प वर्ग है। प वर्ग में भी आत्मा, वपु की पर्यायवाची प्रकृति, अहङ्कार, बुद्धि एवं मन सहित प्रमाता पद के पांच अङ्ग हैं, इस कारण प्रकृति पद से स्वप्न पद का भेद निरूपित करना आवश्यक है। अतएव सूत्रकार लिखते हैं कि जब तात्त्विक देह में प्रमाता पद मनोविलास मात्र है तब स्वप्न पद का पर्याय मायापद है तथा जब साक्षात् देह की अनुभूति होती है तब जाग्रत् के अन्तर्गत प्रकृति प्रमातृ पद है।

द्वादशं सूत्रम्

मायापदे स्वमन एव शरीरताभा-
गित्यादिशन्त्यणुविदोऽत्रवकार गर्भे।
तद्वाह्यतोऽपि च लकारमनुस्मरन्तः
पञ्चाङ्गकम् पदमिदम् चतुरङ्गमेव।।१२।।

व्याख्या

नतु स्वप्नपदं विसर्ग व्याप्ति विषयतया पञ्चाङ्गकमित्युक्तम् तत्र यकारादिवकारान्ताश्चत्वारो वर्णाः जडाजडेच्छा प्रमाणद्वयाज्जडेच्छा स्थानीय विसर्ग प्रमातृस्थानं वर्णो न श्रूयते बहिश्च न दृश्यते। तत्कथमस्य पदस्य पञ्चाङ्गत्वमित्यत्राह। मायेत्यादि। अणुविदोमन्त्रविदः मायापदे स्वप्नपदे भेद विमर्शो मायाभेद विमर्शस्य स्वप्न एव प्रथमाभिव्यक्ति स्थलमिति स्वप्न पदे मायापदमिति च व्यवहारः। तत्र पदे मन एव कालरूपः शरीताभाक् देह प्रमातृभावभाक्। मनो व्यतिरेकेण स्वप्नेव्यवहर्त्ता देहोनास्तीति प्राक्प्रतिपादितम्। अतो मनस एव देहत्वमित्यादिशन्ति। कुर्वन्तरत्रवकारगर्भे वकारस्यान्तः लकारान्तर्पद इत्यर्थः। तद्वाह्यतोऽपि च वकारात्पूर्वपदे च लकारमनुस्मरन्तः अनुयोजयन्तः मनस्थानीयस्य वियोजने मन एव देहत्वं प्राप्तमिति प्रतीयते। अतस्तथा योजनेन सम्प्रदाय प्रवर्त्तनमेवोपदेश इति भावः वकारात्पूर्वपदे वाह्यत्वेनाभिमते मनस्थानीयोलकारोऽनुसन्धेयः वकारात्परपदे आन्तरत्वे नाभिमते देहस्थानीयस्य लकारस्य सन्निवेश इति। ननु विसर्ग व्याप्ति पदे विसर्ग प्रमातृरूपस्य देहस्य कथमात्मस्थानीयस्य वकारस्य गर्भे सन्निवेश इत्यत्रोच्यते। स्वप्नपदे विसर्गस्य स्थितिर्बिन्दुगर्भे एव तथापि बिन्दोर्विसर्गेणाव्याप्तिप्रतीतिः। अतएव स्वप्नस्य

चिदचिद् व्याप्ति प्रदेशे विसर्ग प्रमातृरूपस्य देहस्य कथमात्मस्थानीयस्य वकारस्य गर्भे सन्निवेश इत्यसङ्केत स्थानतया मिश्राद्वयं वक्ष्यति। जाग्रति तु विसर्ग प्रमातुर्बिन्दुर्बहिर्भाग सन्निवेशः अतेव तस्याशुद्धता वक्ष्यते। देहस्यात्मात्तर्गततत्वेन अन्तः करणत्रयस्यात्मान्तर्गततत्वमनुमेयम्। तद्बहिर्गतत्व सन्निवेशस्तद्व्याप्ति प्रतिपत्त्यपेक्षयो-पपद्यत इति निरवद्यम्। नन्वेतत्पदं पञ्चाङ्गकमुक्तम्। तथाचेच्चतुरङ्गकेण श वर्गकेण सह अष्टकोणे कथं सम संख्यया सन्निवेशमर्हति। अथास्य चतुरङ्गत्वे विसर्ग व्याप्तिर्ने सङ्गच्छत इत्यत्राह। पञ्चाङ्गकमित्यादि। वकारस्य बहिरेव लकार सन्निवेशे चतुरङ्गमेव सत्साम्प्रदायिकेन वकारगर्भे लकार गर्भसन्निवेशरहस्येन पञ्चाङ्गकश्चेति विशेषज्ञैः सम्प्रतिपद्यते इति विज्ञेयम्।।१२।।

भाषा टीका

सूत्र सार -

विसर्ग-व्याप्ति का विषय होने से, गतसूत्र में, स्वप्न-पद को पांच अङ्गों से युक्त प्रतिपादित किया गया है। व्याकरण शास्त्र के अनुसार य वर्ग में य, र, ल, व, ल पांच वर्ण हैं, जिसमें से अन्तिम वर्ण लकार को नव में सूत्र में जड-प्रमाता कहा गया है, किन्तु मन्त्र-शास्त्र में य वर्ग के अन्तर्गत य, र, ल, व केवल चार वर्ण ही स्वीकार किये गये हैं। जिसमें यकार तथा वकार जड एवं अजड की इच्छा के द्योतक हैं तथा रेफ एवं लकार प्रमाण द्वय हैं, इस प्रकार पूर्व में प्रतिपादित कर चुके हैं। अतः यहां जडेच्छास्थानीय विसर्ग-प्रमाता लकार का अस्तित्व न देखा जाता है और न ही सुनाई देता है। अतएव स्वप्न का पञ्चाङ्गत्व शङ्का का विषय बन जाता है।

उपर्युक्त शङ्का के समाधान के लिये दो तर्कों का आश्रय लिया गया है।

मन्त्रशास्त्र के अनुसार भेदात्मक विमर्श के अन्तर्गत स्वप्न ही प्रथम अभिव्यक्ति का स्थल है। अतएव स्वप्न पद को माया के नाम से कहा जाता है। इस पद में मन ही काल-स्वरूप है जो शरीरता अर्थात् प्रमातृ भाव को प्राप्त होता है तथा मन के अतिरिक्त कोई अन्य प्रकार की देह स्वप्नावस्था में व्यवहारकर्त्ता नहीं है। अतः अजडेच्छा के द्योतक वकार के अन्तर्गत ही विसर्ग-प्रमाता पद के द्योतक लकार की स्थिति सिद्ध है अथवा वकार से पूर्व-स्थित लकार को भी प्रमाता के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, यह स्थिति भी

सम्प्रदाय के उपदेश के अनुकूल ही है। अर्थात् दोनों ही विकल्पों में स्वप्न में मन की ही शरीर के रूप में स्थिति सिद्ध है। अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि मातृका मन्त्र के अनुसार य वर्ग में चार ही वर्ण हैं तथा प्रमाता रूप पञ्चम वर्ण लकार की यहां स्पष्ट स्थिति नहीं है तथापि इसका अनुसन्धान वकार के पूर्व पद के रूप में स्थित लकार में अथवा वकार के गर्भ में ही करना चाहिये।

विसर्ग-व्याप्ति में आत्म-स्थानीय वकार के अन्तर्गत विसर्ग-प्रमाता की स्थिति का स्पष्टीकरण करते हैं। स्वप्न-पद में विन्दु के अन्तर्गत विसर्ग की स्थिति है, तथापि विसर्ग के उत्कर्ष के कारण बिन्दु की अव्याप्ति प्रतीत होती है अर्थात् बिन्दु की व्याप्ति की प्रतीति नहीं होती है। इसी प्रकार स्वप्न की चिदचिद् व्याप्ति दशा में लकार के स्थान का बाहिर सङ्केत न होने से आत्मस्थानीय वकार के अन्तर्गत विसर्ग-प्रमाता की स्थिति शङ्कास्पद हो जाती है, जिसके कारण विपक्ष द्वारा मिश्राद्वैत सिद्धान्त का समर्थन किया जाता है, किन्तु जाग्रत् दशा में विसर्ग-प्रमाता की स्थिति बिन्दु के वाह्य भाग में स्पष्टतः सन्निविष्ट है इसलिये उपर्युक्त मत दोषयुक्त सिद्ध हो जाता है। आत्मा के अन्तर्गत विसर्ग-प्रमाता का सन्निवेश है अतः अन्तःकरणत्रय का अवस्थान भी आत्मा के अन्तर्गत अनुमान करना उचित है। अर्थात् जिस प्रकार स्वप्न दशा में विन्दु के अन्तर्गत विसर्ग की स्थिति है उसी प्रकार आत्म स्थानीय वकार के अन्तर्गत विसर्ग-प्रमाता पद के द्योतक लकार की स्थिति सिद्ध है। किन्तु इस रूप में व्याप्ति-प्रतिपत्त को स्वीकार करने की अपेक्षा लकार के सन्निवेश को बहिर्गत पञ्चम पद के रूप में ही स्वीकार करना अधिक युक्ति युक्त है।

इस प्रकार स्वप्न-पद स्पष्ट रूप से पञ्चाङ्गक दृष्टिगोचर होने लगता है। इस स्थिति में य वर्ग का स्वरूप य, र, ल, व, ल हो जाता है। इसके विरुद्ध विपक्ष द्वारा एक शङ्का और प्रस्तुत की गई है। श्री-चक्र के अन्तर्गत अष्ट-कोण चक्र में चतुवर्णात्मक श वर्ग के समान ही य वर्ग को चार वर्णों से युक्त चित्रित किया गया है। अतएव चतुवर्णात्मक य वर्ग से विसर्ग-व्याप्ति की सङ्गति सिद्ध नहीं होती है, किन्तु स्वप्न को चतुरङ्ग स्वीकार करनेवाले साम्प्रदायिकों ने भी व कार के गर्भ में विसर्ग-प्रमाता रूप लकार के सन्निवेश का उपदेश करके पञ्चम अङ्ग का समर्थन ही किया है अतः विशेषज्ञों ने उसी पञ्चम अङ्ग को स्पष्टतया वकार के वाहिर लकार के रूप में स्वीकार करके स्वप्न को पञ्चाङ्गक प्रतिपादित किया है। अतएव सिद्ध है कि स्वप्न विसर्ग-व्याप्ति का विषय है।

त्रयोदशं सूत्रम्

पृथिवी लकार इह देहमयी स्वधामा
कर्तृज्ञतेऽस्य मरुदग्निमयौयरेफौ।
व्याप्येतयोः क्षितिजले विकृतेलवौच
स्वात्मस्थितस्य वपुषः करणानि गर्भे।।१३।।

व्याख्या

उक्त मर्यादया विसर्ग व्याप्याभिमाने पञ्चाङ्गस्य स्वप्न पदस्याङ्गेषु वर्णेषु पशुपदत्वात् पृथिव्यादीनां व्युत्क्रमेण सन्निवेशं दर्शयति। पृथ्वीत्यादि। इह स्वप्न पदे लकारः वकारान्तर्वर्त्ति लकारः स्वधामाऽन्यस्मिन् स्वस्मिन्पदयाकाशस्थानं प्राप्ता देहरूपिणी पृथ्वी अस्य पृथ्वी रूपस्य देहस्य विसर्ग प्रमातुः मरुदग्निमयौ वाय्वग्निरूपौ य रेफौ। कर्तृस्थिते कर्तृज्ञते क्रिया ज्ञान करणे धिद्याप्तिपदे सलिलजडाग्निरूपे यत्तत्वद्वयं तदिदानीं व्युत्क्रमपदे वाय्वग्नि जडाग्निस्थानं यकार रेफ रूपेण उपलक्षितम्। पृथिव्यात्मनो देहप्रमातुः चिद्व्याप्तौ साधनभूतं क्रिया ज्ञान करणद्वयं भवतीति भावः क्रियात्मनो देहस्य प्रमातृत्वात् तत्साधनमपि क्रिया प्रधानं भवतीति विज्ञेयम्। वकारात्पूर्वो लकारः वकारात्परश्च लकारस्तयोर्यकाररेफ रूप वाय्वग्न्योः व्याप्ये विकृते विकृतिमापन्ने प्रकृत्या वाय्वाकाशरूपयोस्तत्त्वयोः क्षितिजलभागौ वकार क्षितिजलौ। एवं स्वात्मस्थितस्य वपुषः आत्मस्थानीय वकारगर्भे स्थितस्य देहस्य विसर्ग प्रमातुः गर्भे करणानि। भवन्तीति शेषः। विसर्गस्य स्वव्याप्तिपदे चित्पदावच्छेदनियमात् आकाशादि रूपस्य विसर्ग पदस्य संस्थानविशेषेणैव चिदनवच्छेदो गम्यते। विसर्ग प्रमातृ साधनाभ्यांवाय्वग्निभ्यांपृथिवीजलयोररुच्छेदो न सिध्यति वायुना जलस्योच्छेदः। अग्निना पृथिव्याः उच्छेदः सम्भवति। वायुना पृथिव्युच्छेदोऽग्निना जलस्योच्छेदो न सम्भाव्यत इति।।१३।।

भाषा टीका

संदर्भ -

विसर्गावस्था में स्वप्न पद के य वर्गात्मक पांच वर्ण हैं, जो स्वप्न के

अङ्ग कहे जाते हैं। य वर्ग के अन्तर्गत य, र, ल, व, ल पांच वर्णों का समावेश सूत्रकार ने निरूपित किया है। इस सूत्र में य वर्ग के अन्तर्गत पृथ्वी आदि तत्त्वों का सन्निवेश विलोम-क्रम से प्रदर्शित किया गया है। अर्थात् अन्तिम लकार प्रमातृत्व के कारण आकाशात्मक पृथ्वी का बोधक, वकार जल का, तृतीय वर्ण लकार क्षिति का, रेफ अग्नि का तथा यकार वायु का अवबोधक है।

सूत्रसार -

व्याप्य अर्थात् विकृति दशा में आकाश भाव को प्राप्त देहमयी पृथ्वी का द्योतक लकार है, क्रियात्मक वायु का द्योतक यकार एवं ज्ञानात्मक अग्नि का द्योतक रेफ है। क्षिति का द्योतक लकार तथा जल का द्योतक वकार है जो देहात्मक प्रमाता के अन्तः में करण रूप में स्थित हैं।

व्याख्या

द्वितीय खण्ड के द्वितीय सूत्र में पृथ्वी तथा नभ को मिश्र प्रमाता के रूप में प्रतिपादित किया है। तदनुसार यहां भी लकार द्वारा अवबोधित पृथ्वी को आकाशात्मक निरूपित किया गया है। इस प्रकार स्वप्न दशा में व कारान्तर्वर्ति लकार यकारत्व में परिवर्तित हो जाता है। अर्थात् आकाशत्व को प्राप्त पृथ्वी विसर्गावस्था में प्रमातृत्व ग्रहण करती है एवं विसर्ग-प्रमाता का अभिव्यञ्जन वकार के अन्तः में गर्भित लकार के द्वारा होता है।

पृथ्वी को आकाशात्मक प्रतिपादित करने से सूत्रकार का तात्पर्य है कि जब विसर्ग का प्रवाह चित् की ओर होता है तब आकाशात्मक-पृथ्वी रूप विसर्ग-प्रमाता के वायु तथा अग्नि दो करण हैं। वायु का अवबोधक यकार तथा अग्नि का अवबोधक रेफ है जो क्रमशः क्रिया तथा ज्ञान के द्योतक हैं। अतएव फलस्वरूप क्रियात्मक वायु एवं ज्ञानात्मक अग्नि विसर्ग-प्रमाता के करण हैं। विसर्ग दशा में प्रमाता क्रिया प्रधान होता है अतः इस अवस्था में इसके साधन भी क्रिया प्रधान हैं। (इस कारण य वर्ग में यकार का प्रथम स्थान है।)

व्याप्य दशा में वकार का पूर्व-वर्ती लकार एवं उत्तरवर्ती लकार दोनों ही वायु अग्न्यात्मक यकार एवं रेफ के भाग हैं। वकार का उत्तरवर्ती लकार क्षिति का अवबोधक तथा पूर्ववर्ती लकार जल का अवबोधक है। वायु जल का उच्छेदक तथा अग्नि क्षिति का उच्छेदक है, इस प्रकार क्षिति तथा जल क्रमशः अग्नि तथा वायु के भाग सिद्ध हैं। अतएव क्षिति तथा जल भी विसर्ग-प्रमाता के करण स्वतः सिद्ध हो जाते हैं।

पृथ्वी का लय जल में होता है अतएव पृथ्वी के द्योतक लकार को जल के अवबोधक वकार के अन्त में कल्पित किया गया है। इस कारण यह सिद्ध होता है कि वायु, अग्नि, जल एव क्षिति वकार के अन्तः स्थित लकार द्वारा अवबोधित विसर्ग-प्रमाता के करण हैं।

चतुर्दशं सूत्रम्

मग्नःपुमान् वपुषि चित्तमहंक्रियायां
बुद्धौ जडांश जठरेऽप्यजडस्तदंशः।
इत्थंप्रमातरि जडांशगताजडांशे
ज्ञानक्रियान्तरवभातिमहानजाण्डः।।१४।।

व्याख्या

इदानीमात्मनः स्वगर्भस्थेनैव देहादिना व्याप्तिं निरूपयन्मनोबुद्धिरूपस्य-विमर्शस्य देहाहंकाररूपान्तर्जगदुद्वमनानन्तरं वाह्य जगदुद्वमन चमत्कारंदर्शयति। मग्नइत्यादि। पुमान् आत्मा वकाररूपः वपुषि लकार रूपे मग्नो भवतीतिशेषः। चित्तंपूर्वलकार रूपमन अहंक्रियायायकाररूपे अहंकारेमग्न इत्यन्वयः। बुद्धौ जडांशजठरे अजडस्तडंशः मग्नः इत्यन्वयः। बुद्धेरग्नित्वं जडाजड रूपत्वं च प्रतिपादितम्। ननु वायुनाहंकारेणपृथिविरूपस्यचित्तस्य कवलनम् अग्निरूपया बुद्धया जलरूपस्यात्मन कवलनम्पूर्वसूत्रेणोन्मोलितम्। इदानीमात्मनोदेहेव कवलनम् कथमितिचेदुच्यते। ज्ञानक्रियारूपम्करण्यम् प्रभातुरङ्गमेवतत्कवलनम्-फलतः प्रमातृकवलनभेवेति न विरोधः। इत्युक्तनिमज्जन प्रक्रियया प्रमातविकार रूपे प्रमातरि जडांशगताजडांशेविसर्गतदङ्गनिम्नस्वात्मस्वकोयाङ्गेसतिज्ञानक्रियान्तः मनोबुद्धिगर्भात् मनोबुद्धिरूपविमर्श गर्भादित्यर्थः। महानतिविततः अजाण्डो ब्रह्मांडः अवभातिनिर्गच्छति। विमर्शः स्वगर्भादन्तः प्रपञ्चोन्मीलनानन्तरंवाह्य-प्रपञ्चमुद्वमतीतिभाव। स्वप्नपदे ब्रह्माण्डस्य पिण्डाण्डंकारणमिति लौकिकस्यापि सम्प्रत्ययः। जाग्रति तु ब्रह्माण्डः पिण्डाण्डस्यकारणमिति दक्षिणमार्ग लौकिकप्रतीति।वाममार्गस्ययोगिनस्तुतत्रपिण्डाण्डएवब्रह्माण्डकारणमितिनिश्चयः। सिद्धदशनि। यामले तु तयोरन्योन्य कार्यं कारणत्वं यौगपद्य सिद्धेरितिसत्यात्मनोः पिण्डाण्डब्रह्माण्डयोरविनाभावइति। अन्तः पदेपिण्डाण्डाङ्ग ब्रह्माण्डमिति बहिःपदे ब्रह्माण्डाङ्ग पिण्डाण्डमितिसविवेकः।।१४।।

भाषा टीका

सूत्र सार -

पुरुष का शरीर में, चित्त का अहङ्कार में तथा बुद्धि के जडांश के अन्तर्गत उसके अजडांश का निमज्जन होता है। इस प्रकार प्रमाता के जडांश गत अजडांश में स्थित ज्ञान क्रिया के अन्तः में ब्रह्माण्ड का निस्सरण होता है।

इस सूत्र में स्वगर्भस्थित देहादि के रूप में आत्मा की व्याप्ति, तथा मनोबुद्धि रूप विमर्श का देहाहङ्कार रूप अन्तः जगत् से निस्सरण का निरूपण करने के पश्चात् वाह्य जगत् की सृष्टि के चमत्कार का दिग्दर्शन कराया गया है।

शरीर के अन्तर्गत आत्मा व्याप्त है। इसी सिद्धान्त को वर्णों के अनुसार दर्शाते हैं। वकार रूप आत्मा लकारात्मक देह में निमज्जित हो जाता है। चित्त अर्थात् पूर्ववर्त्ति लकाररूप मन का अहंकार रूप यकार में तथा वृद्धि के जडांश में उसके अजडांश का निमज्जन हो जाता है।

वायु रूप अहङ्कार में पृथ्वी रूप चित्त के निमज्जन का, एवम् अग्नि रूपा बुद्धि में जल रूप आत्मा के निमज्जन का पूर्व सूत्र में वर्णन किया है इस सूत्र में देह के द्वारा आत्मा के निमज्जन का वर्णन किया जाता है।

प्रमाता के दो करण ज्ञान तथा क्रिया हैं जिनका विलय अहंकार एवं बुद्धि में हो जाता है। ज्ञान एवं क्रिया आत्मा के अङ्ग हैं अतः यह अर्थ हुआ कि आत्मा का निमज्जन शरीर में होता है। इस प्रकार यह निमज्जन की प्रक्रिया है। प्रमाता के जडांशगत अजडांश में ज्ञान-क्रिया की स्थिति है। जो मन एवं बुद्धि के अन्तः में निमज्जित है अतः मनोबुद्धि के गर्भ से ही महान ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है। मनोबुद्धि रूप विमर्श के गर्भ से पँहिले अन्तः प्रपञ्च का उन्मीलन होता है तत्पश्चात् बाह्य प्रपञ्च का निस्सरण होता है। सूत्रकार का यह तात्पर्य है। अर्थात् स्वप्नपद में ब्रह्माण्ड का कारण पिण्डाण्ड है। यह समान रूप से लोक में सभी का अनुभव है तथा जाग्रत् में पिण्डाण्ड का कारण ब्रह्माण्ड है यह दक्षिणाचार एवं लोक प्रतीति है। वाममार्गी योगी पिण्डाण्ड को ही जाग्रत् तथा स्वप्न दोनों अवस्थाओं में ब्रह्माण्ड का कारण स्वीकार करते हैं। तीसरा यामल मार्ग है जिसके अनुसार जाग्रत एवं स्वप्न दोनों में युगपत् कार्य-कारण सम्बन्ध है। अर्थात् पिण्डाण्ड तथा ब्रह्माण्ड में अविनाभाव सम्बन्ध है। आन्तरिक

अनुभूति में पिण्डाण्ड का अङ्ग ब्रह्माण्ड है तथा बाह्य अनुभूति में पिण्डाण्ड ब्रह्माण्ड का अङ्ग है। इस प्रकार यह सम विवेक है।

पञ्चदशं सूत्रम्

पिण्डाण्डमूलमपि मूलमिवास्य भाति
ब्रह्माण्डमन्तरमपि वाह्यमिवास्य चित्रम्।
मायाविमोहितदृशा तदणुर्निरीक्ष्य
स्वाङ्गानि-पञ्चकलयत्यणुसंज्ञकानि।।१५।।

व्याख्या

इदानींपशोः स्वस्वरूपभूतात् पिण्डाण्डादेवोदितस्य ब्रह्माण्डस्यदशनि-नयोऽयंविपरीतप्रतीतरूपविमर्शविलासस्तन्विवृणोतिपिण्डाण्डेति। ब्रह्माण्ड-पिण्डाण्ड-मूलमपि स्वप्नेऽपि देहाभिमानिनः विवादंमनोमूलकत्वात् पिण्डाण्डमूलकमपि अस्यपिण्डाण्डस्य स्वयंमूलमिवभाति। अस्यपिण्डाण्डस्यान्तरे अपि मनोनिष्ठत्वादन्तस्थमपि बाह्यमिव भाति। चित्रमद्युतम्। स्वान्तस्थस्य स्वव्यापकत्वेनप्रतीतेरद्भुतत्वात् अणु संकुचित प्रमाता तत्तदेवं विधं ब्रह्माण्ड माया विमोहितदृशा माया चमत्कारपरिग्रहेणविमोहितया विकृतिगतया दृशा दृग्विमर्शेन निरीक्ष्यपञ्चपिण्डाण्ड स्थानानि देहादीनि स्वाङ्गानि अणुशक्तिकानि ब्रह्माण्डापेक्षया अत्यल्पसाराणिकलयति मनुते।।१५।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

स्वप्नावस्था मनोमूलक है अतएव इस अवस्था में ब्रह्माण्ड का कारण पिण्डाण्ड है। अर्थात् स्वप्न में ब्रह्माण्ड की प्रतीति सर्वथा मानसिक है। तथापि देहाभिमानी जीव को स्वप्न में पिण्डाण्ड के अन्तः में अनुभूत ब्रह्माण्ड इस प्रकार प्रतीत होता है जैसे इसकी अनुभूति पिण्डाण्ड के बाहिर हो रही है। यद्यपि ब्रह्माण्ड का कारण पिण्डाण्ड है तथापि प्रतीति इस से विपरीत होती है। अर्थात् पिण्डाण्ड का कारण ब्रह्माण्ड प्रतीत होता है। यह विपरीत प्रतीति अद्भुत है।

अणु अर्थात् संकुचित प्रमाता जीव माया के चमत्कार से विमोहित होने के कारण पिण्डस्थ आत्मान्वित देह अहङ्कार आदि पांच अङ्गों को ब्रह्माण्ड की अपेक्षा अत्यन्त अल्प कल्पित करता है। अतः वृहत् ब्रह्माण्ड यद्यपि पिण्डाण्ड का मूल नही हैं तथापि मूल के समान प्रतीत होता है।

षोडषं सूत्रम्

सङ्क्लृप्त वायुशिखि भूजलखापकर्षा
बन्धाऽस्युरन्तरणुकस्य कलाप्यविद्या।
रागश्च कालनियती इतिकञ्चुकास्ते
मायात्मनः प्रथमकञ्चुकता सुषुप्तेः।।१६।।

व्याख्या

इदानीं पशोः पञ्चमहाभूतात्मक ब्रह्माण्डाङ्गदर्शनेन सङ्कुचित भूतात्मक स्वस्वरूप पिण्डाण्डानामपकर्षसंकल्पा एव अन्तर्बन्धाः। कलादि शब्द व्यवह्रियमाणा षट्कञ्चुका भवन्तीत्याह। सङक्लृप्तेति। सङक्लृप्त वायु शिखि भूजलखापकर्षाः सङक्लृप्ताः संकल्पिताः वाय्याद्यपकर्षाः यकाररेफलकार बकारलकारस्थानकवाय्वग्नि-क्षितिजलाकाशसङ्कोचाः अणुकस्य परिच्छिन्न प्रमातुः अन्तर्बन्धाः स्युः। सङ्कल्पानां पशोरन्तर्हृदयेऽबस्थानात् प्रपञ्च व्याप्ति लक्षण बन्धमूलत्वाच्च अन्तर्बन्धत्वम्। स्वसङ्कल्प बशाद्बद्ध इति प्रसिद्धेः। तेषां सङ्कल्प रूप बन्धानां यकार स्थानक वाय्वादि क्रमेण सिद्ध सम्प्रदाय प्रसिद्ध कलादि षट् कञ्चुक रूपतां क्रमेणानुदिशति। कलेत्यादि। यकारस्थानक वायु सङ्कोचः संकल्पः कलानां कञ्चुको भवति। रेफस्थानकाग्निसङ्कोच संकल्पः अविद्यानां कञ्चुकोभवतीति। लकारस्थानक पृथिवीसङ्कोच सङ्कल्पो राग इति कञ्चुकोभवति। वकारस्थानक जलसङ्कोच संकल्पः कालोनाम कञ्चुको भवति। लकारस्थानकाकाश सङ्कोच संकल्पो नियतिर्नाम कञ्चुको भवति। अपरिच्छिन्न प्रमातृ पदे सर्व कर्तृत्वस्य वायोः पशुपदे सङ्कोचात्कलामात्रकर्तृत्वमिति कला। सर्वज्ञत्वस्याग्नेर्विद्यारूपस्यसङ्कोचाद्वैपरीत्ये अविद्यात्वम्। पूर्णत्वशक्तेः पृथिव्याः सङ्कोचे ममेदमाशास्यमितिस्पृहा पर्यायरागोदयाद्रागत्वम्। नित्यत्व शक्तेः सलिलस्य संकोचे अनित्यता कलनात्कालत्वं व्यापकत्व शक्तेराकाशस्य संकोचे अत्रैवाह मितिदेशनियमान्नियतित्वमिति कलादीनामुपपत्तिः। ननुकञ्चुकाः

षडितिप्रसिद्धिस्तत्र माया प्रथमेति श्रूयते। तस्या कथंनात्रविवेक इत्यत्राह मायात्मन इति। योऽयं पञ्चकञ्चुकरूपात् स्वप्नात्पूर्वभाविनीतत्कारणरूपभूता जड सुषुप्तिः सैव माया भेद संसारस्यमूलरूपत्वात् तस्याः मायात्मनः सुषुप्तेः प्रथम कञ्चुकता क्षकारादि ककारान्त वर्णाः शिवादि क्षित्यन्त षट्त्रिंशत्तत्वरूपाः इति साम्प्रदायिकी प्रसिद्धिः। ते च वर्णाः द्विरूपेण लकारेण सहपञ्चत्रिंशकेन षकारक्षकारयोरेकवर्णत्वेन सम्प्रदाये सम्प्रतिपन्नत्वात्। ततः स्वर वर्गस्य मायातत्वरूपस्यान्तस्थवर्ग मूले सन्निवेशे वर्णेषुषट् त्रिंशत्तत्वस्थितिरविसंवादिनी। स्वरखण्डः खलु व्यापक खण्डस्यभूलम्। यवर्गरूप भेद स्वप्नबीजत्वाच्छ वर्गरूपाभेद स्वप्न विश्रान्तिपदत्वाच्च। उत्पत्यपेक्षया ज्ञानस्यप्राधान्यंप्रतीत्यपेक्षया क्रियायाः प्राधान्यमितिज्ञानक्रिया संसार रूपयोः स्वप्न जाग्रतोर्मध्ये सर्वकारणस्यसुषुप्तेः स्वर वर्ग रूपस्य सन्निवेशइति स्वरवर्गेस्वप्न वासना रूप यकारो मायातत्वस्थानमिति विवेकः ।।१६।।

भाषा टीका

जीवावस्था में ब्रह्माण्ड के केवल पञ्चमहाभूतात्मक अङ्गों का दर्शन होने से पिण्डाण्ड का स्वरूप संकुचित हो जाता है जो इसके अपकर्ष का कारण है। तथा इसी संकोच के कारण कला आदि छै कञ्चुक अन्तर्बंध के रूप में प्रकट होते हैं।

सूत्रसार -

जीव के द्वारा संकल्पित वायु, अग्नि, भू, जल तथा आकाश अणु के अपकर्ष-कारक बन्धन हैं। यह पञ्च महाभूत कला, अविद्या, राग, काल, नियति नाम से व्यवहृत पाँच कञ्चुक हैं। प्रथम कञ्चुक माया है जो सुषुप्ति का अपकर्षक हैं।

व्याख्या

संकल्पित वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल एवं आकाश अणुप्रमाता के अपकर्षक हैं। य वर्ग के य, र, ल, व, ल वर्ण वायु आदि तत्त्वों के अवबोधक होने से परिच्छिन्न प्रमाता जीव के बन्धनकारक हैं।

पञ्च महाभूतों को जीव का अन्तर्बन्ध इस कारण कहा जाता है कि संकल्पों का स्रजन जीव के हृदय में होता है तथा संकल्पात्मक प्रपञ्च की व्याप्ति जीव के वन्धन का मूल है। अर्थात् अपने ही संकल्पो के वश जीव बद्धावस्था को

प्राप्त होता है। इन संकल्पात्मक बन्धों के यकार आदि के द्वारा अवबोधित वायु आदि पञ्च महाभूत क्रम से कलादि रूप षट् कञ्चुक हैं।

यकार स्थानीय वायु का संकोच-संकल्प कला नामक प्रथम कञ्चुक है। लकारात्मक पृथ्वी-संकोच राग, रकारात्मक अग्निसंकोच-संकल्प विद्या, वकार स्थानक जल-संकोच संकल्प काल, लकारात्मक आकाश-संकोच-संकल्प नियति नामक कञ्चुक हैं।

अपरिच्छिन्न प्रमातृ-पद में सर्वकर्तृत्व-वायु का पशु पद में संकोच होने से केवल कलात्मक कर्तृत्व शेष रह जाता है अतः इसे कला नाम से कहा जाता है। विद्या रूपिणी अग्नि की सर्वज्ञता का संकोच होकर इसका अविद्या तत्त्व में परिवर्तन होने से अविद्या नामक कञ्चुक कहा जाता है। पूर्णत्व से युक्त शक्ति रूप पृथ्वी का संकोच होकर 'यह मेरा है' इस प्रकार स्पृहा अर्थात् रोग के उदय होने के कारण यह कञ्चुक राग नाम से कहा जाता है। नित्य शक्ति से युक्त जल का संकोच होने पर अनित्यता का प्रवर्तन होता है अतः इसे काल कंचुक के नाम से कहते हैं। आकाश के व्यापकत्व का संकोच होने पर 'मैं यहां हूं' इस प्रकार की देशात्मक नियम की कल्पना होने से इसको नियति नाम से कहा गया है। यह कलादि कञ्चुकों की उत्पत्ति का विवेक है।

कञ्चुकों की संख्या सूत्र में छै बतलाई गई अतः अब माया नामक छटवें कञ्चुक का विवेचन करते हैं। पञ्च-कञ्चुक-आत्मक स्वप्न से पूर्वोद्भूत कारण रूप जड-सुषुप्ति भेद संसार की भी मूल है इस कारण से क्षकार से ककार पर्यन्त वर्णों के द्वारा अवबोधित शिव से क्षिति पर्यन्त तत्त्वों की स्वरूपभूता माया सुषुप्ति की प्रथम कञ्चुक है। अर्थात् माया के कारण सुषुप्ति का संकोच होता है अतः माया को कञ्चुक कहा है।

वर्ण माला में दो लकारों का सन्निवेश है जिनको सम्मिलित करके भी क से क्ष पर्यन्त केवल पैंतीस अक्षर होते हैं क्योंकि साम्प्रदायिक विद्वान क्षकार को षकार के अन्तर्गत ही मानते हैं अतएव छत्तीसवें वर्ण के रूप में स्वरवर्गात्मक माया-तत्त्व का, य-वर्ग के मूल में, सन्निवेश स्वीकार किया गया है। इस प्रकार छत्तीस तत्त्वों के द्योतक वर्णों की संख्या छत्तीस ही निश्चित होती जाती है।

भेद-स्वप्न का मूल य-वर्ग तथा अभेद-स्वप्न की विश्रान्ति का मूल श-वर्ग होने के कारण व्यापकखण्ड का मूलस्वर खण्ड है।

उत्पत्ति के अपेक्षा ज्ञान का तथा प्रतीति की अपेक्षा क्रिया का प्राधान्य

होता है। अतः ज्ञान एवं क्रियात्मक संसरण के स्वरूपभूत स्वप्न तथा जाग्रत् के मध्य में स्थित सुषुप्ति के अन्तर्गत स्वरवर्ग का सन्निवेश है।

अतएव स्वप्न की वासना के द्योतक इ-कार का स्थान माया तत्त्व के रूप में स्वर-वर्ग के अन्तर्गत नियत है।

सप्तदशं सूत्रम्

कर्तत्व शक्तिरनिलः सकलज्ञताग्निर्भूः-
पूर्णता विलयताम्बुवियद्विभुत्वम्।
पञ्चापि शक्तय इमावितताः स्वरूपम्
शम्भोर्भवन्त्यपि च संकुचितापशोऽस्तु।।१७।।

व्याख्या

इदानीं यकारादि स्थानानां वाय्वादीनां पूर्णापूर्णतया जीवशिवस्वरूप कर्तृत्वादि पञ्चशक्तित्वं व्युत्पादयति कर्तृत्वेति। अनिलः शिवस्य सर्व कर्तृत्व शक्तिः अग्निः सर्वज्ञता शक्तिः भूः पूर्णता शक्तिः अम्बु अविलयता नित्यत्व शक्तिः वियदाकाशः विभुत्वं व्यापकत्व शक्तिः इमा पञ्चापि शक्तयः निरताः पूर्णाः शम्भोः स्वरूपं भवन्ति। संकुचितास्तु पशोः स्वरूपं भवन्ति। सर्वस्याः क्रियायाः स्पन्द रूपत्वात् स्पन्दस्य वायु धर्मत्वाद्वायोः कर्तृत्व शक्तिता। ज्ञानस्य भासनरूपत्वात् भासनस्य तेजो धर्मत्वात् वन्हेज्ञान शक्तिता। सम्पन्न तात्पर्यस्य पूर्णत्वस्य सकलभोग्य वस्तु मूलत्वात् सकलभोग्य वस्तूनां पृथिवी मूलत्वात् पृथिव्याः पूर्णत्व शक्तिता। नित्यत्वस्याऽऽप्यायनाविच्छेद मूलत्वादाप्यायनस्य जल धर्मत्वाज्जलस्य नित्यता शक्तित्वम्। विभुत्वस्य व्याप्तिमूलत्वाद्व्याप्तेराकाश धर्मत्वादाकाशस्य विभुत्वशक्तिरिति विवेकः।।१७।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

इस सूत्र में निरूपण किया गया है कि यकारादि से अवबोधित वायु आदि पञ्चमहाभूत पूर्णता तथा अपूर्णता के कारण शिव तथा जीव की कर्तृत्व आदि पञ्च-शक्तियों से युक्त हैं।

व्याख्या

कर्तृत्व-शक्ति अनिल, सर्वज्ञता-शक्ति अग्नि, पूर्णता-शक्ति पृथ्वी, अविलयता-शक्ति अम्बु तथा नित्य-शक्ति आकाश है। पूर्णत्व को प्राप्त यह पाँचों शक्तियाँ शम्भू का स्वरूप हैं तथा संकोचावस्था में अपूर्णता को प्राप्त होकर जीव का स्वरूप हैं।

समस्त क्रिया स्पन्द रूप होने के कारण तथा स्पन्द वायु का धर्म होने के कारण वायु कर्तृत्व-शक्ति है।

ज्ञान प्रकाश रूप है तथा प्रकाश तेज का धर्म है अतः वह्नि में ज्ञान-शक्ति है।

सकल भोग्य-वस्तू पूर्णत्व का मूल है; तथा पृथ्वी सकल भोग्य-वस्तुओं का मूल है; अतएव पृथ्वी पूर्णत्व-शक्ति से सम्पन्न है।

आप्यायन अर्थात् भरण नित्यत्व का मूल है तथा आप्यायन का मूल जल है अतः जल नित्यत्व-शक्ति से युक्त है।

विभुत्व व्याप्ति का मूल है तथा व्याप्ति आकाश का धर्म है अतः आकाशकी विभुत्व-शक्ति है।

अष्टादशं सूत्रम्

स्यात्पञ्चशक्तिमयता प्रकृतिः शिवस्य
स्वान्तर्जगत् कलनमप्यथदेहिनस्तु।
वाह्ये जगत्कलनमेव भवेद्विभेदः
स्वाभ्यन्तरस्थ जगतोऽपि विमोहशक्त्या॥१८॥

व्याख्या

शिवयोः पञ्चशक्तिमयत्वे सामान्ये भेदकं धर्ममुत्पादयति स्यादिति। शिवस्य पञ्च शक्तिमयता प्रकृतिः स्वभावः स्यात्। अष्टौमूर्तयः शिवस्येति प्रसिद्धिः तत्र चन्द्रार्कयोस्तेजसि वह्नावन्तर्भावात् यजमानस्य चिदात्मन आकाशे तेजसि वान्तर्भावात् ब्रह्माण्ड रूपेण परिणता पञ्चमहाभूता एव शिवस्य स्वरूपमाकाश

प्रभृतिका इत्युपपन्नम्। शिवस्य जीवाद्भेदकं धर्ममाह स्वान्तजर्गत् कलनमिति। महाभूत परिणाम रूपाणां जगतां भूर्भुवादीनां महाभूतेष्वेवावस्थानात् तदात्मनः शिवस्य स्वान्तर्जगत्कलन मेतावती शिवस्य प्रकृतिः। अथ देहिनस्तु अथ पक्षान्तरे पञ्चभूतात्मकत्वात् पञ्च शक्ति मयस्यैव सतः स्वाभ्यन्तरस्य जगतः पिण्डाण्ड रूपस्य जीवस्य। पिण्डाण्डादेव ब्रह्माण्डोदयात् तत्रैव तस्य संस्थानात् स्वाभ्यन्तरस्थ जगतोऽपीत्युपपन्नम्। विमोह शक्त्या विपरीत प्रतीतरूप विमर्शे शक्तयाः बाह्ये व्याप्तिपदे यज्जगत्कलनं जगतामवस्थान सङ्कल्पः तदेव शिवाद्विशेषः। भेदको धर्मः यदा निजस्वरूपं पिण्डाण्डं ब्रह्मांडस्य मूलतया ब्रह्मांडादधिकं मन्यते तदा स्वस्वरूपस्यैव ब्रह्मांडत्वे तदुत्तीर्णत्वेच प्राप्ते सति विश्वमय विश्वोत्तीर्ण स्वभावं शिवत्वमेव शिवस्य प्राप्नोतीति भावः।।१८।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

यहाँ जीव तथा शिव में भेदक-धर्म का व्युत्पादन करते हैं।

व्याख्या

शिव अपने स्वभाव के कारण ही पञ्च-शक्तियों से युक्त हैं तथा शिव के अन्तः में ही जगत् का प्रवर्तन होता है।

देही विमोह शक्ति के कारण स्वान्तस्थ जगत का वाह्य कक्षा में अवलोकन करता है। यह भेद-दृष्टि जीव की विशेषता हैं।

शिव की आठ मूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं। जिनमें से चन्द्र तथा सूर्य का अग्नि में, अग्नि का आकाश में लय होता है। शिव का आकाश में अन्तर्भाव होने से ब्रह्माण्ड रूप में परिणत पंच-महाभूत ही शिव का स्वरूप है, यह सिद्ध होता है।

भू. भुवादि के रूप में परिणत जगत का अवस्थान पञ्च महाभूतों के अन्तर्गत होने के कारण यह निष्कर्ष सिद्ध होता है कि जगत का यह कलन अर्थात् संसरण शिव के अन्तर्गत ही होता है। इस प्रकार स्वभाव से ही शिव पञ्च-शक्तियों से युक्त है एवं शिव के ही अन्तः में जगत का कलन होता है।

पञ्च-भूतात्मक होने के कारण पञ्च-शक्तिमय जीव के अन्तः में पिण्डाण्ड की स्थिति है, तथा पिण्डाण्ड की ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति तथा स्थिति का स्थान है।

विपरीत-प्रतीति रूप विमर्श शक्ति के कारण जीव स्वान्तस्थ जगत को, वाह्य कक्षा में संकल्पित करता है। शिव से जीव की यह विशेषता है जो भेदक धर्म कही जाती है। अर्थात् ब्रह्माण्ड का मूल होने के कारण पिण्डाण्ड रूप जीव जब अपने स्वरूप को ब्रह्माण्ड से अधिक मानता है तब ब्रह्माण्डत्व तथा उससे भी उत्तीर्ण अवस्था को प्राप्त करता हैं अर्थात् विश्वमय तथा विश्वोत्तीर्ण शिवत्व को प्राप्त होता है।

उनविंशति सूत्रम्

अन्तरस्थितस्य मनसो न हि पूर्तियोग-
श्चैत्यस्य तत्कवलितत्व विनिश्चयायाः।
तद्वच्चितेरपि न पूर्तिरतो दशेयं
पक्षद्वये स्फुरदपूर्त्यभिपूर्तियोगः।।१९।।

व्याख्या

इदानीं स्वप्नस्य मिश्राध्वताप्रतिपादनाय तत्र चिदचिद्व्यापि साङ्कर्य दर्शयति। अन्तरित्यादि मनसः अन्तस्थितस्य चैत्यस्य देहब्रह्माण्ड रूपस्य वेद्यस्य पूर्तियोगः पुर्त्युपपत्तिः। नहि तत्कवलितत्व विनिश्चयायाः तेनोभय विधेन चैत्येन कवलितत्वं व्याप्तत्वं तत्र विनिश्चयः प्रतिपत्तिदार्ढ्यं यस्याः सा तथोक्ता। चितेरपि वकारस्थानकस्यात्मनोऽपि तद्वत् न। यथा चैत्यस्य तथेत्यर्थः। पूर्ति चैत्यस्य चिदन्तर्गतत्त्वे परमार्थे चिद्व्याप्तिरेवास्तु। अन्यथा प्रतिपत्तिदोषेण परमार्थस्य न खलु व्याहतिरिति नाशङ्कनीयम् निर्विकल्पो परमार्थो मूलवस्तु, निर्विकल्प वशादेव खलु संसाराध्यवसायः। नहि पारमार्थिकः संसारः अतस्तत्तत्प्रतीतिरूप विमर्शभासिता भावा अतात्विकत्वेन नापह्नवनीयाः। तथात्वे सर्वस्यापि संसारस्यापह्नवीयत्व प्रसक्तेरित्यलम्। रहस्योपदेशान्तराय कथाभिः अतश्चिदचितोर्व्याप्तिनिर्णयानैकान्त्यात्। इयं दशास्वप्नः चिदचिद्रूपे पक्षद्वये स्फुरदपूर्त्यभिपूर्ति योगाः स्फुरन्त्योरपूर्त्यभिपूर्त्यो योगः संसृष्टिरस्यामिति सा तथोक्ता।।१९।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

आगामी सूत्र में स्वप्नावस्था में मिश्राध्वता का प्रतिपादन सूत्रकार करना चाहते हैं अतः भूमिका के रूप में इस सूत्र में चिदचिद् के साङ्कर्य का निरूपण करते हैं।

व्याख्या

स्वप्नावस्था में चित् के अन्तर्गत चैत्य का लय हो जाता है, अतएव मन के अन्त में स्थित चैत्य का पूर्तियोग अर्थात् पूर्णत्व नहीं है। उसी के समान चित् का चैत्य में संसरण होने के कारण चैत्य के अन्तर्व्यापी चित् में भी पूर्णत्व नहीं है। इस प्रकार स्वप्नावस्था में चित् तथा चैत्य दोनों पक्षों में पूर्णत्व का योग सिद्ध नहीं है।

किन्तु यहाँ शङ्का उत्पन्न होती है कि परमार्थ दशा में चित् के अन्तर्गत चैत्य का विलय हो जाने से चित् के पूर्णत्व का प्रतिपादन होता है, अत: यहाँ चित् को अपूर्ण कहना दोष-युक्त है। इस शङ्का के समाधान के लिए टीकाकार लिखते हैं कि यद्यपि परमार्थ दशा में चैत्य की चित् के अन्तर्गत स्थिति होती है, यह निर्विवाद है; किन्तु परमार्थ मूल वस्तु है, जिसके कारण संसार का अध्यवसाय होता है, परन्तु संसार स्वयं पारमार्थिक नहीं है। अत: संसार की प्रतीति रूप विमर्श में भासित भाव अतात्त्विक हैं। इसी कारण वह अपन्हवनीय नहीं है। अर्थात् समस्त संसारात्मक प्रतीति अपन्हवनीय अर्थात् लय अवस्था में नहीं है, यही रहस्य-मार्ग का उपदेश है।

अत: चित् तथा अचित् की व्याप्ति का निश्चय एकान्तिक नहीं होता है, इस कारण से स्वप्न दशा में चित् तथा अचित् उभय की अपूर्णता प्रतिपादित करना अधिक युक्ति-युक्त है।

विंशति सूत्रम्

अध्वाभवेच्चिदपकर्षवशादशुद्धः
शुद्धस्त्वसौ भवति चैत्यपदापकर्षात्।
चिच्चैत्ययोरूपचयाऽपचयाऽविशेषान्
मिश्रो हि मायिकपदं भवतीदमध्वा।।२०।।

व्याख्या

स्वप्नस्याशुद्धाध्वता प्रवचनप्रस्थाने सर्वस्याप्यध्वनः स्वरूपं व्युत्पादयति। अध्वेति चिदपकर्षवशाच्चैत्यस्य व्याप्त्या चित्तत्वस्यापकर्षे व्याप्यत्वे प्राप्ते तद्वशात्। अशुद्धः अध्वा भवति। यत्र यतो व्याप्यत्वादपकर्षः तदेव पदमशुद्धाध्वेति व्यवहृयते। भेद जाग्रज्जड सुषुप्तिश्चाऽशुद्धाध्वेत्यर्थः। तत्र चैत्य व्याप्तेरैकाधिपत्येन चितोव्याप्यत्वात्। असावध्वा चैत्यपदापकर्षात् शुद्धो भवति। शुद्ध इति व्यवह्रियते तुर्य पदं शुद्धाध्वा चिद् व्याप्तैरैकाधिपत्येन चैतस्य व्याप्यत्वात्। इदं मायिकपदं स्वप्नपदं चिच्चैत्ययोरूपचयापदयाविशेषात्। उपचयो व्यापकत्वं अपचयो व्याप्यत्वम्। तयोरविशेषः सामान्यभावः। चिच्चैत्ययोः प्रत्येकं व्याप्य व्याप्तिसामान्यत् मिश्रो ह्यध्वा भवति मिश्राध्वेति व्यवह्रियते। विश्वस्य चिन्मयत्वपारमार्थ्यात् तद्व्याप्ति प्रतीतिरेव शुद्धिः तद्वान् शुद्धः। चैत्यव्याप्तेश्चमत्कार मात्रतया चित्स्वरूपावरकत्वेन मलपर्यायतायां चैत्य व्याप्ति प्रतीतिंरशुद्धः तद्वानशुद्ध इति वेदितव्यम्। जाग्रदादीनामेव दशानां शिवजीवयो संचरणपर्यायें पुनः पुनरभ्यावृत्तिविषयतया व्यवहारः।।२०।।

भाषा टीका

सूत्र सार -

इस सूत्र में स्वप्न की अशुद्धाध्वता के प्रवचन के तारतम्य में समस्त अध्वा के स्वरूप का निरूपण करते हैं।

व्याख्या

चित् के अपकर्ष के वश अध्वा अशुद्ध होती है। चैत्य के अपकर्ष में यह शुद्ध होती है; तथा चित्-चैत्य के अपकर्ष एवं उत्कर्ष की समानता में अध्वा का मिश्र-स्वरूप होता है, जो मायिक-पद कहा जाता है।

चैत्य की व्याप्ति के कारण चित् का अपकर्ष हो जाता है, अतः इस

अवस्था में अध्वा की अशुद्धता कही जाती है। नियम है कि जहाँ जिसके व्याप्यत्व के कारण अपकर्ष होता है, उसी पद का अशुद्ध अध्वा कहा जाता है। अत: भेद-जाग्रत् अवस्था में जड-सुषुप्ति अशुद्ध अध्वा है, क्योंकि यहाँ चैत्य के एकाधिपत्य के कारण चित् का व्याप्यत्व होता है।

जब चैत्य-पद का अपकर्ष होता है तब यही अध्वा शुद्ध कही जाती है। अत: तुर्य पद शुद्ध अध्वा है, क्योंकि यहाँ चित् की व्याप्ति का एकाधिपत्य होने से चैत्य का व्याप्यत्व होता है। (उपचय का अर्थ है व्यापकत्व तथा अपचय का अर्थ है व्याप्यत्व)। जब चित् तथा चैत्य का समान रूप से व्यापकत्व तथा व्याप्यत्व होता है तब स्वप्नावस्था में वह मायिक-पद मिश्र-अध्वा के नाम से कहा जाता है।

पारमार्थिक अवस्था में विश्व चिन्मय है; अत: चित् की व्याप्ति की प्रतीति को ही शुद्धि कहा गया है। अत: चित्-व्याप्ति प्रतीति से युक्त अध्वा शुद्ध है।

चैत्य की व्याप्ति के चमत्कार मात्र से चित् का स्वरूप आवृत्त हो जाता है, अत: मल की पर्याय भूत चैत्य की व्याप्ति की प्रतीति ही अशुद्धि है। अत: इस अशुद्धि से युक्त अध्वा अशुद्ध है।

शिव तथा जीव की जाग्रदादि अवस्थाओं में पुन: पुन: अभ्यावृत्ति अर्थात् सञ्चरण का विषय होने के कारण इसका अध्वा नाम से व्यवहार होता है।

एकविंशति सूत्रम्

आत्मा वकार वपुषाणुरुकारएव
देहात्मनैव खलु संसृतिरस्य जन्तोः ।
देहश्च तात्त्विकममुष्य सुषुप्तमेव
स्वप्ने तदत्र मन एव शरीरताभाक्।। २१।।

व्याख्या

प्रकरणमुपसंहरण स्वप्नेमनस एव शरीरत्वमिति विप्रतिपत्तिविषयत्वात् सविशेषं प्रतिपादयति। आत्मेति। अकारादि रूपे सुषुप्तिपदे आत्मस्थानीये य उकारः सोऽयमुकारूपेयमात्मा स्वप्नपदे वकारवपुषा वकाररूपेण अणुः संकुचितः। अस्यवकार रूपस्य जन्तोः जीवस्य देहात्मनैव देहरूपेणैव संसृतिः

संसरणं खलु शिववद्देहबन्धं विना निर्मल चिदाकाश रूपेण संसरणलीला चमत्कारानुसन्धानं न संभवतीति भावः। अतो जीवस्य संसरणे देहमवश्यं स्वप्नेमनः कल्पितम्। तात्त्विकं देहं सुषुप्तमेव निमीलितवहिरिन्द्रिय ग्रामं सच्छय्यातलं न जह्यातीति भावः। तस्यैव स्वप्न संसारिणोऽधिष्ठातृत्वे स्वप्नसंभाविताङ्गुलिच्छेदादेर्जाग्रति सम्पात्प्रक्तेः। यद्यपि तात्विकस्यापि देहस्य मनोभूलत्वं तथापि लौकिक प्रतीत्यपेक्षयाऽतात्विकं मनः कृतमित्युक्तम्। तत्तस्मात्कारणादत्र स्वप्ने मन एव पारिशेप्यादितिभावः। शरीताभाक् शरीत्वं भजतीति सम्प्रतिपन्नम् लौकिकस्यापीत्यर्थः।।२१।।

इति मातृकाचक्रविवेके स्वप्न-विवेकस्तृतीयः खण्डः

भाषा टीका

सूत्र सार -

अ-कार आदि स्वर-रूप सुषुप्ति पद में आत्मावबोधक उ-कार स्वप्नपद वकार के रूप में संकुचित हो जाता है। इस वकारात्मक जीव का ही देह-रूप से संसरण होता है।

व्याख्या

चिदाकाश में शिव की लीला के समान, जीव की संसरणात्मक लीला के चमत्कार का अनुसंधान देह रूप बंधन के बिना संभव नहीं है। अतएव स्वप्नावस्था में जीव के संसरण में निश्चित रूप से मन को ही देह के रूप में कल्पित किया गया है। यहाँ बाह्य इंद्रियों के निमीलित हो जाने पर भी तात्त्विक देह की छाया शेष रह जाती है।

स्वप्न-संसार में प्रवर्तित मन को ही यदि अधिष्ठाता स्वीकार किया जावे तब स्वप्नावस्था में अंगुलि आदि के विच्छेद की अनुभूति को जाग्रदात्मक अनुभूति के समान ही मानना होगा; ऐसी शंका उत्पन्न होती है, किन्तु तात्त्विक सृष्टि भी मनोमूलक है, अत: यह शंका युक्तियुक्त नहीं है। साथ ही लौकिक प्रतीति की अपेक्षा से भी अतात्त्विक मन को ही देह के रूप में स्वीकार किया गया है। इस प्रकार पारिशेष्य सिद्धान्त के अनुसार स्वप्न में मन ही शरीरता को प्राप्त करता है। अर्थात् मन ही प्रमाता है।

इति मातृकाचक्र विवेके स्वप्नविवेक: तृतीय: खण्ड:

विशेष

शम्भोः दक्षिणमक्षिभूतवितते: शोषे यकारः
पटुर्नेत्रं मध्यममुष्य लोक दहने जागर्ति रेफाक्षरं।
विश्वाप्लावक कर्मठं पशुपतेर्वामेक्षणेवाक्षरम्
त्रैनेत्रंपदमाददाति जपतामेतृत्रयंदेहिनाम्।।१।।

शम्भु के दक्षिण नेत्र में उद्भूत विस्तार के शोषण में य-कार पटु है। मध्यनेत्र में स्थित लोकों के दहन में रेफ अक्षर सदैव जाग्रत रहता है। पशुपति के वाम नेत्र में स्फुरित विश्व के आप्लावन के हेतु व अक्षर कर्मठ है। जो य, र, व तीन अक्षरों का जप करता है, उसको त्रैनेत्र पद की व्याप्ति होती है।

सुप्त्या मग्नस्य जलधौ विश्वस्योद्धृत्यधारणात्
मन्त्रविद्भिर्यवर्गोऽयम् धारणाशक्तिरुच्यते।।२।।

सुप्ति रूप जलाधि में मग्न विश्व को उद्धृत कर पुनः धारण करता है अतः मन्त्रज्ञ विद्वान य-वर्ग को धारणा शक्ति के नाम से सम्बोधित करते हैं।

वकारश्चलकारश्चभित्वा बुद्ध्यातितीक्ष्णया
वलभिद्वलभित्प्रोक्तो न वलो नाम राक्षसः।।३।।
स्थितिरिन्द्रे हि विश्वस्य लकारे मानसे तथा
तदिन्द्राख्या लकारस्य मन्त्रवित्साम्प्रदायिनी।।४।।

अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि से व-कार एवं ल-कार का भेदन कर, व एवं ल का भेदन करनेवाला वलभित् कहा गया है। अन्यथा वल नाम का कोई राक्षस नहीं है।

बलभित् इन्द्र का नाम है। बलभित का अर्थ है बल अर्थात् वकार एवं लकार का भेदन करने वाला। अन्यत्र वल को राक्षस के रूप में प्रस्तुत किया है। अतः टीकाकार ने स्पष्ट किया है कि वल नाम का कोई राक्षस नहीं है; जिसको भेद कर इन्द्र की पदवी प्राप्त हो। अपितु वकार जल का बीज है; तथा लकार पृथ्वी का बीज है जिसको भेद करने से साधक वलभित् कहा जाता है।

भेदप्रत्ययघस्मैरैर्नवरसैः पेयैर्यकारात्मकैर्लाकारै
रूपदंशनैश्च रदनोत्पत्तिक्रियायाः फलैः।
मायां ये समुपासतेकृतधियस्तेषां यवर्गास्थितं
मायास्फूर्तिरहस्यमन्तरचिरादुद्योततेस्वात्मनि ।।५।।

भेद ज्ञान रूप नवरस के मन्थन से उद्भूत यकारात्मक पेय से एवं लाकार रूप उपदंश से रदन क्रिया रूप फल की उत्पत्ति के द्वारा अर्थात् एकीकृत भेदज्ञान के पेय तथा फल के चर्वण से जो माया की उपासना करता है, वह कृत-बुद्धि साधक अ-वर्ग में स्थित हो जाता है, अर्थात् ज्ञान में प्रवेश कर जाता है। तथा माया की स्फूर्ति का रहस्य शीघ्र ही उसके अन्तः में प्रकाशित हो जाता है।

शिवानन्देनमुनिनादेशिकादेशवर्तिना
तृतीयंमातृकाचक्र विवेके व्याकृतं पदम्।।६।।

गुरु की कृपा से शिवानन्द मुनि ने श्रीमातृकाचक्र-विवेक के तृतीय खण्ड में इन पदों की रचना की है।

इति श्री स्वतन्त्रानन्दनाथ विरचित श्रीमातृकाचक्र-विवेक की शिवानन्द कृत संस्कृत व्याख्या एवं कृष्णानन्दकृत हिन्दी व्याख्या का तृतीय खण्ड।

तृतीय खण्डः



[illegible]

यथा मिहलामिश्रोक्ता न बलो नाम राक्षसः ।।३।।

स्थितिरिन्द्रे हि श्रियस्य लकार मानसे तथा

तदिन्द्राख्या लकारस्य मन्त्रविन्नाशदायिनी ।।४।।

अथवा तीक्ष्ण बुद्धि से म-कार एवं ल-कार का भेदन कर, म एवं ल का भेदन करनेवाला लोलिप कहा गया है। अन्यथा बल नाम का कोई राक्षस नहीं है।

❀ ❀ ❀

[illegible] इन्द्र का नाम है। बलभित का अर्थ है बल अर्थात् बकार एवं लकार का भेदन करने वाला। अन्यथा बल को राक्षस के रूप में प्रस्तुत किया है। अतः टीकाकार ने स्पष्ट किया है कि मूल नाम का कोई राक्षस नहीं है [illegible] इन्द्र की पत्नी [illegible] बकार जल का बीज है तथा लकार पृथ्वी का बीज है जिसको भेद करने से साधक बलभित् कहा जाता है।

श्रीमातृकाचक्र-विवेकः

चतुर्थः खण्डः

अथ चतुर्थः खण्डः

प्रथमं सूत्रम्

इत्यन्तरीषदिह सङ्कुचिते विमर्शे
सङ्कोचमाश्रयति बाह्यपदे प्रगाढम्।
प्रत्येकमेव कलयन्त्यथ भावमेवम्
भूतानि पञ्चजगतो नियतः कलापः।।१।।

व्याख्या

अथ स्कन्धान्तरमारंभमाणः पूर्वोत्तर स्कन्धयोः सम्बन्धदर्शनाय पूर्व स्कन्ध प्रमेयानुवाद पूर्वकमुत्तरस्कन्ध प्रमेयं प्रस्तौति इतीत्यादि। इत्युक्त प्रकारेण अन्तरन्तःकरणकक्ष्यां इह स्वप्नदशायांईषत्सङ्कुचिते विमर्शे बाह्यपदे बाह्येन्द्रिय कक्ष्यायां जाग्रति प्रगाढमतिमात्रं सङ्कोचमाश्रयति। भूतानि जगतो नियतः कलापः। जगतो भूत परिणाम रूपत्वात् भूतानां नियमेन जगत्कलापत्वम्। प्रत्येकं पञ्चभावंकलयन्ति प्राप्नुवन्ति विमर्शस्याति सङ्कोचपदे जाग्रति भूतानापम्यतिसङ्कोच परिग्रहात्। पृथिव्यादीनामेकैकस्य पृथिव्यादि पञ्चरूपत्वेनाति सङ्कोचः। पशु प्रमातृ पदस्य सलिलस्य पुरुष प्रकृत्यादि रूपेण पञ्चभूतात्मतयातिसङ्कोचः। पशु प्रमातृ ज्ञानेन्द्रिय पदायाः पृथिव्याः श्रोत्र त्वगादिरूपेण पञ्चभूतात्मतयातिसङ्कोचः। पशु प्रमातृ कर्मेन्द्रिय पदस्याग्नेर्वाक्पाण्यादि रूपेण पञ्च भूतात्मतयाति संकोचः। पशु प्रमातृ ज्ञेय वेद्य पदस्य वायोः शब्द स्पर्शादि रूपेण पञ्चभूतात्मतयातिसङ्कोचः। पशु प्रमातुः कार्य वेद्य रूपस्या काशस्याकाश वाय्वादि रूपेण पञ्चभूतात्मतयातिसङ्कोचः। अत्रायमर्थो गम्यते भूतानां प्रत्येकं पञ्चभूतात्मतया विलसनं स्वभावः। सुषुप्ति स्वप्नयोरपि सङ्कोचाविषयत्वान्नोन्मिषति। जाग्रत्यति सङ्कोच पदे तु समुन्मिषतीति। एतेन भूतानामपि सर्वेषां सर्व भूतैः सहाविना भाव नियम इति वेदितव्यम्।।१।।

भाषा टीका

सूत्र सार -

प्रस्तुत खण्ड की प्रस्तावना, विगत तथा आगामी खण्ड के प्रतिपाद्य विषय एवं सम्बन्ध का दिग्दर्शन प्रथम सूत्र में कराया गया है।

व्याख्या

पूर्व खण्ड में अन्तःकरणभूत स्वप्नावस्था में विमर्श के ईषत् सङ्कोच की चर्चा की गई है। स्वप्नगत ईषत् सङ्कुचित विमर्श का इन्द्रियात्मक बाह्य जाग्रत् अवस्था में पूर्ण सङ्कोच हो जाता है। जगत् पञ्च-महाभूतों के नियमित कलाप का परिणाम है। अतएव विमर्श-पद की पूर्ण सङ्कोचक जाग्रत् अवस्था में पञ्च-भूतों का भी पूर्ण सङ्कोच हो जाता है। विमर्श की पूर्ण सङ्कोचावस्था में पाँचों तत्त्वों के अन्तर्गत प्रत्येक भूत का समावेश रहता है, अर्थात्, सङ्कोच की परम सीमा जाग्रत् में एक रूप पृथ्वी-तत्त्व के अन्तर्गत पाँचों तत्त्वों का समावेश विद्यमान रहता है।

जीव-प्रमाता में प्रत्येक तत्त्व की संकुचित अवस्था में सलिल का पुरुष-प्रकृति आदि रूपों में, ज्ञानेन्द्रियात्मक पृथ्वी का श्रोत्र-त्वग आदि रूपों में, अग्नि का वाक्-पाणि आदि रूपों में, तथा कारण-भूत आकाश का कार्य रूप आकाश अर्थात् वायु आदि के रूप में, पूर्ण सङ्कोच हो जाता है। इसका तात्पर्य है कि पृथ्वी आदि प्रत्येक भूत के अन्तर्गत पाँचों भूतों का विलास होता है। इस प्रकार पंच-भूतों का सङ्कोच केवल जाग्रत अवस्था में घटित होता है, स्वप्न तथा सुषुप्ति इन अवस्थाओं में पंच-महाभूतों का उन्मेष नहीं होता है; केवल अव्यक्त रूप में स्थिति रहती है।

इस प्रकार सिद्धान्त के प्रतिपादन से पंचभूतों के परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध की सिद्धि भी होती है।

द्वितीयं सूत्रम्

यद्वर्ण पञ्चकमपूर्वकमादि वर्ग्य-
मन्तस्थतां भजति सङ्कुचितेतदीषत्।
तत्कादि वर्ग तनु सङ्कुचितं नितान्त
मूष्मात्मकञ्च दधतेऽङ्कुरिताभिपूर्ति।।२।।

व्याख्या

इदानीं जाग्रत्प्रस्तावे कादिमान्त स्पर्शवर्णानां सङ्कोचाधिक्य दर्शनाय सर्ववर्ण कारणरूपस्याकारादिवर्ण पञ्चकस्य स्फुरणे प्रतिपादित प्रक्रियां व्युत्पादयति यद्वर्णेत्यादि। आदि वर्गः-वर्णानामादित्वादादिवर्गः स्वरवर्गः। तत्र भवम् आदिवर्ग्यम्। अपूर्वकम् अकारः पूर्वोयस्य वर्णपञ्चकस्य तदपूर्वकम् यद्वर्णपञ्चकं अकारेकारोकार ऋकार लृकार रूपम्। तदेवं वर्णपञ्चकं ईषत्सङ्कुचितं सत् ईषत्स्पृष्टता प्रयत्नविषयतया ईषत्सङ्कुचितं सत् अन्तस्थतां यकारादि रूपतां भजति। इतीकारस्येषत्सङ्कोचो यकारः ऋकारस्य रेफः लृकारस्य लकारः उकारस्य वकारः सङ्कोचः मनस एव लकारस्थानकस्य विसर्ग प्रमातृ पर्याय देह रूपत्वादकारसङ्कोचो नास्ति। एवमकारादि वर्ण पञ्चकस्यैव रूपान्तरमन्तस्थवर्गः तदेव वर्ण पञ्चकं नितान्त सङ्कुचितं स्पृष्टताविषयतयाति सङ्कुचितं सत् कादि वर्ग तनु-कवर्गादि वर्ग पञ्चक स्वरूपम्। अकारस्य सङ्कोचः कवर्गः इकारस्य सङ्कोचः च वर्गः ऋकारस्य सङ्कोचस्टवर्गः लकारस्य सङ्कोचस्तवर्गः। उकारस्य सङ्गोचः पवर्गः अथ तदेव वर्ग पञ्चकं अङ्कुरिताभिपूर्ति ईषद्विवृत्ति प्रयत्न विषयतया अङ्कुरित पूर्णत्वं सत् ऊष्मात्मकं च दधते भजति। पवर्ग पञ्चक रूपेण सङ्कुचितस्याकारादि वर्ण पञ्चकस्येषत्पूर्णत्वरूपा ऊष्माण इत्यर्थः। चवर्गस्येषत्पूर्णत्वं शकारः। टवर्गस्येषत्पूर्णत्वं षकारः। तवर्गस्ये षत्पूर्णत्वं सकारः। कवर्गस्येषत्पूर्णत्वं हकारः। एवं कारणरूपस्याकारादि वर्ण पञ्चकस्यैव दशा विशेषास्तत्कार्यरूपाः सर्व वर्णा इति विवेकः।।२।।

भाषा टीका

सूत्र सार -

अ, इ, उ, ऋ, ल पांच वर्ण अन्य समस्त वर्णों की उत्पत्ति का करण हैं। क से म पर्यन्त स्पर्श वर्ण कार्य रूप जाग्रत् अवस्था के द्योतक हैं अतः

स्पर्श-वर्ण समूह में सङ्कोच का आधिक्य है जिस को सिद्ध करने के हेतु प्रथम कारण रूप अ-कार आदि पाँच वर्णों के स्फुरण की प्रक्रिया सिद्ध करना आवश्यक है जो इस सूत्र का विषय है।

व्याख्या

स्वर वर्ग का वर्णमाला के अन्तर्गत आदि स्थान है, अत: इस को आदि-वर्ग के नाम से सम्बोधित किया जाता है। स्वर-वर्ग के प्रथम पाँच वर्ण अ, इ, उ, ऋ, लृ के उच्चारण में अवयवों का स्पर्श ईषत् होता है। अत: यह पांचों वर्ण ईषत्-स्पृष्ट कहे जाते हैं। अवयवों के स्पर्श से स्वर संकुचित हो जाता है अत: इसको ईषत्-संकुचित भी कहते हैं। ईषत् सङ्कोच के कारण अकार आदि पाँचों वर्ण अन्त:स्थ वर्णों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। अर्थात् इकार यकार में, उकार वकार में ऋकार रकार में तथा लृकार लकार में परिवर्तित हो जाता है।

यही ईषत्-स्पृष्ट स्वर-पञ्चक जब पूर्ण संकोचावस्था को प्राप्त करते हैं तब अ-कार आदि पांचों वर्ण क-वर्ग, च-वर्ग, ट-वर्ग, त-वर्ग तथा प-वर्ग के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार अ-कार का क-वर्ग, इकार का च-वर्ग, ऋकार का ट-वर्ग, लृकार त-वर्ग तथा उकार का प-वर्ग पूर्ण संकुचित स्वरूप है।

अकार आदि वर्ण-पञ्चक जब ईषत्-विवृत्ति का विषय होते हैं तब पूर्णत्व के अङ्कुरित होने पर पाँचों वर्णों के उच्चारण में ऊष्मता का स्फुरण होता है। अत: प-वर्ग के रूप में सङ्कुचित अकार आदि का ईषत्-विवृत रूप श, स, स, ह ऊष्माण वर्ण समूह है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया में च-वर्ग का शकार, ट-वर्ग का षकार, त-वर्ग का सकार, क-वर्ग का हकार ईषत्-विवृत रूप है। इस प्रकार कार्य-रूप समस्त वर्ण समूह कारण-रूप अकार आदि वर्ण-पञ्चक की दशा विशेष हैं।

तृतीयं सूत्रम्

स्थानेन साधितधरा प्रभृतिस्वभावे
वर्णोत्करे भवति मातृपदं प वर्गः।
आत्मामनस्तदनु बुद्धिरहंक्रिया च
प्राक्चेतसः प्रकृतिरप्यवरोह भङ्ग्या॥३॥

व्याख्या

अथ स्पर्श कदम्बकस्य स्थान वशात् पृथिव्यादि रूपत्व विवेकं प्रागुक्त प्रमेयतया सूचयन्निति तत्प्रमातृ पदस्य पवर्गस्य वर्ण पञ्चके तत्प्रतिपाद्यं तत्वपञ्चकं व्युत्पादयति स्थानेति। स्थानेन कण्ठताल्वादिना साधितधरा प्रभृति स्वभावे प्रागुक्तप्रक्रियया नीचोच्चस्थाने पर्यालोचनया निश्चित पृथिव्यादि स्वभावे वर्णोत्करे स्पर्शवर्णकदम्बके पवर्गो मातृपदं प्रमातृस्थानं भवति। यद्यपि कवर्गस्यैव व्यापकतया प्रमातृ पदत्वं तथापि चैतस्य प्रमातृत्वं वैकारिकम्। चितः प्रमेयत्वञ्च तथेति चित्पदस्य पवर्गस्य प्रमातृ पदव्यवहारः पूर्व शाशसनयेति निरवद्यम्। अवरोह भङ्ग्याविलोम क्रमेण मकारमारभ्य पकार पर्यन्तमित्यर्थः। आत्मा, मनः, बुद्धिः अहंक्रिया प्रकृतिरिति पवर्गवर्णानां विलोमक्रमेण तत्व पञ्चक स्वरूपता। तद्भावकत्वे तत्स्वरूपत्वमुपचारतः मकार आत्मा पुरुष तत्वभित्यर्थः। भकारो मनस्तत्वं बकारो बुद्धितत्वं फकारो अहंकार तत्वं पकारो प्रकृति तत्वमिति विज्ञेयम्। पकारादि वर्णपञ्चकस्य पृथिव्याद्याकाशान्तरा (ता) यां सत्यामेव प्रकृत्यादि व्यवहारः। पृथिब्यंशः प्रकृतिः जलांशोऽहंकारः। अग्न्यांशो बुद्धिः वाय्वंशो मनः आकाशांशः पुरुष इति विवेकः। एवमितर वर्ग चतुष्टयस्यापि प्रथम वर्णादारभ्य पृथिब्याद्यंशतत्वे सत्येव वक्ष्यमाण तत्तत्तत्वरूपता विज्ञेया। ननु पुरुषतत्वानन्तरं प्रकृतितत्वमिति प्रवादः तत्कथमत्र क्रम विरोध इत्यत्राह प्राक्चेतस इति। चेतसो मनसः प्राक् प्रथमं प्रकृतिरिति तत्वोदय क्रमः। अकार पृथिवी रूपयोः पुरुषः प्रकृत्योर्धर्मिणोरनन्तरं तद्धर्म भूतानां मनोबुद्ध्यहंकाराणामुदस्यो-पपत्तिः तथापि तेषां धर्माणाँ धर्मिद्वयमध्य एवोदयात्। मध्यगता परिगणना, उदयापेक्षया धर्माणां धर्मिद्वयानन्तर्यमनवस्थित्यपेक्षया तु धर्मिद्वय मध्यत्वमिति भावः। मध्यत्वेऽपि मनसः पुरुष धर्मत्वात् तत्समीप एरावस्थानम्। अहङ्कारस्य प्रकृति धर्मतया प्रकृति समीप एव स्थितिः मनोऽहंकारयोर्मध्ये उभय धर्मस्य बुद्धेः स्थितिरिति विज्ञेयम्। विसर्ग व्याप्तौ प्रकृत्यहंकार बुद्धि मनः पुरुषः इति बिन्दु व्याप्तौ पुरुषमनो बुद्ध्यहंकार प्रकृतयः इति क्रमः तदत्र विसर्ग व्याप्तैः प्राथम्यात् प्रकृत्यादिकः क्रमोङ्गीकर्त्तव्यः।।३।।

भाषा टीका

सूत्र सार -

स्पर्श-वर्णों की तालिका के अन्तर्गत उच्चारण-स्थान के तारतम्य से पृथ्वी

आदि तत्त्वों के स्वरूप का, पूर्वोक्त सिद्धान्त के अनुसार, प्रतिपादन किया जा चुका है। इस सूत्र में प-वर्ग को प्रमातृ पद के रूप में प्रतिपादित करने के हेतु पाँचों वर्णों का पृथक-पृथक् व्युत्पादन करते हैं।

व्याख्या

पूर्व में कंठ, तालु आदि स्थानों में उत्कर्ष तथा अपकर्ष के आधार पर क्रम से पृथ्वी आदि तत्त्वों के स्वभाव का प्रतिपादन किया गया है। इस सूत्र के सिद्धान्त के अनुसार प-वर्ग प्रमातृ-पद यद्यपि व्यापकता के कारण पृथ्वी आदि पञ्च तत्त्वों के द्योतक है। क-वर्ग को प्रमातृ-पद के रूप में स्वीकार किया जाता है किन्तु चैत्य दशा में प्रमाता वैकारिक होता है, एवं तदनुसार चित् भी वैकारिक प्रमेय रूप हो जाता है अतएव पूर्व निर्दिष्ट सिद्धान्त के अनुसार प वर्ग को ही प्रमातृ पद के रूप में स्वीकार करना युक्ति युक्त है।

प-वर्ग के मकार से पकार पर्यन्त वर्णों के स्वरूप का विलोम क्रम से प्रतिपादन करते हैं। मकार आत्मा का, यकार मन का, ब-कार बुद्धि का, फ-कार अहङ्कार का तथा प-कार प्रकृति का द्योतक है। वर्णों में तत्त्वों का भाव है अत: प-वर्ग के वर्णों का पञ्च तत्वात्मक स्वरूप है। पृथ्वी आदि पञ्च तत्त्वों के द्योतक पकार आदि पाँच वर्ण हैं, अत: पकार आदि वर्णों का प्रकृति आदि नाम से व्यवहार किया जाता है। अर्थात् पृथ्वी का अंश प्रकृति है, जल का अंश अहङ्कार है, अग्नि का अंश बुद्धि है, वायु का अंश मन है, आकाश का अंश पुरुष है। इसी प्रकार इतर वर्ग-चतुष्टय में, प्रथम वर्ण से अन्तिम वर्ण तक पृथ्वी पञ्च तत्त्वों के द्योतक हैं तथा जिसके अनुसार ही इनका स्वरूप कहेंगे।

साधारणतया पुरुष तत्त्व के पश्चात् प्रकृति तत्त्व की उत्पत्ति का क्रम प्रतिपादित किया जाता है, किन्तु यहाँ पुरुष के पश्चात् मन का निरूपण किया गया है। यह शंका का विषय हो जाता है। अत: क्रम भंग के कारण का स्पष्टीकरण करते हैं।

आकाश एवं पृथ्वी तत्व के स्वरूप पुरुष एवं प्रकृति धर्मी हैं, मन, बुद्धि तथा अहंकार इनके धर्म हैं। धर्मी से धर्म की उत्पत्ति होती है, अत: मन, बुद्धि तथा अहङ्कार की उत्पत्ति पुरुष तथा प्रकृति रूप धर्मी से है। तात्पर्य यह कि पुरुष तथा प्रकृति दोनों धर्मियों की उत्पत्ति के पश्चात् मन आदि धर्मों की उत्पत्ति स्वीकार करने की अपेक्षा दोनों धर्मियों के मध्य में मन आदि की स्थिति की

गणना अधिक उपयुक्त है। प्रकृति तथा पुरुष के मध्य में स्थित होने पर भी मन पुरुष का धर्म है अतएव मकार से अवबोधित पुरुष के निकट भकार से अवबोधित मन की स्थिति दर्शाई गई है। फकार के द्वारा अवबोधित अहङ्कार प्रकृति का धर्म है, अत फ-रूप पृथ्वी के निकट फकार रूप अहङ्कार की स्थिति है। मन तथा अहङ्कार दोनों का धर्म बुद्धि है अतएव दोनों के मध्य में अर्थात् फ एवं भ के मध्य में बुद्धि रूप ब की स्थिति है।

विसर्ग-व्याप्ति में प्रकृति अहङ्कार, बुद्धि, मन तथा पुरुष क्रम से व्यवस्था की जाती है तथा बिन्दु-व्याप्ति में इसके विलोम पुरुष, मन, बुद्धि अहङ्कार तथा प्रकृति क्रम से गणना की जाती है। विसर्ग की व्याप्ति प्रथम होती है अतः प्रकृति आदि क्रम से उल्लेख करने से अभिप्राय है कि यहाँ विसर्ग व्याप्ति के क्रम का प्रतिपादन किया गया है।

चतुर्थ सूत्रम्

श्रोत्रादिकं खलु तवर्गमयं विलोमा-
द्वागादि पञ्चकमिदञ्च टवर्ग रूपम्।
शब्दादि खाद्यपि चवर्ग कवर्गरूप
मेतानिवायुदहनाम्बुमहीविलासाः।।४।।

व्याख्या

पवर्ग वर्ण प्रतिपाद्यानि तत्वानि उक्त्वा तवर्गादि वर्ण प्रतिपाद्यान्यपितत्वानि व्युत्पादयति। श्रोत्रादिकमित्यादि श्रोत्रादिकं श्रोत्रत्वक् चक्षुर्जिह्वाघ्राणरूपं तत्त्वपञ्चकं। विलोमात्त्वर्गमयं विलोमक्रमिक तवर्गरूप नकारादि तकारान्त वर्णपञ्चक रूपमित्यर्थः। अत्रापि नकारप्रतिपाद्य श्रोतृतत्वमाकाशांशः। धकार प्रतिपाद्या त्वक् वाय्वंशः। दकारप्रतिपाद्यं चक्षुस्तेजोंऽशः थकार प्रतिपाद्याजिह्वा जलांशः। तकारप्रतिपाद्यःघ्राणःपृथिव्यंश इति विज्ञेयं। इदं प्रत्यक्ष निर्देश्यंवागादि पञ्चकञ्चवाक्पादपाण्युपस्थपायुरूप तत्व पञ्चकं। विलोमादित्यस्यात्रापि संबंधः। विलोमक्रमिकटवर्गरूपंणकार आकाशांसो वाक्। ढकरोवाय्वंशःपादौ। डकारस्तेजोंऽशंः पाणी। ठकारोजलांश उपस्थः। टकारः पृथिव्यंश पायू। शब्दादि शब्दस्पर्श रूप रसगन्धरूप तत्वपञ्चकमाकाशाद्यपि च आकाश वाय्वग्नि जलपृथिवीरूपं तत्वपञ्चकञ्च। क्रमेण चवर्ग कवर्ग रूपं। अत्रापिविलोमादित्य-

स्यानुवृत्तिः। अकार आकाशांशः शब्दः झकारो वाय्वंशः स्पर्शः। जकारस्तेजोंऽशंः रूपम्। छकारःसलिलांशो रसः। चकारः पृथिव्यंशोगन्धः। ङकार आकाशः। घकारोवायुः गकारस्तेजः खकार सलिलम्। ककारःपृथिवीति विवेकः। एतानितवर्गादि वर्गचतुष्टयतत्वानि वायु दहनाम्बु महीविलासाः। वायोस्तवर्गाधिष्ठातृत्वात् तवर्गप्रतिपाद्य तत्वानि वायु विलासा इति विज्ञेयं। अग्नेष्टवर्गाधिष्ठातृत्वात् टवर्गप्रतिपाद्यतत्वानि अग्निविलासाः। जलस्यचवर्गाधिष्ठातृत्वात् चवर्ग प्रतिपाद्यतत्वानिजलस्य विलासाः। पृथिव्याः कवर्गाधिष्ठातृत्वात् कवर्ग प्रतिपाद्यतत्वानिपृथिवीविलासा इति विवेकः।।४।।

भाषा टीका

सूत्र सार -

प-वर्ग द्वारा प्रतिपाद्य तत्त्वों का वर्णन करने के पश्चात् त-वर्ग आदि वर्णों के द्वारा प्रतिपाद्य तत्त्वों का इस सूत्र में व्युत्पादन करते हैं।

व्याख्या

विलोम-क्रम से श्रोत्रादि इन्द्रियाँ त-वर्ग मय हैं। श्रोत्र का द्योतक नकार, त्वक् का द्योतक धकार, चक्षु का द्योतक दकार, जिह्वा का द्योतक थकार, तथा घ्राण का द्योतक तकार है। यहाँ भी नकार द्वारा प्रतिपाद्य श्रोत्र-तत्त्व आकाश का अंश है, धकार द्वारा प्रतिपाद्य त्वक् वायु का अंश है। दकार द्वारा प्रतिपाद्य चक्षु तत्त्व तेज का अंश है, थकार द्वारा प्रतिपाद्य जिह्वा जल का अंश है, तथा तकार द्वारा प्रतिपाद्य घ्राण पृथ्वी का अंश है।

वागादि तत्त्व-पञ्चक का द्योतक ट-वर्ग है। विलोम-क्रम से आकाश का अंश णकार वाक्-तत्त्व है। ढकार वायु का अंश पाद है, तेज का अंश डकार पाणि-तत्त्व है, जल का अंश ठकार उपस्थ है, तथा पृथ्वी का अंश टकार पायु है।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तत्त्व-पञ्चक आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी च वर्ग एवं क वर्ग का रूप है।

इसी प्रकार च-वर्ग तथा क-वर्ग भी विलोम क्रम से आकाशादि रूप हैं। आकाशांश ञ शब्द, वायु-अंश झकार स्पर्श, तेजांश जकार रूप, सलिलांश

चकार रस, पृथ्वी-अंश च-कार गन्ध है तथा ङ्ङ्कार आकाश, घकार-वायु, गकार तेज, ख-कार सलिल क-कार पृथ्वी के द्योतक हैं।

त-वर्ग, ट-वर्ग, च-वर्ग तथा क-वर्ग द्वारा अवबोधित तत्त्व वायु, अग्नि, अम्बु तथा मही तत्त्व के विलास मात्र हैं। वायु त-वर्ग का अधिष्ठाता है अतः त-वर्ग द्वारा प्रतिपाद्य तत्त्व वायु के विलास हैं, अग्नि ट-वर्ग का अधिष्ठाता है अतः ट-वर्ग-प्रतिपाद्य तत्त्व अग्नि के विलास हैं, जल का अधिष्ठाता च-वर्ग है अतः च-वर्ग-प्रतिपाद्य तत्त्व जल के विलास हैं, पृथ्वी का अधिष्ठाता क-वर्ग है अतः क-वर्ग-प्रतिपाद्य तत्त्व पृथ्वी के विलास मात्र हैं।

पञ्चमं सूत्रम्

देहात्मिका प्रकृतिरान्तर रूपमुर्व्याः
सूक्ष्मं जलस्य खलु रूपमहङ्क्रिया स्यात्।
अग्नेस्तु बुद्धिनिलस्य मनोऽन्तरात्मा
सर्गः खलु प्रकृतिजः क्षिति सर्गबीजम्।।५।।

व्याख्या

इदानीं क च ट त वर्ग तत्वात्मनः स्थूलस्य पृथिव्यण्डस्य प वर्ग वर्ण रूप प्रकृत्यन्तं सूक्ष्मरूपतया कारणमिति प्रतिपादयति देहात्मिकेति। देहात्मिका देहरूपिणी प्रकृतिः देहाभिमान एव प्रकृतिरिति व्यवह्रियते। सा प्रकृतिः उर्व्याः पृथिव्याः क वर्ग रूपिण्याः इति भावः। आन्तरं अन्तः कक्ष्यास्थितं रूपं स्वरूपं सूक्ष्मं रूपं अहंक्रियाहङ्कारः चवर्ग रूपस्य सलिलस्याऽऽन्तरं रूपं स्यात् खलु। आग्नेष्ट वर्ग रूपस्य अन्तरात्मना बुद्धिः। अनिलस्य त वर्ग रूपस्य अन्तरात्मना मनः। एवं प्रकृतिज संसारः। प वर्ग वर्ण चतुष्टयं भवति। रूप प्रकृति संसारः। क्षिति वर्गस्य कवर्गादि वर्ग चतुष्टयात्मनः पृथिवीं संसारस्य बीजं कारणम्. सूक्ष्मस्य प्रकृतिसंसारस्यैव स्थूलभावः पृथिवी संसार इति। प्रकृति संसारस्य ब्रह्माण्ड पर्यायस्य कार्यत्वं स्वाभाविकस्य प्रकृत्यन्तस्य पृथिव्यन्त मूलत्वम्। प्रकृत्यन्तस्तु माया विलास इति तात्पर्यम्। अतएव चतुरस्र रूपस्य प्रकृत्यन्तस्य रविबिम्बत्वं दशारयुग्म रूपस्य पृथिव्यन्तस्य रश्मि चक्रत्वं महायन्त्रे विभाव्येत।।५।।

भाषा टीका

सूत्र सार -

इस सूत्र में दर्शाया गया है कि सूक्ष्म रूप होने से पवर्ग क-च-ट-त वर्गों के द्वारा अवबोधित पृथ्वी रूप स्थूल तत्त्वों का कारण है।

व्याख्या

देहाभिमान रूपिणी प्रकृति क-वर्ग रूप पृथ्वी का आन्तरिक स्वरूप है। च-वर्ग रूप सलिल का आन्तर रूप अहङ्कार है। ट-वर्ग रूप अग्नि का आन्तर रूप बुद्धि है तथा त-वर्ग रूप अनिल का अन्तरात्मा मन है। इस प्रकार प-वर्ग वर्ण-चतुष्टय प्रकृति से उद्भुत संसार है। अर्थात् पृथ्वी, अहङ्कार, बुद्धि तथा मन सूक्ष्म प्रकृति की उत्पत्ति हैं, एवं क-च-ट-त वर्गों के द्वारा अवबोधित पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु-तत्त्वों की कारण भी सूक्ष्म प्रकृति है। अर्थात् सूक्ष्म प्रकृति रूप संसार का स्थूल भाव पृथ्वी-संसार है। प्राकृतिक संसार का पर्यायभूत ब्रह्माण्ड पृथ्वी पर्यन्त तत्त्वों का मूल है तथा माया का विलास प्रकृति पर्यन्त है।

इसका तात्पर्य है कि श्रीचक्र में मन, बुद्धि, अहङ्कार तथा प्रकृति का अभिव्यञ्जक चतुरस्र रवि का बिम्ब है, एवं ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, पञ्चतन्मात्रा एवं पञ्च तत्त्वों का अभिव्यजक दशार-द्वय रवि की रश्मियों का चक्र है।

षष्ठं सूत्रम्

देहात्मनोः प्रकृति पूरुषयोः प्रमाता
देहोऽत्र तस्य निलयोऽपि तदङ्गमात्मा।
आत्मा यता भवति मातृपदं वपुश्चेत्
तल्लीनमस्त्यविरहः शिवयोः स्वभावः॥६॥

व्याख्या

इदानीं प्रकृत्यण्डमारभते देहात्मनोरित्यादि। देहात्मनोर्देहात्मपर्याययोः प्रकृति पुरुषयोर्मध्ये अत्र विसर्ग प्रकरणे देह प्रमाता तस्य देहस्य निलयोऽपि आश्रयोऽपि अपि शब्देनाङ्गित्व संभावना प्रतीयते। देहस्य विमर्शतत्व परिणाम

रूपस्य आत्मनः प्रकाशं बिना न कुत्रापि स्थिति रुपपद्यते। धर्मस्य धर्मिण्येवाश्रयणमिति नियमात्। आत्मा तदङ्गं तस्य देहस्याङ्ग तदन्तर्गतत्वेन तदङ्गत्वम् विसर्ग प्रमातृ देहस्य प्रकृति पर्यायस्य व्याप्तौ आत्मा तदन्तर्गतः सन् तदङ्गतां भजते। यथा आत्मा प्रमातृ पदं प्रमातृस्थानं भजति आरोहते। तत्र बिन्दु व्याप्ति पदे तल्लीन तस्मिन्नात्मनि लीनमेकरसीभूत वपुः अस्ति सत्तां अवलम्बते न तु परमोच्छेद प्राप्नोति। तथात्वे विमर्शपदस्यापुनरुदयप्रसङ्गात् विमर्शस्य पुनः पुनरुदय प्रकाशव्याप्तावपि विमर्शस्या त्यन्तिकोच्छेदो न संभाव्यते इत्यवधारणीयम्। प्रकाश विमर्शयोरितरेतर व्याप्तौ उभयोरप्यनुच्छेद प्रतिपादयति अविरहः इति। शिवयोः शिवाचशिवश्चशिवौ तयोः शिवयोः अविरहः अन्योन्याविनाभावा स्वभावः नैसर्गिक इत्यर्थः। प्रकाशं विना विमर्शोऽपि न विमर्श विन प्रकाशोऽपि न, किन्तु प्रकाश व्याप्तौ विमर्शस्य प्रकाशैकरस्येन स्थितिः, विमर्श व्याप्तौ प्रकाशस्य भिन्न रसत्वेनैवस्थितिरिति विभागः।।६।।

भाषा टीका

सूत्र सार -

इस सूत्र में प्रकृति-अण्ड के विवरण का प्रारम्भ करते हैं।

व्याख्या

देह तथा आत्मा के पर्यायवाची क्रमशः प्रकृति तथा पुरुष हैं। विसर्ग दशा में देह प्रमाता है अतः आत्मा उसका अङ्ग है।

प्रकाश-रूप आत्मा के बिना विमर्श-तत्त्व की परिणाम-रूप देह का अस्तित्व सम्भव नहीं है; तथा नियम है कि धर्म का आश्रय धर्मी होता है; अतः यद्यपि आश्रयभूत होने के कारण आत्मा अङ्गी है तथा देह अङ्ग है, तथापि यहाँ विसर्ग व्याप्ति में देह ही प्रमाता होने से अङ्गी अर्थात् धर्मी है तथा देह के अन्तर्गत व्याप्त होने से आत्मा उसका अङ्ग है।

बिन्दु व्याप्ति में आत्मा जब प्रमाता का स्थान ग्रहण करता है, तब देह का आत्मा के अंतर्गत एकरस लय हो जाता है। तथा देह आत्मा के अंतर्गत समान सत्ता को प्राप्त हो जाती है। देह का आत्यन्तिक विनाश नहीं होता है। क्योंकि देह का परम विनाश स्वीकार करने से विमर्श के पुनः उदय का प्रसङ्ग समाप्त हो जाता है, किन्तु प्रकाश की व्याप्ति में विमर्श के पुनःपुनः दर्शन

होते हैं, अत: प्रकाश-व्याप्ति में भी विमर्श का आत्यन्तिक उच्छेद नहीं होता। प्रकाश तथा विमर्श की अन्योन्य अर्थात् परस्पर एक की दूसरे में व्याप्ति होती है अत: दोनों का ही आत्यन्तिक उच्छेद सम्भव नहीं है। यही सिद्धान्त है।

शिव तथा शक्ति का अविरह स्वभाव है, अर्थात् दोनों का अविनाभाव सम्बन्ध नैसर्गिक है। प्रकाश के बिना विमर्श की सत्ता नहीं है तथा विमर्श के बिना प्रकाश की सत्ता नहीं है। दोनों में इतना ही अन्तर है कि प्रकाश की व्याप्ति दशा में विमर्श प्रकाश के साथ एकरस हो जाता है; किन्तु विमर्श की व्याप्ति में प्रकाश भिन्न रस के रूप में व्याप्त रहता है।

सप्तमं सूत्रम्

जाड्यादहंकृतिरितिप्रथतेविमर्शो
बुद्धिजडाजडतया मनस्त्वजाड्यात्।
त्रैगुण्यमेतदबहिः करणत्रयं स्यात्
सौषुप्तजाग्रदवशेषदशानिदानम्।।७।।

व्याख्या

एवं धर्मिणोः देहात्मनोः स्वरूपं विचार्य इदानीं अहङ्कार बुद्धि, मनो रूपेण त्रिविधस्य विमर्शादभिन्नस्य धर्मस्यस्वरूपंपरामुशति। जाड्यादित्यादि। विमर्श जाड्यात् जडत्वभूमिका परिग्रहात् अहंक्रितिरितिप्रथते प्रसिद्धो भवति। जडत्व भूमिका परिग्रहे विमर्शएवाहंकार शब्देन व्यवहियते इत्यर्थः। देहेऽहमितियोऽयं विमर्शः स एव जड; विमर्शोऽहङ्कार। जडभूतदेहाश्रितत्वेन तद्धर्मत्वात् अयमेव जडविमर्शोऽन्तःकक्ष्यायामहङ्कारः सन् देह धर्म वहिः कक्ष्यायां शब्दादिपञ्चकरूपः सन् भूत चतुष्टयाङ्काया पृथिव्याः अङ्गिनन्याधर्मः। अथ विमर्शएवजडाजडत्व भूमिका परिग्रहे बुद्धिरितिव्यवह्रियते। इत्याह बुद्धिर्जडा जडतयेति। क्रिया साधनमिन्द्रियं स्वयमपिस्थौल्ययेन क्रियारूपत्वाज्जडंच स्वत एव स्पन्दमानत्वादजडञ्च अतः क्रिया साधन रूपेण जडाजडो विमर्शः अन्तः कक्ष्यायां बुद्धिरित्युच्यते। बहिः कक्ष्यायां वागादि पञ्चकमुच्यते। अथविमर्श एव अजडत्व भूमिका परिग्रहेण मन इत्युच्यते। विमर्शस्याजडत्वं ज्ञानसाधनरूपेण। ज्ञानसाधनं खलु मनश्चक्षुरादिकमन्तर्बहिः कक्ष्याविभक्तंसूक्ष्मरूपतया बुद्धिवागादि विलक्षण पदं जडमेव। एवं विमर्श रूपमहङ्ककाराद्यन्त करण त्रयमेव गुणत्रयमित्याह।

त्रैगुण्य मिति। एतद्बहिःकरणत्रयं अन्तःकरणत्रयत्रैगुण्यं सत्त्वादित्रिगुण समाहारः स्यात्। अहङ्कारोरजोगुणः उत्पत्तिरूपत्वात् बुद्धिः सत्वं स्थिति रूपत्वात्। मनस्तमो गुणः संहाररूपत्वात्। चिदेकाकारता खलु संहारः प्रकाश विश्रान्तिरूपो लौकिकैस्तम इत्युच्यते। तदस्य मनसो लौकिकापेक्षयैव तमस्त्वम्। अथवा क्रियायाः संहारपक्षे क्रिया रूपोऽहङ्कारस्तमः। ज्ञानरूपं मनोरज। अजडत्वं जगदुत्पत्तिदशा। जडत्वं तत्संहारः इतिलौकिकः पक्षः। जडत्वं जगदुत्पत्तिदशा, अजडत्वंसंहारेति योग सिद्धान्तः। अतो यथा विवक्षितं जडाजडयोरहंकार मनसोस्तमो रजोगुणयोर्योजना कर्तव्या। अथैतद्देहान्तः करणत्रयं सुप्त्यादि दशत्रयबीजमित्याह। सौषुप्तेति। सुषुप्तिरेवसौषुप्तम्। सुषुप्तिजापद्भ्यामवशेषदशा स्वप्नः। अहङ्कारो जडत्वात्सुषुप्तिनिदानम्। बुद्धिर्जजडाजडतया जाग्रन्निदानम्। मनस्त्वजडतया स्वप्ननिदानमिति विवेकः।।७।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

देहात्मक धर्मी के स्वरूप का निर्धारण करने के पश्चात् इस सूत्र में विमर्श से अभिन्न त्रिविध धर्म-अहङ्कार, बुद्धि तथा मन के स्वरूप का निरूपण करते हैं।

व्याख्या

विमर्श का जडता के परिग्रहण से अहङ्कार, जडाजडता के परिग्रहण से बुद्धि तथा अजडता के परिग्रहण से मन, नामों से उल्लेख किया जाता है। विमर्श के यह तीनों आन्तरकरण त्रिगुणात्मक हैं; अतः सुषुप्ति, जाग्रत् एवं स्वप्नावस्थाओं के बीज कारण हैं।

जड-भूमिका ग्रहण करने के कारण विमर्श की अहङ्कार नाम से प्रसिद्धि होती है। देह-प्रमाता में अहं रूप विमर्श जड देह पर आश्रित होने से उसका धर्म है; अतएव वह स्वयं भी जड है। इसी कारण से देह का धर्मभूत विमर्श अन्तःकक्षा में अहंकार नाम से कहा जाता है तथा बहिःकक्षा में शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध के रूप में अङ्गिनी-रूप पृथ्वी का धर्म हो जाता है।

वही विमर्श जडाजडत्व-भूमिका ग्रहण करने पर बुद्धि नाम से कहा जाता है। क्रिया की साधनभूत कर्मेन्द्रियाँ स्थूलता के कारण स्वयं ही क्रिया-रूप होने से जड हैं, तथा स्वतः स्फुरित होने के कारण अजड भी हैं। अतएव

क्रिया के साधन-भूत विमर्श का अन्तःकक्षा में बुद्धि के नाम से तथा बाह्यकक्षा में वाक् आदि कर्मेन्द्रियों के नाम से कथन किया जाता है।

विमर्श जब अजड-भूमिका ग्रहण करता है, तब मन नाम से कहा जाता है। ज्ञान का साधन होने से मन अजड है। आन्तर तथा बाह्यकक्षा में विभक्त ज्ञान का साधन-भूत मन एवं चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियां सूक्ष्म रूप में, बुद्धि आदि से विलक्षण, अजड हैं। इस प्रकार विमर्श-रूप अहंकार आदि तीन अन्तः करण ही सत, रज, तम तीन गुणों का समाहार हैं।

उत्पत्ति-रूप होने से अहंकार रजोगुण, स्थिति-रूप होने से बुद्धि सत्वगुण, तथा संहार-रूप होने से मन तमोगुण है। चिद् रूप में एकाकारता का नाम संहार है। प्रकाश तथा विश्रान्ति रूप संहार को लौकिक व्यवहार में तमोगुण कहा गया है। अतः लौकिक व्यवहार की अपेक्षा से मन तमोगुण है।

यदि संहार तात्पर्य क्रिया के संहार से है, तब क्रिया-रूप अहंकार तम, ज्ञान-रूप मन रज सिद्ध होता है। जगत् की उत्पत्ति दशा को अजड तथा संहार को जडत्व मान्य करना केवल लौकिक पक्ष है। इसके प्रतिकूल जगत् की उत्पत्ति दशा जड, तथा संहार-दशा अजड है, ऐसा योग का सिद्धांत है। अतएव उपर्युक्त कथन के अनुसार जडरूप अहंकार तम तथा अजड-रूप मन रजोगुण हैं। अतः अन्तःकरण त्रय को सुषुप्ति आदि अवस्थाओं का बीज कहा गया है। जड होने के कारण अहंकार सुषुप्ति का बीज है, जडाजड होने से बुद्धि जाग्रत् अवस्था का बीज है तथा अजड होने से मन स्वप्न-दशा का बीज है।

अष्टमं सूत्रम्

देही गुणत्रयमयप्रकृतिर्दशासु
सुप्त्यादिकासु नियमात्परिबंभ्रमीति।
तास्वप्यहङ्कृतिपुरःसरणात्त्रिपुट्यां
मेयोन्नतिं कलयति प्रमुखः क्रियांशम्।।८।।

व्याख्या

इदानीं देहिनो गुणत्रयमय प्रकृति योगेन सुप्त्यादिदशात्रये परिभ्रमणमित्याह देहीति। देहीदेहाभिमानी प्रमाता गुणत्रयमय प्रकृतिः गुणत्रय संसृष्टि रूपिणी प्रकृतिः। स्वभावो देहपर्यायो यस्यतथोक्तः। एतेन गुणत्रय संसृष्टिरेव प्रकृतिरिति

प्रकृति लक्षणमुक्तम्। एवं रूप प्रकृतिर्जीवः सुप्त्यादिकासु दशासु सुषुप्ति जाग्रत् स्वप्नेषु नियमादव्यभिचारेण परिबंभ्रमीति पुनः पुनर्भ्रमति। तास्वपि दशासुरहङ्कृति पुरःसरणात देह धर्मस्याहङ्कारस्य प्राधान्यात्। त्रिपुट्यां प्रमातृ प्रमाण प्रमेय रूपायां संसार कलाप संपुटिकायां मेयोन्नतिं प्रमेय व्याप्ति प्रमुख क्रियांश प्रधानः क्रियांशो यस्यास्मिन्कर्मणि तथा कलयति विमृशति। देहस्य प्रमातृत्वे तद्धर्मस्य विमर्शस्य जडत्वाज्जड पक्ष्यस्य प्रमेयस्य व्याप्त्यनुसंधानं भवतीत्यर्थः।।८।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

इस सूत्र में दर्शाया गया है कि त्रिगुणमय प्रकृति के योग से प्राणी सुषुप्ति आदि तीन अवस्थाओं में परिभ्रमण करता है। त्रिगुणमयदेहाभिमानी प्रमाता जीव सुषुप्ति, जाग्रत् तथा स्वप्नावस्थाओं में नियम से भ्रमण करता है। त्रिगुणात्मकता ही प्रकृति शब्द की परिभाषा है।

व्याख्या

सुषुप्ति आदि तीनों अवस्थाओं में अहङ्कार ही प्रधान है अतः प्रमातृ-प्रमाण-प्रमेय रूप त्रिपुटी में क्रिया की प्रधानता से यहाँ प्रमेय की ही उन्नति अर्थात् प्राधान्य कहा है। अर्थात देह-प्रमातृत्व में उसके धर्मभूत विमर्श के जडत्व के कारण प्रमेय की व्याप्ति का अनुसन्धान होता है।

तात्पर्य यह कि गुणत्रय की संसृष्टि में सुषुप्त्यादि तीनों अवस्थाओं में अहंकार का प्राधान्य है। अतएव प्रमातृ आदि रूप संसृष्टि में क्रियांश की प्रधानता के कारण प्रकृति में प्रमेय की व्याप्ति का ही अनुसन्धान होता है।

नवमं सूत्रम्

मेयादिका सतत युक्त्रिपुटी मनस्तां
मेयादि भासयति मूढमहङ्क्रियात्म।
मात्रादि भासयति चाथ निजस्वभावाद्-
बुद्धिश्च मध्यमपदे मन एव बोध्यम्।।९।।

व्याख्या

इदानीं सर्वस्यान्तःकरणस्य मन एव प्रमाणभूतम् मनस एवाहङ्कारदयोभूमिकाः मनसो विमर्श प्रथम रूपत्वात् विमर्शवैभवं मनोवैभवमिति व्युत्पादयति। मेयादीति। मेयादिकाः मेय, मान मातृरूपा त्रिपुटी त्रयाणां मेयादि पुटानां समाहारस्त्रिपुटी सततयुक् अन्योन्याविनाभास्वभावा तां त्रिपुटी मनः विमर्शस्य मूलरूपं। मूढं जाड्य पर्यायमौढ्यभूमिका परिग्रहेण अहङ्क्रियात्म अहङ्कारस्वरूपं सत्। मेयादिभासयति। प्रमेयादिकं यथा तथा भासयति। मेय व्याप्तिं दर्शयतीत्यर्थः। मनस एवानुसंधानमहङ्कार आरोप्यत इत्यर्थः। अथ तदेव मनः निजस्वभावादजडरूपात् अजडरूपंनिजस्वभावं परिगृह्यइत्यर्थः तां त्रिपुटीमित्यनुवर्तते। मात्रादिभासयति प्रमात्रादिकं यथा तथा भासयति। चित्प्रमातृ व्याप्तिं दर्शयतीत्यर्थः। मन एव मध्यमपदे जडाजड समानपदे। जडाजड पद परिग्रहेण इत्यर्थ। बुद्धिश्च प्रमेय प्रमात्रोः समव्याप्ति प्रदर्शिका बुद्धिश्च मन एवैति बोध्यम्।।९।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

इस सूत्र में दर्शाते हैं कि समस्त अन्तःकरण का प्रमाण मन है। अहंकार आदि की भूमिका में विमर्श का प्रथम रूप मन है अतः विमर्श का समस्त वैभव मनोमय है।

व्याख्या

मेय-मान-मातृ रूप त्रिपुटी में मन जब विमर्श की मूलरूप जाड्य भूमिका को ग्रहण करता है तब अहङ्कार नाम से व्यवहृत होता है; तथा प्रमेय आदि के स्वरूप को भासित करता है अर्थात प्रमेय व्याप्ति को प्रदर्शित करता है।

वही मन जब अपने स्वभाव के अनुसार अजड रूप को ग्रहण करता है; तब त्रिपुटी को प्रमाता के रूप में भासित करता है। अर्थात् चित् प्रमातृ-व्याप्ति को दर्शाता है। अर्थात् प्रमाता के रूप में चिद् व्याप्ति को दर्शाता है।

जडाजड मध्यम पद का ग्रहण करने पर वही मन बुद्धि नाम से कहा जाता है। यह मिश्रित रूप से प्रमेय तथा प्रमाता की व्याप्ति दशा है। अर्थात्

बुद्धि भी मन है। इस प्रकार विभिन्न भूमिकाओं में मन ही अहङ्कार एवं बुद्धि के रूप में प्रदर्शित होता है।

दशमं सूत्रम्

तस्मात्पकार वपुषः प्रकृतेः प्रमातु-
रात्मा मकारवपुरन्तर एव लीनः।
तन्मध्यतः स्थितिरहङ्कृतिधी हृदांस्या-
देतत्प्रमातृपदमिन्द्रियलग्नविश्वम् ॥१०॥

व्याख्या

उक्त प्रमेयं कारणीकृत्य पवर्गप्रकृत्यादितत्वसन्निवेषं दृढीकृत्योपदर्शयति तस्मादिति। तस्मात्पूर्वोक्तप्रमेयरूपात्कारणात् पकार वपुषः पकार प्रतिपाद्यायाः प्रकृतेः। पकार वपुषः पकार स्वरूपायाः इत्युपचारः। प्रमातुः देहपर्यायप्रकृतिरूपस्य प्रमातुः। अन्तर एव व्याप्यपद एव। मकारवपुर्मकार स्वरूपः। अत्राप्युपचारः। आत्मा पुरुषः लीनः व्याप्तः इत्यर्थः। तन्मध्यतः तयोर्प्रकृति पुरुषयोर्मध्यभागे अहङ्कृतिधीहृदां अहङ्कार बुद्धिमनसां स्थितिः सन्निवेशः स्यात्। यद्यपि मकारस्यात्मनो व्यापक (क) वर्गे प्रमातृपदे सन्निवेशः तथापि प वर्ग व्यापक वर्गयोर्मध्ये सन्निवेशादुभयपक्ष प्रक्रिया संबंधोवेदितव्यः। स्पर्श कदंबकस्य प्रमाणपदत्वांमकारस्य प्रमातुस्तत्प्रकाशानुसारेण परिगणना। तथापि प्रमाणपदक्रियासम्बन्धमात्रं ताटस्थ्यादङ्गी कर्त्तव्यमेव। अतः प्रकृतिव्याप्तिः पुरुष पर्यन्तं प्रवहतीति निरवद्यम्। चतुरस्त्र चक्र सन्निवेशे तु मनोबुद्ध्योरेवात्म पुरुष रूपयोरहङ्कार प्रकृतिभ्यां व्याप्तिस्ताभ्याञ्चं तदुभय व्याप्तिरिति विवेकः। अथैतस्मिन्नेव प्रकृत्यन्ते मनो बुद्ध्योः स्वप्नपद इव ब्रह्माण्डोन्मीलन चमत्कारं दर्शयति। एतदित्यादि। एतत्प्रमातृपदम् प्रकृत्यन्तम् इन्द्रियलग्न विश्वम् मनो बुद्धि रूपज्ञानक्रियेन्द्रियसम्बद्ध विश्वम् भवतीति शेषः।।१०।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

पूर्वोक्त सूत्र के अनुसार मन को कारण-रूप स्वीकार करके इस सूत्र में प-वर्ग द्वारा अवबोधित प्रकृति आदि तत्त्वों का स्पष्ट विवेचन करते हैं।

व्याख्या

पूर्व-सूत्र में प्रतिपादित सिद्धान्त के कारण से म-कार स्वरूप आत्मा (पुरुष) प-कार द्वारा अवबोधित प्रकृति रूप प्रमाता के अन्तर्लीन रहती है। प्रकृति एवं पुरुष के मध्य में अहङ्कार, बुद्धि एवं मन का सन्निवेश है।

यद्यपि म-कार रूप आत्मा का व्यापक वर्ग में प्रमाता के रूप में सन्निवेश है, तथापि म-कार की प-वर्ग एवं व्यापक वर्ग के मध्य में स्थिति होने के कारण म-कार उभयात्मक है अर्थात् म-कार रूप आत्मा का प्रमाता तथा प्रमेय दोनों वर्गों से सम्बन्ध है। स्पर्श वर्ण समूह प्रमाण-पद हैं, अतः उसके प्रकाश के अनुरूप यद्यपि मकारात्मक प्रमाता की गणना होती है; तथापि तटस्थता के कारण (अर्थात् स्पर्श एवं व्यापक वर्ग के मध्य म-कार की स्थिति के कारण) आत्मा का प्रमाण-पद से क्रिया-सम्बन्ध मात्र स्वीकार करना उचित है। अतः प्रकृति की व्याप्ति केवल म-कार पर्यन्त प्रतिपादित करना युक्ति युक्त है। मकारात्मक पुरुष को प्रकृति-रूप मान्य करना उचित नहीं है। चतुरस्त्र चक्र में सन्निवेश होने से अहङ्कार एवं प्रकृति के द्वारा आत्म-रूप मन एवं बुद्धि की व्याप्ति होती है आत्मा-रूप पुरुष की नहीं, यह निश्चित है। तथा मन एवं बुद्धि के द्वारा अहङ्कार एवं प्रकृति की व्याप्ति होती है।

इस प्रकार प्रकृति पर्यन्त, स्वप्न पद के समान, मन, बुद्धि के द्वारा ही ब्रह्मांड के उन्मीलन का चमत्कार होता है। अतः यह प्रमातृ-पद प्रकृति पर्यंत है। इंद्रियों से संलग्न विश्व केवल मन बुद्धि रूप ज्ञानेंद्रियों एवं कर्मेंद्रियों सेसम्बद्ध है।

एकादशं सूत्रम्

एतच्च मातृपदमिन्द्रिय संसृतञ्च
तत्संश्रयश्च मन एव तदिन्द्रियंस्यात्।
तद्ग्रामणीन्द्रिय कुलस्य विमर्श शक्ति-
श्चिच्चैत्य मिश्रमखिलं खलु तद्विलासः।।११।।

व्याख्या

अथ यदेतदन्तरवाह्य जगद्विलसितं तत्सर्व मनो मूलमेवेति प्रतिपादयति एतच्चेति। एतच्च मातृपदं प्रकृत्यन्तरूपे प्रमातृपदं इन्द्रिय संश्रितञ्च मनो

बुद्धिरूपेन्द्रिय विलासत्वात्तत्संश्रितं तयोर्मनो बुद्धयोः संश्रित तत्संश्रयश्च तयोर्मनो बद्धयोसंश्रयः आश्रयश्च एतद्वय निजसमाश्रयमेव कुर्वन्नित्युक्तत्वात्। तद्विरूपमिन्द्रियमपि पर्यालोचनायां मन एव स्यात् मनस एव दशा विशेषो बुद्धिरित्युक्तत्वात्। इन्द्रिय कुलस्य अन्तर्बाह्य करण जालस्य ग्रामणि प्रवर्त्तकं तन्मनः विमर्शशक्तिः विचित्र विश्वोद्वमनानुचर्वणक्रिया स्फुरणोन्मेष सम्प्रभा विमर्श शक्तिः मन एव चिच्चैत्य मिश्र प्रमातृप्रमेयप्रमाणरूपमखिल तद्विलासः तस्य मनसो विलासः खलु। तेनेयमिन्द्रियजालश्रीर्जाग्रर्तिप्रविलसत इति प्रसिद्धिः।।११।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

जगत् का आन्तर एवं बाह्य समस्त विलास मनोमूलक है।

व्याख्या

जाग्रत् अवस्था में प्रकृत-प्रमाता का आश्रय इन्द्रियाँ हैं, कारण यह कि प्रमाता की करण-भूत मन तथा बुद्धि के विलास का आश्रय भी इन्द्रियाँ हैं; अतएव दोनों रूपों में इन्द्रियाँ मन ही हैं। बाह्य एवं अन्तः करण-रूप इन्द्रियों के समूह का प्रवर्तक मन ही है। विचित्र विश्व की सृष्टि तथा संहार की कारण-भूत विमर्श-शक्ति के उन्मेष तथा निमेष का कारण मन ही है। इस प्रकार प्रमाण, प्रमेय तथा प्रमाता रूप विश्व मन का ही विलास है। मन से ही इन्द्रिय जाल का विलास जाग्रत् अवस्था में होता है।

द्वादशं सूत्रम्

स्वप्ने च जागरणमातृपदे च वेद्य-
मिच्छात्मनोमनसएवविभातिकुक्षौ।
पूर्वत्र मातृमनएवशरीरताभाक्-
प्रत्यक्षमुत्तरपदे तु शरीरमेव।।१२।।

व्याख्या

एवं स्वप्नप्रकृति संसारयोर्विश्वमिच्छात्मनो मनस एव गर्भे विलसतीतिप्रबोधयति। स्वप्ने चेति। स्वप्ने च जागरणमातृपदेजाग्रदवस्थायां

यन्मातृपदभवैकारिकं पवर्गप्रतिपाद्यप्रकृतिसंसाररूपमित्यर्थः तस्मिंश्चवेद्यं अन्तर्वहिः- प्रपञ्च रूपम्। इच्छात्मन इच्छारूपस्य मनसः कुक्षावेव गर्भ एव विभाति विलसति। स्वप्नप्रकृतिसंसाराविच्छासंसारामित्यर्थः। ज्ञाने ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रिय संसारौ ज्ञान क्रिया संसाराविति भावः। ननु स्वप्नस्य ज्ञान स्वरूपस्य मनः संसारत्वं जाग्रतः क्रिया संसारत्वं विश्रान्ति रूपाया सुषुप्तेरिच्छा संसारत्वमितिप्रागुपदिष्टम्। इदानीं कथमन्यरूपोपदेश इति न मन्तव्यम्। विश्रान्तेरेव बहिर्मुखतायामिच्छा संसारः स्वप्न एव ज्ञानसंसारः जाग्रदेव क्रियासंसारः, जडविश्रान्तिरजडविश्रान्तिश्चेति सुषुप्ति स्वप्नयोर्जडाजड-विश्रान्त्यर्भिमाने जाग्रत् एव ज्ञान क्रियेन्द्रिय व्यापार व्यवस्थायाः ज्ञानक्रियासंसारत्वम्। अथवा प्रकृति संसारस्य ज्ञान संसारत्वं पार्थिव संसारस्य क्रिया संसारत्वं जडाजडरूपसुषुप्तिरेव जडाजडेच्छा संसारत्वाभिमाने स्वप्नो ज्ञान संसारः जाग्रत् क्रिया संसार इति विवेकः। तदत्र स्वप्न विश्रान्तेरजडेच्छा-संसारत्वाभिमाने स्वप्नवन्मानसिक संसारत्वात् प्रकृति संसारस्यापि इच्छासंसारत्वमुक्तमिति निरवद्यम्। स्वप्न प्रकृति संसारयोरिच्छासंसारत्वेन ऐक्यरूप्ये प्राक्प्रतिपादितमेवभेदकमुद्घाटयति पूर्वत्रेति। पूर्वत्र स्वप्ने शरीरताभाक् मन एव मातृप्रमातृ-उत्तरपदे प्रकृति संसारे तु प्रत्यक्षमानसिकत्वेनाभिमत शरीरमेव प्रमातृ अनयोः संसारयोरयमेवेत्यर्थः।।१२।।

भाषा टीका

सूत्रसार-

स्वप्न तथा जाग्रत प्रमातृ-पद में इच्छात्मक मन के अन्तर्गत विश्व का विलास होता है। स्वप्नात्मक प्रमाता पद में मन को ही शरीर के रूप में मान्य किया गया है तथा जाग्रत् में मानसिकता प्रत्यक्ष होने के कारण शरीर ही प्रमाता है।

व्याख्या

स्वप्न एवं जाग्रत् अवस्था में अवैकारिक प्रमातृ-पद में (अर्थात् प-वर्ग द्वारा प्रतिपाद्य प्रकृति संसार में) अन्तः एवं वहिः प्रपञ्च (विश्व) इच्छात्मक मन के अन्तर्गत ही विलसित होता है। अर्थात् स्वप्नात्मक एवं प्रकृति-संसार का संसरण इच्छात्मक है। ज्ञानात्मक स्थिति में ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों द्वारा भावित-संसार क्रमशः ज्ञान-संसार एवं क्रिया-संसार के नाम से कहा जाता है।

पूर्व में प्रतिपादित किया है कि ज्ञान-स्वरूप स्वप्न अवस्था में संसार मनोमय है, जाग्रत् में क्रियामय एवं विश्रान्ति-रूपा सुषुप्ति में इच्छामय है। इस

सूत्र में उक्त सिद्धान्त के प्रतिकूल स्वप्न एवं जाग्रत् अवस्था-गत संसार को इच्छात्मक प्रतिपादन करना शङ्कास्पद है।

टीकाकार इस शङ्का का निराकरण करते हैं। सुषुप्ति अर्थात् विश्रान्ति के बर्हिमुख संसरण का कारण इच्छा है, अतः यह इच्छा-संसार कहा जाता है। स्वप्न ज्ञान-संसार है तथा जाग्रत् क्रिया-संसार है। विश्रान्ति के दो रूप हैं-जड़ विश्रान्ति तथा अजड विश्रान्ति। सुषुप्ति में जड एवं स्वप्न में अजड विश्रान्ति की अनुभूति होती है तब केवल जाग्रत अवस्था ही शेष रह जाती है जिसको ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों के व्यापार की व्यवस्था के कारण ज्ञान-क्रिया रूप संसार कहा जा सकता है। विकल्प में इस प्रकार कह सकते हैं कि प्रकृति-संसार अवैकारिक होने से ज्ञान-संसार है एवं पार्थिव संसार क्रिया-संसार है। जडाजड सुषुप्ति में जडाजड इच्छा रूप संसार की अनुभूति होने से स्वप्न ज्ञान-संसार तथा जाग्रत् क्रिया-संसार है। यहाँ स्वप्नात्मक विश्रान्ति में अजडात्मक इच्छा-संसार की अनुभूति होती है, स्वप्न मानसिक संसार है अतः उसी के समान ही प्रकृति-संसार मानसिक होने के कारण इच्छात्मक सिद्ध होता है। अतएव यह सिद्धान्त निरवद्य है।

स्वप्न-संसार एवं प्रकृति-संसार इच्छात्मक है, अतः दोनों एकरूप हैं, परन्तु भेद केवल यह है कि स्वप्न में मन को ही शरीर के रूप में मान्य किया गया है अर्थात् मन के अतिरिक्त स्वप्न में प्रमाता का अन्य कोई शरीर नहीं है, किन्तु प्रकृति-संसार में मानसिकता प्रत्यक्ष होने से शरीर ही प्रमाता है।

त्रयोदशं सूत्रम्

चेतश्चमत्कृतिपदं वमति स्वलीनं
विश्वं वहिः श्रुतिमुखेन्द्रिय वर्ग भावात्।
तत्रापि धीन्द्रिय गणः पवनोऽपि पृथ्वी
ज्ञेयैर्जलैरपि मरूद्भिरुदीरितोऽन्तः।।१३।।

व्याख्या

पार्थिव संसार प्रक्रियामुपक्रमते चेत इत्यादि। चमत्कृतिपदं चमत्काराणां स्थानं चेतः विमर्शस्य मूलरूपं मनः कर्तृ। स्वलीनं स्वान्तर्गतं, प्रकृति संसारे स्वप्नसंसारइव लौकिकैरपि विश्वस्य मनोविलास मात्रत्वाम्युपगमान्मनो

निष्ठत्वमिति मनो लीनत्वम् मनः स्वस्वरूप एव विलसदित्यर्थः। विश्वं बहिर्बमति विश्वस्य बहिर्वमनं च मनश्चमत्कार विशेषः। मनसः किं रूपेण बहिर्व-मनमित्यत्राह। श्रुतिमुखेन्द्रिय वर्गभावात्। श्रोतादिवागादि ज्ञानक्रियेन्द्रिय स्वरूपाङ्गीकारात् श्रोत्रादि भूमिका परिग्रहेणेत्यर्थः। श्रोतादिभ्य एव ज्ञेय रूपस्य विश्वस्य निर्गमः। वागादिभ्य एव कार्य रूपस्य नियमेन विश्वस्येन्द्रिय प्रकाशान्तर्भासनादिन्द्रिय कारणत्वं तथा चेन्द्रिय रूपान्तर (त्वं) त्वाद्विश्वस्येन्द्रिय प्रकाशादेव पर्यवस्यति। इन्द्रियप्रकाशोन्मेष एतत्स्फुरणम्। तदनुन्मेषे त्वस्फुरण इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां विश्वस्येन्द्रियप्रकाशकारणं न तु मायाविमोहितकाणाद-सम्प्रतिपन्न परमाण्वादय इत्यलमतिप्रसङ्गेन। एवं परमार्थादिन्द्रिय प्रकाशोध्वान्तस्यविश्वस्य पशु विषये विपरीत प्रतीत प्रक्रियामाह। तत्रापीति। तत्र बहिः कक्ष्यायां अपि शब्दोऽन्तः कक्ष्या समुच्चयाभिधायकः। यथान्तः कक्ष्यायां प्रकृति संसारे पशोर्विपरीत प्रतीतिः तथा बहिः कक्ष्यायां पार्थिवाण्ड संसारेऽपीत्यर्थः। इन्द्रियगणो ज्ञानेन्द्रिय वर्गः। पव (मा नोऽपि परमार्थ रूपे चिद्व्याप्ते संसारे वायुस्थानकोऽपि पृथिवीस्थानं सङ्कोचभावात्प्राप्तः। ज्ञेयैर्ज्ञेय रूपैः वेद्यैर्जलैरपि चिद्व्याप्तौ जडस्थानकैरपि अत्र विपरीतमरुद्भिः व्याप्त्या वायुस्थानं प्राप्तैः अन्तरुदीरितः स्वाभ्यन्तरेक्षिप्तः व्याप्त इत्यर्थः। तवर्ग रूपाणां ज्ञानेन्द्रियाणां चवर्ग रूपैः शब्दादिभिर्व्याप्तिरित्यर्थः।।१३।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

इस सूत्र में पार्थिव संसार का विवेचन करते हैं।

व्याख्या

श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों तथा वागादि कर्मेन्द्रियों के स्वरूप को अङ्गीकार कर मन स्वयं, स्वप्न-संसार के समान ही जाग्रत् में अपने अन्तर्गत लीन संसार को प्रकट करता है। अर्थात् विश्व का बाह्य अवस्था में उन्मीलन मन का चमत्कार विशेष है अतः मनोविलास मात्र होने से विश्व की निष्ठा मनोमय कही गई है।

श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञेय रूप विश्व का तथा वागादि कर्मेन्द्रियों के द्वारा कार्यरूप विश्व का निर्गम होता है। सिद्धांततः इन्द्रियों के प्रकाश से विश्व का आभास होता है अतः इन्द्रियाँ विश्व का कारण हैं तथा विश्व इन्द्रियों का रूपान्तर है अतः इन्द्रियों का पर्यवसान होने पर विश्व का भी पर्यवसान हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों के प्रकाश के उन्मेष से विंश्व का स्फुरण होता है तथा इन्द्रियों के प्रकाश का उन्मेष न होने पर विश्व के स्वरूप का स्फुरण नहीं होता है। इस प्रकार अन्वय-व्यतिरेक से विश्व के स्फुरण का कारण इन्द्रिय-प्रकाश है। कणाद द्वारा प्रतिपादित अणु विश्व का कारण नहीं है।

परमार्थतः इन्द्रियों के प्रकाश से उद्ध्वान्त विश्व की पशु दशा में विपरीत प्रतीति होती है। अर्थात् जीवात्मक संसरण में, स्वप्नावस्था के समान ही जाग्रत् में भी, वस्तुतः अन्तः में प्रकटित, मनोमय विश्व इस प्रकार प्रतीत होता है जैसे मन के बाहिर प्रकट हो रहा है।

परमार्थ रूप से संसरण में जब चित् की व्याप्ति होती है तब वायु-स्थान गत पृथ्वी सङ्कोच को प्राप्त हो जाती है, तथा ज्ञेय रूप जल अपने प्रतिकूल तत्त्व वायु के अन्तः में व्याप्त हो जाता है, तथा त-वर्ग द्वारा अवबोधित ज्ञानेन्द्रियों की च-वर्ग रूप तन्मात्राओं में अभिव्याप्ति हो जाती है।

चतुर्दशं सूत्रम्

कर्मेन्द्रियाणि कठिनत्वपरान्त भाञ्जि
वह्न्याकृतीनि खपदस्थ धराश्रितानि।
पृथ्वीमय प्रकृति खग्रहणोन्मुख़ानि
बोध्यानि भूत विततेरिहवैपरीत्ये।।१४।।

व्याख्या

इदानीं कर्मेन्द्रियाणां कार्यरूप वेद्यानाञ्च वैपरीत्यमाह कर्मेत्यादि। कर्मेन्द्रियाणि ट वर्ग प्रतिपाद्यवागादीनि कठिनत्व परान्तभाञ्जिकठिनत्वस्य परान्तः परमावधिस्तं भजन्तीति तथोक्तानि क्रियायाः सङ्कोचनिर्वहण पदत्वात् कर्मेन्द्रियाणां कार्यरूप वेद्यानाञ्चातिसङ्कोचभावादतिकाठिन्यं। वह्न्याकृतीनि जडांशप्रधानवह्निमयानि चिद् व्याप्तौ तु कर्मेन्द्रियाणामजडांश प्रधानवह्निमयत्वम्। वन्हेर्जडाजड मयत्वंप्राग्व्याख्यातम्। खपदस्थ धराश्रितानि व्याप्ति लक्षणमाकाशपदमाक्रान्तवर्ती पृथिवीमाश्रितानि। वागादीनां पशुपदेऽपि यद्यपि देह पर्याय प्रकृत्याश्रितत्व तथापि कार्यवेद्य प्रधानभूत पृथिवी व्याप्त्यनु संधानात् पृथिव्याश्रितत्रम्। पृथिवीत्यादि। चिद् ब्याप्ति पदे पूर्णरूपतया च उपचारित

रूपिण्याः महापृथिव्या एव पार्श्वे पृथिवी मय्याःप्रकृतेः ग्रहणे व्याप्तौ उन्मुखानि भूत वितेतेरिह वैपरीत्ये बोध्यानि। अत्रायमभिप्रायः पशोर्ज्ञानेन्द्रियाणि ज्ञेयेषु शब्दादिषु किञ्चिदेव ज्ञातुं क्षमन्ते न तु सर्वम्। अतस्तानि तैः ज्ञेयैः व्याप्तानि शब्दादय एव कार्यावस्थायां वचनादि भावेन स्थूलतां प्राप्याकाशादयो भवन्ति। कर्मेन्द्रियाणि च वचनादिमात्रकाशादिकं कर्तुं क्षमन्ते नतु महाभूतरूपमाकाशादि कर्त्तु, अतस्तानि च महाभूतैः कार्यैर्व्याप्तानि। एवं द्विविधमिन्द्रियवर्गं द्विविधेनवेद्य-वर्गेण व्याप्तं सत् आत्मदेहरूपस्य प्रमातृद्वयस्य ज्ञेयकार्य वर्गाभ्यां व्याप्तिं समर्पयति चिद्व्याप्तौ तु आत्मा स्वसाधनैर्ज्ञानेन्द्रियैः ज्ञेयवेद्यं व्याप्नुवन् स्वात्मीकरोति। अशेषज्ञेयस्य स्वात्मीकरणात्सर्वज्ञोभवति। देहश्च स्वसाधनैः कर्मेन्द्रियैः कार्यवेद्यं व्याप्नुवन्तत्स्वात्मीकरोति। विशेष कार्यस्य स्वात्मीकरणात् सर्वकर्त्ता भवतीति ज्ञानक्रियेन्द्रियाणां प्रकृतिविकृति भावप्रक्रियावेदितव्या।।१४।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

इस सूत्र में कर्मेन्द्रियों तथा कार्य-रूप वेद्य की विपरीत प्रतीति का कथन किया गया है।

व्याख्या

क्रिया का स्वभाव संकोचक है, इस कारण ट-वर्ग द्वारा प्रतिपाद्य कर्मेन्द्रियाँ तथा कार्य-रूप विश्व अत्यन्त सङ्कोच-भाव अर्थात् काठिन्य को प्राप्त हो जाते हैं। अर्थात् पशु दया में वह्नि-स्वरूप कर्मेन्द्रियों में वह्नि के जडांश की प्रधानता होती है, तथा चिद्व्याप्ति में अजड अंश की प्रधानता होती है, अतः चिद्व्याप्ति में कर्मेन्द्रियाँ आकाश भाव में परिवर्तित पृथ्वी के आश्रित रहती हैं। पशु-दशा में यद्यपि वागादि कर्मेन्द्रियाँ प्रकृति के आश्रित रहती हैं तथापि पशु दशा में कार्य-रूप पृथ्वी की अनुभूति होती है; अतः कर्मेन्द्रियाँ पृथ्वी के आश्रित ही मान्य की जाती है।

चिद्व्याति में पूर्ण रूप से महा पृथ्वी (आकाश भावस्थ पृथ्वी) के आश्रित कर्मेन्द्रियाँ जब पार्थिव प्रकृति की व्याप्ति की ओर उन्मुख होती हैं तब पञ्चभूतों की विस्तारावस्था में इनकी प्रतीति विपरीत होती है। अर्थात् सूक्ष्म रूप में स्थित कर्मेन्द्रियों का स्वरूप पूर्ण काठिन्यमय हो जाता है।

इसका तात्पर्य निम्न प्रकार है। पशु अर्थात जीव दशा में ज्ञानेन्द्रियों में शब्द आदि ज्ञेय को पूर्ण रूप से जानने की सामर्थ्य नहीं है, अतः ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञेय से व्याप्त हैं। कार्यावस्था में शब्द आदि तन्मात्राओं का ही वचन आदि भाव से स्थूलता में परिवर्तन होकर आकाश आदि के रूप में अविर्भाव होता है। कर्मेन्द्रियाँ केवल वचन आदि मात्र आकाश को प्रकट करने में समर्थ हैं; किन्तु महाभूत-रूप आकाश का स्रजन करने की सामर्थ्य कर्मेन्द्रियों मे नहीं है। अतः कर्मेन्द्रियाँ कार्य-रूप में परिणत महाभूतों से व्याप्त हैं।

इस प्रकार द्विविध इन्द्रियाँ द्विविध वेद्य-वर्ग से व्याप्त होकर ज्ञेय एवं कार्य-वर्ग के द्वारा आत्मा-प्रमाता एवं देह-प्रमाता की व्याप्ति को समर्पित करते हैं। चिद्व्याप्ति में आत्मा अपने ज्ञानेन्द्रियरूप साधनों से ज्ञेय (वेद्य) में व्याप्त होकर अशेष ज्ञेय को आत्मसात् करता है। अतः विशेष कार्य वैद्य को आत्मसात करता है; जिसके कारण आत्मप्रमाता सर्वज्ञता को प्राप्त करता है। देह-प्रमाता अपने कर्मेंद्रिय-रूप साधनों से कार्य-वेद्य में व्याप्त होकर उसको आत्मसात् करने के कारण देह-प्रमाता सर्वकर्तृत्व सामर्थ्य को प्राप्त करता है। ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों की प्रकृति एवं विकृति का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत है।

पञ्चदशं सूत्रम्

मानात्मकस्य तरणेर्द्वयतो हि सिद्धिः
माया बलात्प्रथमतात्र च मेय कोट्याः।
ग्राह्य ग्रहीतृपदवर्ण समन्वयेन
योज्याः कलावहिरथान्तरपि क्रमज्ञैः।।१५।।

व्याख्या

अथ प्रमेय प्रमातृ मिश्ररूपस्य प्रमाण सूर्यस्य कला संस्थान प्रक्रियां व्युत्पादयति मानेत्यादि। मानात्मकस्य प्रमाण रूपस्य तरणेः सूर्यस्य द्वयतः प्रमेय प्रमातृभ्यां सिद्धिः स्वरूपलाभो हि। अत्र च माया बलात् प्रमेय कोट्या एव प्रथम पदता प्रमातृ कोट्या द्वितीयपदता विसर्गव्याप्तिरेव प्रथमेत्यर्थः। अत्र प्रमाणसूर्यस्य द्वि द्वि वर्ण प्रतिपाद्यानां कलाना योजने ग्राह्य गृहीतृत्व पदवर्ण समन्वयेन ग्राह्य स्थानकानां वर्णानामनन्तरं ग्राहित्व स्थानकवर्णानां यथा योगं समन्वयेन। बहिः

कवर्गादि तवर्गान्त रूपे पृथिव्यन्ते अन्तरपि पकारादि भकारान्तरूपे प्रकृत्यन्ते क्रमज्ञैः ग्राह्यग्राहकवर्ण क्रमविद्भिः कला योज्याः। क वर्ग ट वर्ग वर्णानां यथा क्रमं योगः। चवर्ग तवर्गाणाञ्च तथा। प-कार व-कारयोर्योगः फ-कार भ-कारयोश्च तथा एव दशारयुग्मरवेः रश्मिचक्रं चतुरस्त्रं बिन्दुचक्र यत्तु ककारादि डकारन्तैरनु लोम पठित द्रादश वर्णैः भकारादिऽकारान्त विलोम पठित द्वादश वर्णानांयोगेन द्वादशानां सूर्यकलानां प्रकल्पना पारम्पर्य तत्प्रमेय प्रमात्रात्मनः सूर्यस्य स्वरूप भूतेषु चतुविंशति स्पर्शाक्षरेषु अर्ध प्रमेयकोटिरर्धं प्रमातृकोटिरुभय पक्ष समन्वयाद्वादश कला निर्वृत्तिरिति विद्यमानमपि चक्र संस्थानसंवादं न लभत इति। मातृचक्र मर्म विद्भिर्महानुभावै रूपेक्षितमित्यलम्। महामार्गविसंवाद कथया।।१५।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

सूर्य प्रमाण रूप है : प्रमेय तथा प्रमाता का मिश्रित रूप प्रमाण होता है; अतः सिद्ध हुआ कि प्रमाण रूप सूर्य प्रमेय तथा प्रमाता का मिश्र स्वरूप है। माया वलवती होती है, अतः माया के बल से प्रमाणात्मक सूर्य का प्रथम प्रमेय रूप में दर्शन होता है; अतः प्रमेय की प्राथमिकता है तथा प्रमाता का पद द्वितीय है। इसका तात्पर्य है कि विसर्ग की व्याप्ति प्रथम होती है।

व्याख्या

यहाँ प्रमाण-रूप सूर्य की कलाओं की योजना का दो-दो वर्णों के द्वारा प्रतिपादन किया गया है, जो ग्राह्य तथा ग्राहक नाम से विभाजित हैं। ग्राह्य-स्थानक वर्णों के पश्चात् ग्राहक-स्थानक वर्णों के योग से सूर्य की कलाओं का कला के रूप में अविर्भाव होता है। अर्थात् वाह्यकक्षा में क-वर्ग से त-वर्ग पर्यन्त पृथ्वी के रूप में तथा अन्तःकक्षा में प-कार से भ-कार पर्यन्त प्रकृति रूप में सूर्य के प्रमेय आदि अंशों की कलाओं का संयोजन है। क-वर्ग तथा ट-वर्ग का एवं च-वर्ग तथा त-वर्ग का यथा क्रम योग है। इसी प्रकार प-कार का ब-कार से तथा फ-कार का भ-कार से योग है। श्रीचक्रान्तर्गत दशारयुग्म इस प्रकार से सूर्य की रश्मियों का चक्र है; तथा सूर्य का विम्ब-चक्र चतुस्त्र द्वारा प्रदर्शित है।

अन्य मत के अनुसार अनुलोम क्रम से पठित क से ड पर्यन्त बारह वर्ण तथा भ से ड पर्यन्त विलोम क्रम से पठित द्वादश वर्ण क्रमशः सूर्य के स्वरूप-भूत प्रमेय-रूप तथा प्रमाता-रूप कलाओं के द्योतक हैं। इस प्रकार चौबीस वर्णों में से आधे द्वादश वर्ण सूर्य के प्रमेयांश के द्योतक तथा शेष बारह प्रमातृ अंश के द्योतक हैं।

किन्तु सूर्य की कलाओं के रूप में विकसित प्रमेयात्मक तथा प्रमातृ-आत्मक चौबीस वर्णों को श्रीचक्र में कोई स्थान नहीं दिया गया है। मातृका-चक्र मर्मज्ञों द्वारा सूर्य के प्रमेय-पद तथा प्रमाता पदों की उपेक्षा की गई है।

षोडशं सूत्रम्

मातादशेन्द्रियमयो दशकश्चमेय
तन्मेलनाद्दशकलात्मदशारयुग्मम् ।
अन्तः कला द्वयमिह प्रकृतौनिलीन
स्त्रैगुण्यमातर्रिपुमांश्चतुरस्त्रविम्बे ॥१६॥

व्याख्या

बहिरन्तरपि ग्राह्यगृहीतृपदवर्ण समन्वयेन कलायोज्या इतिपूर्वं सूत्रेणसूचितम्। कलायोजनप्रकारम् चक्रे संस्थाने संवादयन् मातान्तरव्याक्षेपाभित्रायेण स्फुटान्तरमुपदिशति। मातेत्यादि। मातृमेयात्मकौहि रविःमाता च बहिस्तवर्ग टवर्ग प्रतिपाद्य दशेन्द्रियमयः मेयश्च तथा चवर्ग कवर्ग प्रतिपाद्य शब्दाद्याकाशादिक दशकमयम्। तन्मेलनात् यथाक्रमं पृथिव्यादिकार्य वेद्य प्रतिपादक कवर्गाक्षर प्रपञ्चकेन वाय्वादिकर्मेन्द्रिय प्रतिपादक टवर्गाक्षर पञ्चकस्य मेलनात्। तथा गन्धादिप्रतिपादक चवर्गाक्षर पञ्चकेन घ्राणादि प्रतिपादक तवर्गाक्षर पञ्चकस्यमेलनात्। पञ्चपञ्च कलात्मकं सम्भूय दशकलात्मकं दशारयुग्मं भवति। अन्तः पवर्गरूपे प्रमातृपदेकलाद्वयं कार्यवेद्यबीजभूत प्रकृतिप्रतिपादकेन पकारेण कर्मेन्द्रिय बीजभूत बुद्धिप्रतिपादकस्य ब वर्णस्य मेलनादेकाकला. ज्ञेयवेद्य बीजभूताहंकारप्रतिपादकेन फकारेण ज्ञानेन्द्रियबीजभूतमनः प्रतिपादकस्य भकारस्य मेलनादन्याकलेति कलाद्वयमिहचतुरक्षरनिष्पन्न कलाद्वयात्मके चतुरस्त्रबिम्बे त्रैगुण्य मातरि त्रिगुण सवित्र्यां प्रकृतौ पुमान्मकाररूप आत्मा

निलीनः। अहङ्कार सहितायां प्रकृतौ बुद्धिमनसोर्यन्निलयनं तत्पुरुषस्य निलयनेपर्यवस्यतीतिभावः। स्पर्श वर्ण चक्रस्य प्रमाणचक्रत्वान्मने बुद्धि रूपेणैव पुरुषस्यात्रचक्रे सस्थानं नतु मकाररूपेण तथापि मनोबुद्धयौः पुरुषस्यैव रूपान्तरत्वात् पुरुषस्यापि मकारस्य प्रमाण प्रमातृचक्रयोर्मध्येवर्त्तित्वादुभय चक्रसम्बन्ध इतिपुमान्निलीन इत्युक्तम्।।१६।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

पूर्व सूत्र में ग्राह्य एवं ग्राहक पदों के द्योतक वर्णों के समन्वय से सूर्य की बाह्य तथा अन्तर-कलाओं की योजना प्रस्तुत की गई है। इस सूत्र में सूर्य की इन कलाओं का श्रीचक्र में स्थान तथा प्रकार का स्पष्टीकरण किया गया है, तथा प्रतिपादन किया है कि कलाओं की योजना के द्वारा ही श्रीचक्र में प्रमाता का संकेत किया है; अन्य प्रकार से प्रमाता-पद के चित्रण की आवश्यकता नहीं है।

व्याख्या

सूर्य प्रमेय तथा प्रमाता का मिश्र-रूप है जिसका श्रीचक्र में दशारयुग्म के द्वारा चित्रण किया गया है। त-वर्ग द्वारा अभिव्यञ्जित ज्ञानेद्रियों तथा ट-वर्ग द्वारा अभिव्यञ्जित कर्मेन्द्रियों के योग से श्रीचक्र में प्रथम दशार का चित्रण है; जो प्रमातृ रूप है। च-वर्ग तथा क-वर्ग द्वारा प्रतिपाद्य पंचतन्मात्रिक एवं पंचभूतात्मक दशक प्रमेयात्मक भाग है जिसका श्रीचक्र में द्वितीय दशार के रूप में चित्रण है। क-वर्ग, च वर्ग, ट-वर्ग एवं त-वर्ग द्वारा अवबोधित दशारयुग्म बाह्य प्रमाता है।

प-वर्ग रूप अन्तःप्रमाता का चित्रण दो कलाओं के द्वारा किया गया है। कार्य-वेद्य अर्थात् प्रकृति के बीज भूत प-कार एवं कर्मेन्द्रियों की बीजभूत बुद्धि के प्रतिपादक ब-कार के योग से प्रथम अन्तःकला का आविर्भाव होता है। ज्ञेय-वेद्य के बीजभूत अहङ्कार के प्रतिपादक फ-कार एवं ज्ञानेन्द्रियों के बीजभूत मन के प्रतिपादक भ-कार के मेलन से द्वितीय अन्तःकला का आविर्भाव होता है। इस प्रकार प-वर्ग के चार वर्णों द्वारा निष्पन्न द्विकलात्मक चतुरस्र विम्ब में त्रिगुणात्मक प्रकृति के अन्तः में म-कार रूप आत्मा निलीन रहता है। अर्थात् अहङ्कार सहित प्रकृति के अन्तः में जो बुद्धि एवं मन का निलय कहा गया

है वह वस्तुतः आत्मा का ही लय है। यद्यपि प्रमाण चक्र का अवबोधक होने के कारण स्पर्श-वर्ण चक्र के अन्तर्गत मन-बुद्धि रूप पुरुष का ही संस्थान है, न कि म-कार रूप आत्मा का; तथापि मन एवं बुद्धि का रूपान्तर पुरुष है, अतएव म-कार द्वारा प्रतिपादित पुरुष की स्थिति प्रमाण तथा प्रमातृ चक्र के मध्य सिद्ध होती है; अतः पुरुष का सम्बन्ध दोनों चक्रों से है। अतएव यहाँ चतुरस्र चक्र में प्रकृति के अन्तः में पुरुष को निलीन मान्य किया गया है।

सप्तदशं सूत्रम्

मानात्मनैव चिदचित्स्थितिरत्रचक्रे
भेदात्मके न भवतीह विसर्गबिन्दोः।
मस्यानुषक्तिरपि मुख्य समन्वयस्य
बिन्द्वेक भोगपद मातृ पुरोचितस्य।।१७।।

व्याख्या

पूर्वसूत्रे सूचितं मकारप्रतिपाद्य पुरुष तत्वस्यैव प्रमाण प्रमात्रोरुभयचक्र सम्बन्ध स्फुटीकरोति मानेत्यादि। अत्र भेदात्मके चक्रे प्रमाण चक्रस्य ग्राह्य गृहीतृ भेदाविनाभावभूमित्वात् दशारयुग्म रूपत्वम्। न तु चतुर्दशाराष्टार बदेकैक चक्रत्वम्। अतो भेदात्मकं प्रस्फुट भेद स्वरूपम्। अत्र प्रमाण चक्रे चिदचितोः प्रमातृप्रमेययोः स्थिति। मानात्मनैव इन्द्रियरूपेणैव इन्द्रियाणां प्रमाण पर्यायाणां ग्राह्य ग्राहकोभय सिद्धरूपत्वात्। ग्राह्यग्राहक रूपेणैव प्रमेय मातृ स्थितिरित्यर्थः। अतः कारणादित्यौचित्यादव्याहर्त्तव्यम्। इह प्रमाणचक्रे विसर्ग बिन्दोरपि सतो भेदमयत्वाद्विसर्गस्य इत्यर्थः। यस्य मकार प्रतिपाद्यस्यपुरुषस्य अनुषक्तिरनुसङ्गो न भवति चतुर्विंशत्यक्षरात्मक द्वादशकलारूपे प्रमाणचक्रे पुरुषस्थानकस्य मकारस्य पञ्चविंशति तमस्य न सन्निवेश इत्यर्थः। तर्हि तस्य मकार पुरुषस्यात्रचक्रे किं सम्बन्धाभाव इत्यत्राह अपि मुख्यसमत्व यस्येति। प्राधान्येन सम्बन्धवतोऽपि प्रमाणचक्रे प्रकृति व्याप्ति विषयत्वेन सम्बन्धवतोऽपि तत्र चक्रे नानुषक्रिर्भवतीत्यन्वयः। कुत इत्याह बिन्द्वेकभोगपद मातृ पुरोचितस्य बिन्दोरेकभोगस्थानम्। अष्टाररूपं प्रमातृपुरं तदुचितस्य द्वौ हि संग्रहेण प्रमातारौ अभेदानुसन्धाता भेदानुसन्धाता च तत्र मकार प्रतिपाद्यो-भेदानुसन्धाता अतः प्रसिद्धप्रमाता मकार प्रतिपाद्य प्रमातृ पुर सन्निवेशमेवार्हति। न तु प्रमाणपुर

सन्निवेशम्। तत्र तद्रूपान्तरयोर्मनोबुद्धयोरेव सन्निवेशः सम्बन्धस्तु प्रमाणचक्रेऽपि मकार प्रतिपाद्यस्यास्त्येवेति निष्कर्षः।।१७।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

पूर्व सूत्र में म-कार द्वारा प्रतिपाद्य पुरुष का सम्बन्ध प्रमाण एवं प्रमातृ-चक्र से दर्शाया गया है। इस सम्बन्ध की स्पष्ट व्याख्या के लिये यह सूत्र लिखा गया है।

व्याख्या

प्रमाण-पद में भेदरूप ग्राह्य-ग्राहक की अविनाभाव भूमिका है; अतः प्रमाण-चक्र का स्वरूप दशार-युग्मात्मक है। अर्थात् दशारद्वय को एकात्मक युग्म के रूप में चित्रित किया है। जिस प्रकार श्रीचक्र में चतुर्दशार एवं अष्टार नामक दो पृथक् चक्र हैं, उस प्रकार चित् अचित् अर्थात् प्रमाता तथा प्रमेय को चित्रित करने के हेतु प्रमाण-चक्र में पृथक्-पृथक् सङ्केत नहीं है। प्रमाण की पर्यायभूत इन्द्रियों का ग्राह्य-ग्राहक उभय रूप सिद्ध है; इस कारण प्रमाणचक्र में प्रमेय एवं प्रमाता की स्थिति ग्राह्य-ग्राहक रूप में दर्शाई गई है।

प्रकृति व्याप्ति का विषय होने से यद्यपि मकार का प्रमाण चक्र से प्रधान सम्बन्ध है तथापि इसमें मकार प्रतिपाद्य पुरुष की अनुशक्ति नहीं है। अर्थात् चौबीस अक्षरों से गठित द्वादश कला रूप प्रमाण-चक्र में पचीसवाँ अक्षर म-कार का सन्निवेश नहीं है। तब प्रश्न होता है कि म-कार का प्रमाण-चक्र से किस प्रकार सम्बन्ध है?

विन्दु प्रमाता का श्रीचक्र में अष्टार नामक स्थान एक मात्र भोग पद है तथापि एक प्रमाता के दो भेद हैं। एक अभेद-अनुसंधाता दूसरा भेद-अनुसंधाता जिस में भेदानुसंधाता प्रमाता म-कार द्वारा अवबोधित पुरुष है। अतः मुख्य बिन्दु रूप प्रमाता का सन्निवेश प्रमातृपुर अष्टार में किया जाना उचित है, न कि प्रमाण-चक्र में। अतएव म-कार का रूपान्तर मनो-बुद्धि का सन्निवेश ही प्रमाण-चक्र में किया है। मकारात्मक पुरुष का प्रमाण-चक्र से केवल यही सम्बन्ध है।

अष्टादशं सूत्रम्

स्वप्नेस्मृतं तदनुजाग्रति सत्यकल्पं
बन्धं प्रपद्यवपुषा स्वविमर्शशक्त्या।
क्षित्या च तत्परवशोहृतमातृभावो
मध्यन्दिनद्युमणिरेष मकार बिन्दुः।।१८।।

व्याख्या

विसर्ग व्याप्तिप्रकरणमुपसंहरन् आदितश्चिन्निगरणरूपं प्रकरणमेयं क्रोडीकृत्य दर्शयति। स्वप्न इत्यादि। स्वप्ने स्मृतं मनसा संकल्पितं तदनु जाग्रति सत्यकल्पं दृढानुभवारूढतया परमार्थवदेव भासनं न तु परमार्थता अन्तःकक्ष्या परामर्श निर्विकल्प चिदात्मनः शिवस्य नित्य निरावरणत्वेन भासमानत्वात् वहिरवभासमानस्य प्रवृत्तिरूप विमर्श स्पन्द विप्लवस्य चमत्कार प्रमातृत्वात्। अन्तः स्वविमर्श शक्त्यादि विमर्श शक्तेरेव स्वरूपेण वपुषः प्रकृति पर्यायेण बहिस्तु क्षित्या च एवं कक्ष्याद्वयेऽपि बन्धं प्रपद्य तत्परवशः तयोर्देहमहापृथिव्योः परवशः परतन्त्रः। हृत्मातृभावः ताभ्यामेवापहृत् मातृभावः प्रमेयतां प्रापित इति भावः। म-कार बिन्दुः मकार प्रतिपाद्योबिन्दुः चित्तत्वं पुरुष इत्यर्थः। मध्यन्दिनद्युमणिःमध्याह्नकाल सूर्यो जात इति शेषः यथा मध्यन्दिन सूर्य स्वरश्मिपटलेनस्थगितो नावभासते तथायमपि चिदात्मा स्वस्या एव विमर्श शक्तेर्विजृम्भण रूपेण अन्तर्वहिः प्रपञ्चेन च भार्या (आवृत) मूलस्वरूपो जात इत्यर्थः।।१८।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

विसर्ग व्याप्ति के प्रकरण का उपसंहार करते हुए इस सूत्र में स्पष्ट किया है कि आदितः विसर्ग बिन्दु को अपने अन्तर्गत लीन कर लेता है तथा विन्दु प्रमातृ-पद से वञ्चित होकर प्रमेय रूप में परिवर्तित हो जाता है।

व्याख्या

स्वप्नावस्था में संकल्प मानसिक होता है, इसके पश्चात् जाग्रत् में अनुभव की दृढ़ता के कारण परमार्थ सत्य के समान विश्व का आभास होता है, वस्तुतः

पारमार्थिक रूप नहीं है। अन्तः में नित्य निरावरण रूप में भासित निर्विकल्प चिदात्मक शिव के, प्रमातृ-भाव ग्रहण करने के कारण, प्रवृत्ति रूप विमर्शात्मक स्पन्द का बाह्य चमत्कार होता है।

स्वयं शिव ही विमर्श-शक्ति के रूप में आभासित प्रकृति के पर्याय भूत शरीरात्मक बन्धन से अन्तः में, तथा पृथ्वीमय देहात्मक बन्धन से बाह्य में अर्थात् दोनों कक्षाओं में स्वयं को बद्ध कर लेते हैं तथा प्रकृति एवं पृथ्वीमय देह में परतन्त्र हो जाते है तथा प्रमातृभाव से वञ्चित होकर प्रमेय-भाव में आभासित होते हैं। इस प्रकार म-कार द्वारा अवबोधित बिन्दु मध्यन्दिनीय आकाश-मणि अर्थात् सूर्य के समान हो जाता है।

तात्पर्य यह कि जिस प्रकार मध्य-दिवसीय सूर्य का बिम्ब अपनी ही रश्मियों के पटल के प्रभाव से आच्छादित होकर दृष्टिगत नहीं होता है, उसी प्रकार अपनी ही विमर्श-शक्ति के विजृम्भित स्वरूप से अर्थात् अन्तः वहिः प्रपञ्च से आवृत होकर शिव-तत्त्व प्रकट नहीं होता है।

ऊनविंशति सूत्रम्

यत्पादिवर्गवमुखार्णचतुष्टयस्य
सङ्कोचवर्जनमिदं खलुतन्त्रनीत्या।
तुर्यस्थितं हमुखशान्तचतुष्टयात्म
योज्यंक्रमेणबहिरन्तरभेद सृष्ट्योः।।१९।।

व्याख्या

इदानीं प्रकरणान्ते चिद्व्याप्तिरूपमुत्तरप्रकरणप्रमेयमवतारयन् जाग्रच्चक्रे वक्ष्यमाणेस्वप्नचक्रे च विसर्ग प्रमातुः प्रतिसिंहासवंतुर्यजाग्रत् स्वप्नरूपं पदद्वयं तत्र न्यायेन एकैकमातृकया समुन्मीलितं व्युत्पादयति। यत्पादि इत्यादि। पादिवर्गवमुखार्णचतुष्टयस्य विलोमेन पवर्गादिवर्गचतुष्टय पवर्गतवर्गं टवर्ग चवर्गरूपं वर्गचतुष्ट्य वकार लकाररेफयकाररूपं वर्णचतुष्टयं तस्योभयस्य। तन्त्ररीत्या एकयाक्रियया प्रयोजन द्वयसिद्धिरूपया तन्त्रनीत्यातन्त्रन्यायेन इदं। सङ्कोचवर्जनं खलु स्पृष्टेषत्स्पृष्टताप्रयत्नकृतसङ्कोचत्यागः खलु। यत्तुर्यस्थितं हमुखशान्तचतुष्ट्यात्मवर्णकदम्बकं, पवर्गस्य वकारस्य च सङ्कोचत्याग-रूपोहकारः। तवर्गस्य लकारस्यच सङ्कोचत्याग रूपः सकारः। टवर्गस्य च

रेफस्य च सङ्कोच त्यागरूपःषकारः। चवर्गस्ययकारस्य संङ्कोचत्यागरूपः शकार कवर्गस्य देह प्रतिपादकलकारस्य च विसर्गप्रमातृरूपत्वात् तस्य च चिद्व्याप्तिपदे चित्स्वरूपएवान्तरधानात् पदद्वयेऽपि हकार एव विलयनं अतो न तत्संकोचत्याग रूपो वर्णोऽन्वे षणीयः। एवम् स्पर्शसंकोचत्याग रूपमत तत्सङ्कोचत्यागरूपं हकारादिशकारान्तवर्णचतुष्ट्यं पदद्वय रूपं सत् क्रमेण। बहिरन्तरभेदसृष्ट्योः वहिरनेदसृष्ट्यां अन्तरभेदसृष्ट्यां च भेद जाग्रत् प्रतियोगिन्यभेद जाग्रत्पदे भेद स्वप्न प्रतियोगिन्यभेद स्वप्नपदेचेत्यर्थः। दशारयुग्मार्धपदे अष्टारार्धपदे चेति वेदितव्यम्योज्यंयोजनीयम्।।१९।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

आगामी प्रकरण का विषय चिद्व्याप्ति है। अतः भूमिका के रूप में इस सूत्र में जाग्रदात्मक एवम् स्वप्नात्मक चक्र में विसर्गप्रमाता का, तुर्य जाग्रत् एवम् स्वप्न की अवबोधक प्रत्येक मातृका के स्वरूप के उन्मीलन अर्थात् अभिव्यञ्जन की चर्चा करते हैं।

व्याख्या

प-वर्ग, त-वर्ग, ट-वर्ग, च-वर्ग एवं क-वर्ग जाग्रत के द्योतक हैं तथा य, ल, र, व, अन्तःस्थ वर्णस्वप्न के अवबोधक हैं। जाग्रत् एव स्वप्न विसर्गात्मक अवस्थाऐं हैं। जाग्रत् का अवबोधक स्पर्श वर्ग स्पृष्ट-प्रयत्न है तथा स्वप्न का अवबोधक अन्तःस्थ वर्ण समूह ईषत्-स्पृष्ट प्रयत्न है। जब जाग्रत् एवं स्वप्न अवस्थाओं का सङ्कोच-त्याग होकर तुर्यात्मक चिद्व्याप्ति का संसरण होता है, तब इन दोनों अवस्थाओं के अवबोधक स्पृष्ट एवं ईषत्-स्पृष्ट वर्णों की श, ष, स, ह विवृतात्मक वर्णों के रूप में परिणति हो जाती है। यहाँ तन्त्र की नीति के अनुसार दो प्रयोजनों की सिद्धि एक ही क्रिया से की गई है। अर्थात् स्पृष्ट-वर्ग एवं अन्तःस्थ वर्गों की तुर्य के द्योतक ऊष्माण वर्णों में परिणति एक ही क्रिया से हो जाती है। इस प्रकार विलोम-क्रम से प-वर्ग तथा व-कार की ह-कार में, त-वर्ग एवं ल-कार की स-कार में ट-वर्ग एवं र-कार की षकार में तथा च-वर्ग एवं य-कार की श-कार में परिणति हो जाती है। क-वर्ग एवं देह-प्रतिपादक ल-कार को विसर्ग-प्रमाता के रूप में प्रतिपादन किया गया है; अतः चिदात्मक व्याप्ति में क-वर्ग एवं लकार का लय अर्थात् जाग्रत्

एवं स्वप्नात्मक प्रमाता का लय चित्स्वरूप ह-कार के अन्तर्गत हो जाता है। अतः क-वर्ग एवं लकार का लयस्थान ह-कार ही है, अतएव सङ्कोचत्याग रूप किसी अन्य वर्ण के अन्वेषण की आवश्यकता नहीं है।

तात्पर्य यह कि स्पर्श एवं अन्तःस्थ वर्णों के सङ्कोच-त्याग का स्वरूप विलोम क्रम में पठित ह, स, ष, श वर्ण चतुष्ट्य हैं। अर्थात् भेद-जाग्रतृ के प्रतियोगी अभेद-जाग्रत्, तथा भेद-स्वप्न के प्रतियोगी अभेद-स्वप्न का लय ह, स, ष, श द्वारा अभिव्यञ्जित तुर्य में होता है।



विशेष

सर्वो हि भेदपद एव भवः पुरस्त्
त्पश्चादभेदमवगच्छति जात बोधः।
शक्तिः शिवस्य महति प्रकृतिस्तदात्मा
भेदोग्रवन्दनमतोऽर्हति भेदतत्त्वम्।।१।।

प्रथम समस्त भेदपद का आविर्भाव होता है, तत्पश्चात् बोध उत्पन्न हो जाने पर अभेदपद का ज्ञान होता है। शक्ति ही शिव की महती प्रकृति है एवं उसकी अभेद-रूप आत्मा है। अतः भेदतत्त्व ही प्रथम वन्दनीय है।

संस्थापितां पुरत एव शिवेन मायां
पश्चात्करोति यजने द्वयतत्परो यः।
सिद्धं न याति शिवसामयि ? किं समूढ–
स्तस्माद्यजेत मुखतश्चतुरस्रबिम्बम्।।२।।

द्वैतोपासना में तत्पर जो साधक शिव के द्वारा प्रथम संस्थापित माया का शिव के पूजन के पश्चात् यजन करता है, वह मूढ़ सिद्धि को प्राप्त नहीं करता है। अतः प्रकृति (माया) के प्रतीक चतुरस्र बिम्ब का प्रथम यजन आवश्यक है।

ईकार योगज विसर्ग कलास्त बिन्दुः
प्रत्याहतं खलु विसर्गपदं कलाभ्याम्।
सद्यो जगत्सपदि संभृतभेदसिद्धिः
क्लींकार मूर्तिरनिशं मनुरभ्युदीर्यं।।३।।

ईकार के योग से उद्भूत विसर्ग कला में बिन्दु अस्त (अन्तर्लीन) हो जाता है। अतः कल दो वर्णों के द्वारा विसर्ग पद का प्रत्याहार होता है। (अर्थात् पुनः संक्षेप में स्थापन होता है)। इस प्रकार शीघ्र एवं एक पद में ही जगत् की सिद्धि हो जाती है। अतएव क्लींकार मूर्ति रूप वर्णों का (क, ल) अहर्निंश उच्चारण करना चाहिये।

येकारे कार गर्भ कलयुगलतमं मायया व्याप्तमौलिं
मन्त्रं मत्तोनुतिष्ठेदरुणमणिकृतामक्षमालां वहन्यः।
भुञ्जानोऽसौ भुजिष्याप्रकृतिकमणिमाद्याख्यया सप्रसिद्ध
सिद्धीनां सिद्धलभ्यं दशकमभवतां प्राप्य दिव्यैरिहैव।।४।।

येकार एवं ईकार गर्भित माया का द्योतक वर्ण (इ) जिस के मौलि में विराजमान है ऐसे क-ल युगल से रचित माला से जप करै उस साधक को स्वाभाविक रूप से सिद्ध-लभ्य आणिमादि एवं जीवन-मुक्ति प्राप्त होती है।

शिवानन्देन मुनिना देशिकादेशवर्तिना
चतुर्थं मातृकाचक्र-विवेके व्याकृतं पदम्।।५।।

गुरु की कृपा से शिवानन्द मुनि ने श्रीमातृकाचक्र-विवेक के चतुर्थ खण्ड में इन पदों की रचना की है।

इति श्री स्वतन्त्रानन्दनाथ विरचित श्रीमातृकाचक्र विवेक की शिवानन्द कृत संस्कृत व्याख्या एवं कृष्णानन्द कृत हिन्दी व्याख्या का चतुर्थः खण्डः।

चतुर्थ खण्डः



श्रीमातृकाचक्र-विवेकः

पञ्चमः खण्डः

अथ पञ्चमः खण्डः

प्रथमं सूत्रम्

अक्षेषु वेद्य विलयः खलु शुद्ध विद्या
देहे तदक्ष विलयो भवतीश्वरत्वम्।
ईशो हि विश्वमय देह कृताभिमानो
जाग्रच्छिवस्य पशु जागर चक्रलग्नम्।।१।।

व्याख्या

अथ निवृत्तिरूपं तुर्यस्कन्धमारम्भमाणो निवृत्तिजाग्रदुपक्रमात्वान्निवृत्ति जाग्रदधिष्ठातारं शिवस्य सर्वकर्तृत्वभूमिकाभूतमीश्वराख्यं प्रमातारं तद्वाह्यदशा विशेषेण शुद्धविद्या प्रमात्रा सह लक्षयति। अक्षेषु इत्यादि। अक्षेष्विन्द्रियेषु श्री (पाण्यादिषु) वागादिषु घ्राणादिषु च। वेद्यविलयः वेद्यानां पृथिव्यादि भूतानाञ्च विलयस्तदेकीकरणं शुद्धविद्याखलु शुद्ध विद्याश्रयः प्रमाता शुद्ध विद्येत्युपचारः। पाशवे इन्द्रियप्रकाशाद्वहिस्तत्तत्सार्थक्येनावभासमानानां वेद्यानां इन्द्रियप्रकाशक-गर्भ एवावभासननैयत्यविमर्शनेन्द्रियप्रकाशविमर्शरूपताध्यवसायादिन्द्रियैकात्म्यानु भवरूपा शुद्धविद्या पाशव व्यामोहकर्तरि गुर्वनुग्रहमूलेन समुन्मिषतीति। सैषा शुद्धविद्या वेद्येषु पशुदशायामिदं प्रत्ययैक विषयेषु पाशव व्यावृत्तौ स्वात्मेन्द्रिय प्रकाशतादात्म्याध्यवसायादहंप्रत्ययविषयतामर्पयन्ति पाशनिवृत्तिप्रथमपदे मायो-त्तीर्ण मात्रे प्रमातरि द्योतमाना तदभिधानतामुपचारेण भजतीति तद्विवेक एव प्रमाणपदे प्रमेयनिमज्जन लक्षणं शुद्धविद्या प्रमातृपदं व्युत्पाद्य तदूर्ध्वतनीमीश्वरदशां व्युत्पादयति-देहेत्यादि। देहे प्रमातरि। तदक्षविलयः तेषां शुद्धविद्या दशाभ्यस्त-प्रमेय स्वात्मीकरणानामक्षाणां विलयो निमज्जनमेकरसीकरणमीश्वरत्वं भवति। शुद्ध विद्या दशायां प्रमाणपद निमज्जितानां प्रमेयानां प्रमाणपदेन सह देहात्मरूपे

प्रभातृ पदे यद्देहांशे विनिमज्जनं तदीश्वरत्वमित्यर्थः। अत्र प्रथम प्रमेयात्मनो विश्वस्य किञ्चिदिदं प्रत्ययाधिवासिताहन्ताप्रत्ययविषयविषयत्वम्। देह पदे निमज्जितस्य विश्वस्य देहस्येव द्रढाहंप्रत्ययविषयत्वादीश्वरस्य देहाद्विश्वस्मिन्नपि चेष्टकत्वम्। अतेवसर्वकर्तृत्वमीश्वरस्येत्यवगन्तव्यम्। शुद्धविद्यापदेत्विदंप्रत्ययाहं-प्रत्यययोरिदं प्रत्ययस्यैवौल्बण्वात्विश्वचेष्टकत्वानुदयः। ईश्वरस्यानयादिशा (काम) विश्वशरीरस्य शिवजाग्रत्पपदत्वात्पशु जाग्रत्पदे संश्लेष इति प्रतिपादयति ईशोहीति। ईशो हि विश्वमये देहे कृताभिमानः शिवस्य जाग्रत परिच्छिन्न देहे कृताभिमानस्य-पशोर्जागरचक्रे दशारद्वयात्मके लग्नंश्लिष्टं पशुजाग्रत्पदे शिव जाग्रतः श्लेषौचित्यादितिभावः जडाजड पदयोः सुप्त्यादिदशात्रयेऽप्यन्योन्यश्लेष स्वभावता प्राक्प्रतिपादिता।।१।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

चतुर्थ-खण्ड में जाग्रद् अवस्था का निरूपण किया गया है। जाग्रत् में विमर्श का पूर्ण विकास तथा शिवत्व का पूर्ण सङ्कोच हो जाता है। यह अवस्था प्रवृत्यात्मक संसरण की चरम सीमा है। जाग्रद् अवस्था में जीव स्वयं को शिव से पृथक्, सीमित तथा बद्ध मानने लगता है। पञ्चम-खण्ड में निवृत्ति-रूप तुर्य दशा का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या

तुर्यात्मक अनुभूति जाग्रत् दशा में होती है अतः तुर्य को निवृत्ति-जाग्रत् अवस्था के नाम से सम्बोधित किया जाता है। निवृत्ति-जाग्रत् पद के अधिष्ठाता शिव हैं। शिव के सर्व-कर्तृत्व शक्ति की भूमिका का रूप ईश्वर-प्रमाता है; एवं ईश्वर-तत्त्व की बाह्य दशा-विशेष शुद्ध-विद्या है; अतः प्रथम इस सूत्र में ईश्वर प्रमाता तथा शुद्ध-विद्या प्रमाता का निरूपण किया जाता है।

सूत्रकार के अनुसार "इन्द्रियों में वेद्य का विलय" ही शुद्धविद्या की परिभाषा है। अर्थात् वागादि कर्मेन्द्रियों तथा घ्राण आदि ज्ञानेन्द्रियों में वेद्य अर्थात् पृथ्वी आदि पञ्च-महाभूतों के एकीकरण को शुद्ध-विद्या के नाम से संबोधित किया है। जीवावस्था में इन्द्रियों के प्रकाश से बाह्य विषयों के सहित अवभासित

वेद्य का, इन्द्रिय-प्रकाशक तत्त्व के अन्तर्गत प्रकाश-विमर्श रूप अध्यवसाय के कारण, इन्द्रियों के साथ एकीकरण हो जाता है। इस कारण वेद्य एवं इन्द्रियों के तादात्म्य की अनुभूति की स्वरूप-भूता शुद्ध-विद्या का समुन्मेष गुरु की कृपा से होता है। शुद्ध-विद्या तत्त्व की अनुभूति का उदय होने से जीव बन्धन से मुक्त हो जाता है। निवृत्यात्मक प्रवाह में इन्द्रियों के प्रकाश से आत्मा के तादात्म्य-रूप अध्यवसाय के द्वारा शुद्ध-विद्या, इदता नाम से सम्बोधित वेद्य विषयों में, अहंता प्रत्यय का समारोप करती है। अर्थात् शुद्ध-विद्या के उदय से इदंता का अहंता में विलय हो जाता है।

वस्तुतः वेद्य एवं इन्द्रियों के तादात्म्य की अनुभूति शुद्ध-विद्याश्रित मायोत्तीर्ण प्रमाता में होती है, न कि शुद्ध-विद्या में; किन्तु उपचार से यहाँ शुद्ध-विद्या-प्रमाता को शुद्ध-विद्या के नाम से सम्बोधित किया गया है। इन्द्रियाँ प्रमाण-पद हैं, वेद्य-विश्व प्रमेय-पद है, अतः अन्ततोगत्त्वा प्रमाण में प्रमेय का निमज्जन ही शुद्ध-विद्या की परिभाषा है।

सूत्र की द्वितीय पंक्ति में ईश्वर-तत्त्व की परिभाषा की गई है। देह रूप प्रमाता में इन्द्रियों का विलय ईश्वर-तत्त्व है। शुद्धविद्या में अभ्यस्त इन्द्रियों का देहात्मक-प्रमाता में लय हो जाता है, यह एकीकरण ईश्वर-तत्त्व है।

प्रमेयात्मक विश्व का विषय अहंता से मिश्रित इदंता है। देह पद में निमज्जित विश्व का विषय दृढ़ अहंता है। अतः विश्वात्मक देह के अन्तर्गत ईश्वर का चेष्टकत्व अर्थात् कर्तृत्व सिद्ध है। अतएव सर्वकर्तृत्व ईश्वर की ही शक्ति है। शुद्ध-विद्या तत्त्व में इदंता की प्रधानता के कारण विश्व-कर्तृत्व का उदय नहीं होता है।

इस प्रकार विश्वात्मक ईश्वर-तत्त्व शिव की जाग्रत् अवस्था है, इस कारण इसका पशु-जाग्रत् पद से संश्लेष है। विश्वात्मक देह में ईश्वर अभिमानवान देवता है, अतः शिव-जाग्रत् अवस्था में कृताभिमान शिव का दशारद्वयात्मक पशु-जाग्रत् अवस्था में अभिमानवान जीव से श्रीचक्र में संश्लेष दर्शाया गया है जो युक्ति युक्त है।

सुप्ति आदि तीनों दशाओं में जडाजड पद के अन्योन्य संश्लेशात्मक स्वभाव का प्रतिपादन पूर्व में ही किया जा चुका है।

द्वितीयं सूत्रम्

यद्बाह्यबाह्यपद मज्जनमन्तरन्त-
स्तच्चित्पदे जडपदे विपरीतमेतत्।
अक्षात्म वेद्यमिह शः स हि शुद्धविद्या
देहाविभिन्नकरणेन्द्रियमीश्वरः षः।।२।।

व्याख्या

अथ निवृत्तिरूपस्य शुद्ध विद्या प्रमातुः प्रमेयेषु अभ्यस्यमानाहंभावस्य भेदो न प्रशान्तइत्यभेदजाग्रत्पदाधिष्ठातृत्वं नाभ्युपगतम्। चिद्व्याप्तिपदस्य-बहिर्वहिरर्थाना-मन्तरन्तर्येषु निमज्जन रूपं स्वभावं व्युत्पादयन् शवर्गे शुद्ध-विद्याद्यभेदप्रमातृणां विषयविभागंदर्शयति। यद्बाह्येत्यादि। अन्तरन्तः पदे बाह्यबाह्यपदमज्जनं यद्बाह्यबाह्य पदस्ययन्मज्जनं प्रमेयाणांप्रमाणपदे मज्जनं प्रमाणानां प्रमातृपदेमज्जनमित्यर्थ। तच्चित्पदे चिद्व्याप्तिपदे भवतीति शेषः। जडपदे। चैत्यव्याप्तिपदे। एतद्विपरीतम्। अन्तरन्तःपदस्य बहिर्बहिःपदे मज्जनं विपरीतम्। प्रमातृपदस्य प्रमाणपदे मज्जनं प्रमाणपदस्यप्रमेयपदेमज्जन मित्यर्थः। इह शुद्धविद्येश्वरसदाशिवशक्त्याह्वयस्य प्रमातृचतुष्टयस्य। साधारणपदे शवर्गे। अक्षात्म इन्द्रियप्रकाशैकात्म। इन्द्रियप्रकाशे लब्धैकात्म्यमित्यर्थः। वेद्यंप्रमेयजातम्। शवर्णइतिवेदितव्यम्। प्रमाण लब्धैकात्मप्रमेय-स्थानीयः शवर्ण इत्यर्थः यद्यपि चवर्गयकारसङ्कोचत्यागात्मनः शकारस्य शब्दादि मात्र वेद्यस्थानीयत्वमुक्तम्। तथापि सर्वप्रमेयोप लक्षणत्वेनचित्पदेऽहंकारे कवर्ग लकारयोर्मज्जनाद्बहिरवभासमानश्चवर्ग यकारयोः रूपभेदशकारोऽपिसर्वप्रमेयोप-लक्षणइति वेदितव्यम्। सहि शकारः शुद्धविद्याप्रमाता प्रमातृ प्रमाण प्रमेय रूपेण पदत्रयेण निष्पाद्यस्वरूपस्य प्रमातुः कथं प्रमेयमात्र प्रतिपादके शकारे स्वरूपोपपत्तिरित्यत्रोच्यते। वर्ण चतुष्टयात्मकः सर्वोऽपिशवर्गः शुद्ध विद्यादि प्रमातृ चतुष्टयस्य साधारणपदे प्रत्येकं स्वरूपं भवति। तथापि शुद्ध विद्यादीनां चतुर्णां प्रमातृणां शकारादयश्चत्वारोवर्णाः एकैकस्यैकैक एव स्वरूपसिद्धिहेतु भूतस्य विशेषस्य प्रतिपादक। इत्युपचारात् तत्तदेकैकवर्णरूपतातेषाम् तथाहि शुद्ध विद्याप्रमातुरिन्द्रियैकात्म्य वेद्यत्वं स्वरूपसिद्धिहेतु विशेषः। अतस्तस्येन्द्रियैकात्म्य वेद्यप्रतिपादकशकार रूपत्वम्। ईश्वरस्य प्रमातुर्देहविभिन्न कार्य वेद्यैकात्म्य-कर्मेन्द्रियत्वम्। स्वरूपसिद्धि हेतुर्विशेषः। अतस्तस्य तादृक् कर्मेन्द्रियप्रतिपादक षकार रूपत्वम्। एतदेव आह देहाविभिन्न करणेन्द्रियमीश्वरः स इति।।२।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

प्रमेय में अनुभूत अहंभाव के कारण निवृत्ति रूप शुद्ध-विद्यात्मक प्रमाता में भेद-ज्ञान का शमन नहीं होता है; अतएव शुद्ध-विद्या अवस्था में प्रमाता को अभेद-जाग्रत पद का अधिष्ठातृत्व प्राप्त नहीं होता है। अतः इस सूत्र के अन्तर्गत चित् की ओर प्रवाहित पद में बाह्य अर्थों का अन्तः अर्थों (तत्त्वों) में निमज्जन रूप स्वभाव को दर्शाते हुए श-वर्ग में शुद्ध-विद्या आदि अभेद प्रमाताओं के विषय का विभाजन किया जाता है।

व्याख्या

चिद्-व्यप्ति में वाह्य अर्थों का अन्तः अर्थों में लय हो जाता है। अर्थात् प्रमेय का प्रमाण-पद में तथा प्रमाण-पद का प्रमातृ-पद में लय होता है। अचित् व्याप्ति में यह क्रम विपरीत हो जाता है। अर्थात् प्रमाता का प्रमाण में तथा प्रमाण का प्रमेय में निमज्जन होता है।

शुद्ध-विद्या, ईश्वर, सदाशिव तथा शक्ति नामक प्रमाता-चतुष्ट्य का साधारण-पद श-वर्ग है। इनके अन्तर्गत इन्द्रिय-प्रकाश में वेद्य के विलय का द्योतक श-कार है। अतः प्रमेय श-कार है।

च-वर्ग तथा य-कार के सङ्कोच-त्याग के परिणाम का स्वरूप श-कार है, च-वर्ग एवं य-कार शब्दादि तन्मात्राओं के द्योतक हैं; अतः श-कार को भी तन्मात्रा आदि वेद्य-स्थानीय स्वीकार करना युक्ति युक्त है। श-कार को समस्त प्रमेय का द्योतक दुहराना युक्ति युक्त नहीं है। इस आपत्ति के उत्तर में टीकाकार लिखते हैं कि क-वर्ग तथा ल-कार समस्त प्रमेय का उपलक्षण है। जब क-वर्ग तथा ल-कार का चित्पद-गत अहङ्कार में लय हो जाता है तब बाह्य भासित च-वर्ग एवं यकार का रूपान्तर श-कार भी सर्व प्रमेय का उपलक्षण हो जाता है। अतः श-कार को समस्त-प्रमेय रूप स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है।

श-कार को प्रमेय रूप स्वीकार कर लेने पर दूसरी आपत्ति यह होती है कि श-कार शुद्ध-विद्या प्रमाता है, प्रमाता के स्वरूप का निष्पादन प्रमेय, प्रमाण तथा प्रमाता तीनों पदों से होता है अतः केवल प्रमेय के प्रतिपादक श-कार से प्रमाता के स्वरूप के अभिव्यञ्जन में औचित्य नहीं है। इस पर टीकाकार

की युक्ति है कि सम्पूर्ण श-वर्ग साधारण रूप से शुद्ध-विद्या आदि चारों प्रमाताओं का द्योतक है; तथापि शुद्ध-विद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति-चारों प्रमाताओं में से प्रत्येक के पृथक्-पृथक् श, ष, स, ह वर्ण द्योतक हैं अतः उपचार से एक-एक वर्ण एक-एक प्रमाता का स्वरूप है। वेद्य की इन्द्रियों में एकाकारता शुद्ध-विद्या के स्वरूप की सिद्धि में हेतु विशेष है; अतः इन्द्रियों के साथ वेद्य के एकात्म्य का प्रतिपादक श-कार शुद्ध-विद्या प्रमाता का स्वरूप है।

ईश्वर-प्रमाता के स्वरूप की सिद्धि का हेतु विशेष देह से अभिन्न कार्य-वेद्य का ऐक्य है अर्थात् कर्मेन्द्रियत्व है; अतः कर्मेन्द्रियों का प्रतिपादक ष-कार ईश्वर-तत्त्व का स्वरूप है।

तृतीयं सूत्रम्

ज्ञानेन्द्रियं स हि सदाशिव आत्मनैक्ये
स्वात्मा स्वविश्रममयो ह इतीह शक्तिः।
एतत्तुरीयपदमङ्गचतुष्टयाढ्यम्
बाह्यान्तराल पदयोः श्रितरूपसाम्यम्।।३।।

व्याख्या

अथ सदाशिवशक्ति प्रमातृस्वरूप वर्णद्वयमाह। ज्ञानेन्द्रियमित्यादि। सदाशिवस्य प्रमातुरात्माविभिन्नसात्मीकृत ज्ञेयवेद्यज्ञानेन्द्रियत्वं स्वरूपसिद्धिहेतुर्विशेषः। अतस्तस्य तादृग् ज्ञानेन्द्रिय प्रतिपादक सकाररूपम्। एतदाह। आत्मनैक्ये आत्मना तादाम्ये सति तादृशं ज्ञानेन्द्रियं स हि सकारो तादृग् ज्ञानेन्द्रिय प्रतिपादकः सकारो हि सदाशिव इत्यर्थः। खविश्रममयः अपरिच्छिन्न चिदचित्सामरस्य-रूपाकाशविश्रान्तिमयः। स्वात्मा देहात्मनोभय लक्षणं स्वरूपम्। ह इति हकार इति वर्ण। इह शवर्गे शक्तिः शक्तिनाम प्रमाता अपरिच्छिन्नविश्रान्तिमयदेहात्म-सामरस्य लक्षण स्वरूपत्वं शक्तेः स्वरूपसिद्धि हेतुर्विशेषः। अतस्तस्यास्तादृक् स्वरूप प्रतिपादक हकार रूपत्वम्। एवं शुद्ध विद्यादीनां साधारणप्रदे शवर्गं तत्स्वरूपसिद्धि हेतुर्विशेषप्रतिपादक वर्णाश्रयणेन विषय विभागव्युत्पाद्यास्य शवर्ग रूपस्य पदस्य वाह्ये स्पर्श सङ्कोच त्यागरूपस्यान्तरन्तःस्थ सङ्कोचत्यागरूपस्यो-भयत्र रूप साम्यम् प्रागुपदिष्टमेव स्फुटप्रत्यायोद्घाटयति एतदित्यादि।

अङ्गचतुष्टयाढ्यं महाभूत चतुष्ट्य गर्भिण्याः महापृथिव्याः प्रकृत्याश्च चित्पदे हकारे निमज्जनादुभयत्राङ्ग चतुष्टयाढ्यम्। एतत्तुरीयपदं अभेद जाग्रत् स्वप्नरूपं तुर्यपदम्। बाह्यान्तरालपदयोः स्पर्शान्तः स्थप्रतिपाद्य जाग्रत्स्वप्नपदयोः। श्रितरूपसाम्यम्। च वर्गस्य यकारस्यापि सङ्कोचत्यागे शकार एव ट-वर्गस्य रेफस्य सङ्कोच त्यागे षकार एव। एवमवशिष्टमुन्नेयम्।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

सदाशिव तथा शक्ति-प्रमाता का स्वरूप क्रमशः सकार तथा हकार है जिसका कथन इस सूत्र में करते हैं।

व्याख्या

सदाशिव-प्रमाता के स्वरूप की सिद्धि का हेतु-विशेष आत्मा से अभिन्न (अर्थात् एकीकृत) ज्ञानेन्द्रियाँ हैं; ज्ञानेन्द्रियों का प्रतिपादक सकार है; अतः सकार ही सदाशिव है।

अपरिछिन्न चित् तथा अचित् के सामरस्य का रूप, देह तथा आत्मा उभय के लक्षण से लक्षित, विश्रान्तिमय आकाश का स्वरूप हकार है। सूत्रकार ने हकार का शक्ति-प्रमाता के नाम से उल्लेख किया है। अतः अपरिछिन्न, विश्रान्तिमय, देहात्म का सामरस्य स्वरूप आकाश-तत्त्व शक्ति-प्रमाता के स्वरूप की सिद्धि का हेतु-विशेष है। अतः शक्ति के इस स्वरूप का प्रतिपादक हकार है।

इस प्रकार शुद्ध-विद्या आदि के साधारण पद श-वर्ग में प्रत्येक के स्वरूप-सिद्धि के हेतु-विशेष का वर्णों के आश्रय से प्रतिपादन किया गया है एवं विषयों के विभाग को दर्शाया है। अब श वर्ग पद के बाह्य कक्षा में पूर्व प्रतिपादित स्पर्श के सङ्कोच-त्याग एवम् अन्तःस्थ के संकोच-त्याग-रूप के साम्य का स्पष्ट प्रतिपादन करते हैं।

यह तुरीय-पद चार अङ्गों से युक्त है। पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु तत्त्वों से युक्त महापृथ्वी एव प्रकृति का चित् पद के द्योतक हकार में लय हो जाते हैं इस कारण सिद्ध है कि बाह्य एवं अन्तः उभय पद अङ्ग-चतुष्ट्य से युक्त है। यही तुरीय पद है।

अर्थात् तुर्य-पद जाग्रत् तथा स्वप्न का अभेद रूप है। स्पर्श-वर्ण तथा अन्तस्थ-वर्ण जाग्रत् तथा स्वप्न के प्रतिपादक हैं। इस प्रकार बाह्य तथा अन्तराल अर्थात् स्पर्श एवं अन्तःस्थ वर्णों द्वारा अवबोधित जाग्रत् एवं स्वप्न पदों का सङ्कोच-त्याग स्वरूप शवर्ग है अत एव उभय पदों में श्रित-रूप साम्य है।

च-वर्ग एव य-कार का संकोच-त्याग रूप श-वर्ण, ट-वर्ग तथा रेफ का संकोच-त्याग रूप षकार है तथा अन्य भी इसी प्रकार जानना चाहिये। अर्थात् त-वर्ग तथा ल का संकोच-त्याग-रूप सकार प-वर्ग एवं वकार का संकोच-त्याग-रूप हकार है।

चतुर्थं सूत्रम्

एतत्पदंपदमखण्डितमेवशुद्ध-
विद्यादिकस्यखलु तत्त्वचतुष्टयस्य।
वेद्याद्यु दञ्चितचितिस्फुरणक्रमेण
तत्तद्दशावतरणं विबुधैर्विभाव्यम्।।४।।

व्याख्या

शवर्ण शुद्धविद्यादीनां प्रत्येक स्वर एव साधारणं पदमित्युक्तम्। तदेवाह एतदित्यादि। एतछवर्गरूपं पदं अखण्डितमेव अविभक्तमेव। शुद्धविद्यादिकस्य तत्वचतुष्टयस्यपदम्। प्रमाण प्रमेयाङ्गस्य प्रमातुरेकवर्णमात्रेण दुष्प्रतिपादत्वात्। एवमपि शुद्धविद्यादीनामेकैकवर्णोपचारे प्राक्प्रतिपादितोपपत्तिमासूत्रयति वेद्यादिति। वेद्याद्युदञ्चितचितिस्फुरण चैत्यव्याप्त्यवसाने यदा तदुन्मेषप्रारम्भः तदायं प्रारम्भो वेद्यादिक एव भवतीत्यनुभवः प्रमाणम्। तथाहि पाशवावसाने साधको गुर्वनुग्रहसमुन्मिषितविवेकदृष्टिर्वेद्यमे वस्वात्मेन्द्रियप्रकाशे निमज्जयति। प्रमेयस्वैवं-प्रमाण निमज्जनाभ्यासादारूढ़शुद्धविद्यास्वभावस्तदनन्तरं स्वात्मीकृत प्रमेयंप्रमाण-प्रमातृपदे निमज्जयितुमुद्युञ्जानः शरीररूपे तावत्प्रमातृ-भागे स्वात्मीकृतकार्यप्रमेयं कर्मेन्द्रिय वर्गरूपं प्रमाणंनिमज्जयति। अतोविश्वशरीरः सन् विश्वचेष्टकतयाविर्भूत सर्वकर्तृत्वशक्तिरारूढ़ेश्वरता कक्ष्यस्ततः परं स्वात्मीकृतज्ञेयप्रमेयं ज्ञानेन्द्रिय प्रमाणमात्मरूपे प्रमातरिनिमज्जयति अतोविश्वात्मकः सन्नाविर्भूतसर्वज्ञत्व शक्तिरारूढ़सदाशिवकक्ष्यो ज्ञानस्य प्राग्भावे न कियां क्रियाप्राग्भावे न ज्ञान

चानुसन्दधानस्ततः परं ज्ञानक्रिया सामरस्यभूमिमपरिच्छिन्नविश्रान्तिमयीमिच्छात्मिकां शक्तिक्रियामारोहतीति प्रक्रियया वेद्याद्युद्रञ्चितचितिस्फुरणक्रमेणतत्तदंशवर्णउक्त मर्यादया। शुद्धविद्यादि तत्तदशावतरणम् बिबुधैर्विद्वद्भिर्विभाव्यम्। उक्त मर्यादया वेद्यादिकं चित्प्रवहणे यं यं भागमधिकृत शुद्धविद्यादीनां स्वरूपलाभः तत्तद्भावरूपतत्तदावरणस्य तत्तत्प्रमातृपदत्वमौपचारिकमितिभावः।।४।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

तृतीय सूत्र में शुद्ध-विद्या, ईश्वर, सदाशिव एवं शक्ति तत्त्वों के द्योतक क्रमशः श, ष, स, ह वर्ण दर्शाए गये हैं तथापि सिद्धांततः चारों तत्त्वों का एक, अखंड, अविभक्त स्वरूप है किंतु प्रमातृ-पद का, जिसके प्रमाण तथा प्रमेय अङ्ग हैं, केवल एक वर्ण के द्वारा प्रतिपादन दुष्कर है। अतः शुद्ध-विद्या आदि चार तत्त्वों में से प्रत्येक को पृथक्-पृथक् वर्णों के द्वारा अभिव्यञ्जन करने के कारण का यहाँ विवेचन करते हैं।

व्याख्या

चैत्य के अवसान के समय अर्थात् जब चैत्य का चित् की ओर प्रवाह होता है तब शुद्ध-विद्या आदि तत्त्वों के उदय के प्रारम्भ में प्रमेय का ही अनुभव होता है। पाशव-दशा अर्थात् चैत्य अवसान होने पर गुरु की कृपा से साधक की विवेक-दृष्टि का जब पूर्ण रूप से उन्मेष होता है तब निम्न उल्लिखित क्रम से प्रमेय का निमज्जन होता है।

१) सर्वप्रथम स्वात्मेंन्द्रिय प्रकाश में वेद्य अर्थात् प्रमेय का निमज्जन होता है। जिसके अभ्यास से शुद्ध शुद्ध-विद्या की अनुभूति में स्वभावतः दृढ़ता उत्पन्न होती है।

२) तदनन्तर अर्थात् शुद्ध-विद्या प्रमाता में प्रमाण तथा प्रमेय दोनों के दृढ़ रूप से लय हो जाने पर, देह-प्रमाता में प्रमाण रूप कर्मेन्द्रियों का निमज्जन होता है जो ईश्वर-तत्त्व है। इस प्रकार निमज्जन के परिणाम स्वरूप विश्वाकार में परिणत चित् में विश्वकर्तृत्व के आविर्भाव के कारण ईश्वर-कक्षा सर्वकर्तृत्व शक्ति से सम्पन्न हो जाती है।

३) कर्मेन्द्रियों के निमज्जन के पश्चात् ज्ञानेन्द्रिय रूप प्रमाण का आत्म-तत्त्व में निमज्जन होता है; जिसके कारण विश्वात्मक, चित् ईश्वर-तत्त्व में सर्वज्ञत्व-शक्ति का उदय होता है जो सदाशिव कक्षा के नाम से प्रसिद्ध है।

४) क्रिया के बिना ज्ञान का तथा ज्ञान के बिना क्रिया का अनुसन्धान नहीं होता है। ज्ञान एवं क्रिया के अनुसन्धान के पश्चात् दोनों के सामरस्य-रूप इच्छा का अनुसंधान होता है। अर्थात् ज्ञान क्रिया की सामरस्य-भूमि अपरिच्छिन्न विश्रान्तिमयी इच्छा-शक्ति में साधक का आरोहण होता है।

वेद्य-प्रमेय के अवसान होने पर चिति के चित्-स्वरूप में स्फुरित होने की प्रक्रिया का उपर्युक्त क्रम है। इसी क्रम से शुद्ध-विद्या, ईश्वर, सदाशिव, तथा शक्ति का अपने-अपने अंश के द्योतक वर्णों की मर्यादा के अन्तर्गत अवतरण होता है।

सूत्रकार ने शुद्धविद्या आदि तत्त्वों में प्रमेय आदि के निमज्जन का उल्लेख किया है। किन्तु वास्तव में यह लय शुद्ध-विद्या आदि प्रमाताओं में होता है अतः यहाँ लय क्रम में शुद्ध-विद्या आदि का तात्पर्य उपचार से शुद्ध-विद्या-प्रमाता, ईश्वर-प्रमाता, सदाशिव-प्रमाता तथा शक्ति-प्रमाता से है।

पञ्चमं सूत्रम्

सा (स) दा शिवः सखलुबिन्दुमयस्तवर्ग-
तत्रेश्वराङ्गमयमान्तरधामयोग्यः।
ज्ञानक्रिये ननु शिवस्य सदाशिवेशा-
वन्तर्वहिश्च नियताङ्गिपदौ क्रमेण।।५।।

व्याख्या

इदानीं बाह्ये ज्ञानेन्द्रिय प्रतिपादक त वर्ग सङ्कोच त्याग रूपस्य सकारस्य सदाशिवकलायाः सतोऽपि बहिस्तस्य प्राधान्यानौचित्यादीश्वराङ्गत्वम्। अन्तः पदे रेफाक्षरत्यागरूपस्य षकास्येश्वरकलायाः सदाशिवाङ्गत्वमिति व्युत्पादयति। सदाशिवेत्यादि बिन्दुमयस्त्यक्त सङ्कोच इत्यर्थः। त वर्ग। स खलु सकारः खलु। असौ सकारः सदाशिवस्वभावः अन्तर्धामयोग्यः। स्वप्नलक्षण ज्ञान कक्ष्या समुचितोऽयं सकार रूपः सदाशिव स्वभावः तत्र बाह्यपदे क्रियाप्रधाने ईश्वराङ्गम्। ईश्वरस्याङ्गमेव। क्रियापदे ज्ञानांशस्य न्यग्भावः अत्रोपपत्तिमाह। सदाशिवेसौ शिवस्य ज्ञानक्रिये। ननु शिवस्य ज्ञानशक्ति विलासरूपसदाशिवः क्रियाशक्ति-विलासरूप ईश्वरः अस्तु प्रकृते का नामोपपत्तिरित्यत्राह। एतौ सदाशिवेसौ क्रमेणान्तर्वहिश्च नियताङ्गिपदौ सदाशिवस्यान्तः कक्ष्यानियतमङ्गि पदं तस्य ज्ञानस्वभावात्। ज्ञानस्य चान्तः पदे प्राधान्यात् बहिः कक्ष्या त्वङ्ग पदं, ईश्वरस्य

बहिः कक्ष्याङ्गिपदं तस्य क्रिया स्वभावात्। क्रियायाश्च बाह्यपदे प्राधान्यात्। तस्यान्तः कक्ष्यात्वङ्ग पदम्। अतो रेफसङ्कोचत्यागरूपस्य षकारस्येश्वरकलायास्तत्राङ्गत्वमेवेति विवेकः।।५।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

ज्ञानेन्द्रियों के प्रतिपादक त-वर्ग का सङ्कोच-त्याग-रूप सकार यद्यपि सदाशिव कला का द्योतक है तथापि बाह्य-कक्षा में सदाशिव के प्राधान्य का औचित्य नहीं है। बाह्य दशा में सदाशिव ईश्वर का अङ्ग है, अन्तः पद में रेफ के सङ्कोच-त्याग-रूप षकार के द्वारा अभिव्यञ्जित ईश्वर-तत्त्व सदाशिव का अङ्ग है। ईश्वर तथा सदाशिव का परस्पर अङ्ग-अङ्गी-भाव इस सूत्र का विषय है।

व्याख्या

बिन्दुमय अर्थात् मुक्त-सङ्कोच त वर्ग सदाशिव स्वभावरूप सकार है। सदाशिव-तत्त्व स्वप्नात्मक ज्ञानावस्था है, अतः क्रिया प्रधान बाह्य-पद ईश्वर तत्त्व का सदाशिव अङ्ग है; क्योंकि क्रिया-पद में ज्ञान का हीन भाव हो जाता है। सदाशिव तथा ईश्वर-तत्त्व दोनों ही क्रमशः शिव के ज्ञान एव क्रिया का स्वरूप हैं। शिव की ज्ञान शक्ति की लीला का स्वरूप सदाशिव एवं क्रिया-शक्ति का विलास रूप ईश्वर-तत्त्व है। अतः अन्तः तथा बाह्य क्रम से दोनों तत्त्व अङ्गि हैं। ज्ञानस्वरूप होने के कारण सदाशिव अन्तः कक्षा में अङ्गी है क्योंकि अन्तःपद में ज्ञान का प्राधान्य होता है; अतएव बाह्य कक्षा में ज्ञान गौण होने से अङ्ग है; बाह्य कक्षा में क्रियात्मक स्वभाव की प्रधानता होने से ईश्वर तत्त्व अङ्गि हैं। तथा अन्तः कक्षा में वह अङ्ग है क्योंकि अन्तः कक्षा ज्ञान प्रधान हैं।

षष्ठं सूत्रम्

इच्छा प पञ्चक ब बिन्दुमयी हशक्ति-
र्ज्ञान क्रिया समपदं खलु सोभयात्मा।
बिन्दौ समुन्मिषति सर्गपदे क्रमेण
संसृष्टिरापरिसमाप्तितयोर्विभाव्या।।६।।

व्याख्या

सदाशिव कलायाः अन्तः प्राधान्यामीश्वरकलायाः वहिः प्राधान्यमित्युक्तम्। इदानीं शक्तयाः कलायाः इच्छात्मिकायाः साम्येन तदुभय मूलतया वहिरन्तरपि प्राधान्यमिति व्युत्पादयति इच्छेत्यादि। प पञ्चक ब विन्दुमयी वर्ण पञ्चकात्मनः प वर्गस्य वकारस्य च योबिन्दुत्वं गुणप्रधानोऽयं निर्देशः। सङ्कोच त्याग इत्यर्थः। तन्मयी तत्स्वरूपा ह शक्तिः हकार प्रतिपाद्या शक्ति दशा। इच्छा स्वभावा। सा इच्छाशक्तिः ज्ञान क्रिया समपदंज्ञानक्रिययो साधारण्येन मूलपदम्। इच्छां (बिना) विज्ञानमपि न प्रवर्तते क्रियापि न प्रवर्तते इति ज्ञान क्रिययोः इच्छैवान्तरं कूटस्थं रूपम्। अतेव सा उभयात्मा उभयस्य ज्ञानस्य क्रियायाश्च आत्मा मूलस्वरूपम्। अतस्तस्या ज्ञान-पदेऽअन्तः क्रिया पदे बहिश्च प्राधान्यमेव नाङ्गत्वमिति भावः। इदानीं विसर्ग पदे विद्यादि क्रमेण बिन्दून्मेषे प्रवृत्ते सत्यसौ बिन्दून्मेषः क्रमप्रवृत्तिशाली यावत्सर्वमपि पदं व्याप्नोति तावद्विसर्ग गन्धस्यानुवृत्तत्वाद्बिन्दु विसर्गयोः संसृष्टिरेव न बिन्दोरेकाधिपत्यमिति व्युत्पादयति। बिन्दौइत्यादि। सर्ग पदे क्रमेण बिन्दौसमुन्मिषति सति। आपरिसमाप्ति सर्वत्र पदे बिन्दु व्याप्ति निष्पत्ति पर्यन्तं तयोर्बिन्दु विसर्गयोः संसृष्टि। त्रिपुटी रूपे पदे क्वचिद् बिन्दून्मेषः क्वचिद् विसर्ग स्फुरत्तेत्ति संसृष्टिः विभाव्या ऊहनीयः अयमर्थः। शुद्ध विद्या प्रमातरि वेद्यानामिन्द्रिय प्रकाश निमज्जनेन वेद्यांश एव चिदुन्मेषः। इन्द्रियाणां प्रमातृ पदे निमज्जनाभ्यास पाटवाभावादिन्द्रियादिकेषूत्तरोत्तरपदेषु भेदस्याप्रशमाद्विसर्गस्य स्फुरत्तेति। बिन्दु विसर्ग संसृष्टिः ईश्वरदशायां शुद्ध विद्योत्तर पदत्वात्प्रमेयेषु चिदुन्मेषः सिद्ध एव। विशेषस्तु स्वात्मीकृत स्वविषयाणां कर्मेन्द्रियाणां देहात्मक प्रमातृपदे निमज्जन्। स्वात्मीकृत स्व विषयाणां ज्ञानेन्द्रियाणामात्मरूपे-प्रमातृपदभागे निमज्जन तत्प्राधान्येन अपाटवमेवाप्रधानम्। अतस्तदाद्युत्तर पदे भेदस्फुरत्तेति विसर्ग संसृष्टिः। सदाशिव दशायामीश्वर दशा पर्यन्त चिदभेदोन्मेषः सिद्ध एव। विशेषस्तु स्वात्मीकृत ज्ञेयानां ज्ञान करणानां विश्वमयस्य च स्वात्म प्रमातृपदे निमज्जनम् तस्या अपि दशाया निराकुल चिद्विश्रमरूपेच्छा-शक्तितत्वैकात्म्यम् सावशेषमिति तदंशे भेदगन्धाद्विसर्गस्पर्शः। शक्ति दशायां तु विश्रमरूपत्वादपरिच्छिन्नायामेवाभेद साम्राज्यमिति तात्पर्यस्। तं बिन्दून्मेष पदे विसर्गांनुवृत्तितारतम्यविवेकशुद्धविद्यादि तत्वानां प्रस्फुट ज्ञान कारणमिति तस्य तत्कर्त्तव्यत्वेन चोदना।।६।।

भाषा टीका

पूर्व सूत्र में सदाशिव कला का अन्तः प्राधान्य तथा ईश्वर कला का बाह्य प्राधान्य प्रतिपादित किया गया है। इस सूत्र में इच्छात्मक शक्ति की, ज्ञान तथा क्रिया उभय का मूल होने से, बहिः एवं अन्तः दोनों दशाओं में प्रधानता प्रतिपादित की गई है।

व्याख्या

शक्तिदशा प वर्ग एवं व-कार के बिन्दुत्व से युक्त, सङ्कोच त्याग रूप है; जिसका ह-कार द्वारा अभिव्यञ्जन होता है। शक्ति का स्वभाव इच्छात्मक है। ज्ञान-क्रिया का समत्व इच्छा शक्ति है। इस इच्छा शक्ति के बिना न विज्ञान का प्रवर्तन होता है और न ही क्रिया का प्रवर्तन होता है। ज्ञान एवं क्रिया का आन्तर-कूटस्थ स्वरूप इच्छा है। अतः ज्ञान एव क्रिया दोनों की आत्मा अर्थात् मूल-इच्छा है। अतएव अन्तः ज्ञान-पद एवं वहिः क्रिया-पद दोनों में इच्छा का प्राधान्य है। इच्छा दोनों पदों में अङ्गी है; अङ्ग नहीं है।

विसर्ग-पद में विद्यादि क्रम से जब बिन्दु का उन्मेष होता है तब समस्त पद में जब तक बिन्दु व्याप्त नहीं हो जाता है; तब तक इस अवस्था में भी बिन्दु के साथ विसर्ग का मूल रूप से अस्तित्व रहता है अतएव यह संसृष्टि बिन्दु एवं विसर्गमय है; केवल बिन्दु का एकाधिपत्य नहीं है। सूत्र के द्वितीय चरण में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है।

विसर्ग-पद में क्रम से बिन्दु की उन्मेष अवस्था के प्रारम्भ से सर्वत्र बिन्दु की व्याप्ति की निष्पत्ति होने तक, संसृष्टि बिन्दु एवं विसर्ग मय होती है। त्रिपुटी रूप पद में कहीं बिन्दु का उन्मेष होता है तथा कहीं विसर्ग की स्फुरता होती है, संसृष्टि का यही क्रम है। टीकाकार इस सिद्धान्त का किंञ्चित् विस्तार से प्रतिपादन करते हैं।

शुद्ध-विद्या प्रमाता में जब इन्द्रिय-प्रकाश के अन्तर्गत वेद्य का लय हो जाता है तब वेद्यांश के रूप में ही चित् का समुन्मेष होता है। इस दशा में इन्द्रियों का प्रमातृ पद में लय तो हो जाता है किन्तु अभ्यास में दक्षता का अभाव रहता है अतएव इन्द्रियादिक से उत्तीर्ण पद में भेद का शमन नहीं होता है अतएव विसर्ग की स्फुरता स्थित रहती है इस कारण यहां बिन्दु एवं विसर्ग दोनों की संसृष्टि हैं। शुद्ध-विद्या से उत्तीर्ण होने के कारण ईश्वर पद के अन्तर्गत

प्रमेयानुभूति में चित् का उन्मेष सिद्ध है। ईश्वर दशा में विषयों को आत्मसात करके कर्मेन्द्रियों का निमज्जन विशेषतया देहात्मक प्रमाता में होता है।

अपने विषयों को आत्मसात कर जब ज्ञानेन्द्रियाँ आत्मरूप प्रमाता में लय हो जाती हैं तब आत्मा के प्राधान्य के कारण साधक के अपाटव (अदक्षता) का प्रश्न अप्रधान बन जाता है; इस प्रकार उत्तर पद में अप्रधान रूप से भेद का स्फुरण होता रहता है। इस कारण यह संसृष्टि विसर्गात्मक है। अतः सदाशिव से ईश्वर पर्यन्त दशाओं में चित् का अभेद उन्मेष सिद्ध है।

जब विश्वमय स्वात्म-प्रमातृ पद में ज्ञेय के सहित ज्ञानेन्द्रियों का विशेषतया लय हो जाता है तब सदाशिव दशा का भी निराकुल चित् विश्रान्ति रूप इच्छा शक्ति में एकात्म्य हो जाता है किन्तु इस दशा में भी भेद का अंश अवशेष रहता है। अतएव विश्रांति रूप होने से अपरिच्छिन्न शक्तिदशा में ही केवल अभेद का साम्राज्य रहता है यह निष्कर्ष सिद्ध होता है।

विसर्गानुवृत्ति के तारतम्य के विवेक से युक्त बिन्दु की उन्मेष दशा शुद्ध-विद्या आदि तत्त्वों के प्रस्फुट ज्ञान का कारण है अतः बिन्दु की उपासना का आदेश शास्त्रों में है।

सप्तमं सूत्रम्

पूर्वत्र नैव हि परोनियत परत्र
पूर्वो भवेन्नियत एव शषादिबृन्दे।
एकत्र संविदुदयेऽप्यपरत्रभासस्तस्या
इतीदमथवा सममेवबिन्दुः।।७।।

व्याख्या

शुद्धविद्यादिषु बहिर्बहिर्दशायां अन्तरन्तर्दशानान्तर्भवन्ति (ति)। अन्तरन्तर्दशायां तु बहिर्बहिर्दशान्तर्भवतीतिव्युत्पादयति। पूर्वत्रेत्यादि। शषादि बृन्दे शषादिप्रतिपाद्ये शुद्धविद्यादि बृन्दे पूर्वत्र शुद्धविद्यादौ पूर्वदशायां परः परदशा नैव हि नियतः न नियता। शुद्धविद्यायामीश्वरदशा न नियता। ईश्वरदशायाञ्च सदाशिवदशा। सदाशिवदशायां शक्तिदशा च तथेत्यर्थः। परत्र तु ईश्वरादि दक्षायान्तु पूर्वः। शुद्धविद्यादिदशानियत एव भवेत्। नियमेनभवेदेव।

ईश्वरदशायांशुद्धविद्यादशान्तर्भूता भूतास्त्येव। सदाशिवदशायाञ्चेश्वरदशा। शक्तिदशायाञ्च सदाशिव दशेतियोजना। इदानीं वेद्योपक्रमेण संविदुदये क्रमं बिना वेद्यादि प्रतिपादकं सर्वमपि शषादिबृन्दं संविन्मयूखानां निराघट (निर्बाध) प्रसरणेन युगपदेव सङ्कोचति त्यजतीति पक्षान्तरमुपक्षिपति एकत्रेति। एकत्र वेद्यभागे संविदुदये सति। अपरत्रापिप्रमाणादि पदे सर्वत्रापि तस्याः संविदो भास इति। भासः प्रवहन्तीतिशेषः। इदं शषादिबृन्दं शषाद्यक्षर चतुष्टयं अथवापक्षान्तरेण सममेवयुगपदेव बिन्दुःविन्दुशब्देन त्यक्त सङ्कोचत्व लक्ष्यते। त्यक्त सङ्कोचो भवतीतिशेषः। अयमर्थ वेद्यपदोपक्रमेण बिन्दून्मेषे शुद्धविद्यादिदशानां कालविलम्वापेक्षः क्रमो न नियतः। क्वचित्प्रमातरि भाग्याधिके शक्तिपातस्य तीव्रतया शुद्धविद्यादिदशानां निर्विलम्बेन क्षणादाविर्भावोयुगपदेव सम्भबति। क्वचित्तु क्रमापेक्षया शनैः सम्भवतीति पक्षद्वयमत्रानुसन्धेयम्।।७।।

भाषा टीका

व्याख्या

श-ष-आदि वर्ण समूह द्वारा प्रतिपाद्य शुद्ध-विद्या आदि पूर्व दशाओं में परदशा नियत नहीं होती है। अर्थात् शुद्ध-विद्या में ईश्वर-दशा नियत नहीं है, ईश्वरदशा में सदाशिव-दशा, तथा सदाशिव-दशा में शक्ति-दशा नियत नहीं है। परत्र अर्थात् ईश्वर आदि दशाओं में पूर्व दशा शुद्धविद्या नियत है। अर्थात् ईश्वर-दशा में शुद्ध-विद्या दशा अन्तर्भूत है। इसी प्रकार सदाशिव-दशा में ईश्वर-दशा अन्तर्निहित है। तथा शक्ति-दशा में सदाशिव-दशा नियत है।

वेद्य के उपक्रम से जब संवित् का उदय होता है तब वेद्य आदि के प्रतिपादक समस्त श, ष, स, ह वर्णों में संवित् की मयूखों के निर्बाध प्रसरण से एक समय में ही (युगपत्) दशाओं का सङ्कोच एवं त्याग हो जाता है। अर्थात् जब वेद्य में संवित् का उदय होता है तब अपरत्र प्रमाणादि पद में भी सर्वत्र संविद् का भास हो जाता है।

अथवा अन्य पक्ष भी है कि बिन्दु से ही सङ्कोच त्यागलक्षित होता है। वेद्य के उपक्रम में संवित् का उदय होने पर एक काल में ही समस्त चारों तत्त्वों के सङ्कोच का त्याग हो जाता है अर्थात् शुद्ध-विद्या आदि के विलय क्रम में काल के क्रम की अपेक्षा नहीं रहती है। कहीं भाग्य की प्रवलता से तीव्र शक्तिपात के कारण शुद्ध-विद्या आदि दशाओं का निर्विलम्ब क्षण मात्र

में ही आविर्भाव सम्भव हो जाता है; कहीं क्रम की अपेक्षा से शनैः शनैः सम्भव होता है।

अष्टमं सूत्रम्

जाग्रच्छिवस्य पशुजागरयुक्तदेश-
मन्तर्दशारमिह कोणगतंबहुत्वम्।
भेदोदयोल्लसितमेतदभेदकोट्यां
प्राप्नोति संग्रहमिति प्रतिपद्रहस्यम्।।८।।

व्याख्या

इदानीं शकाराद्यक्षर चतुष्ट्याधिष्ठातुरीश्वरस्य वह्न्यक्षर सन्निवेशवति दशारयुग्म रूपे पशु जागर चक्रे कथं सन्निवेशौचित्यमित्याशङ्का तदुपपादयति। जाग्रदित्यादि। शिवस्य जाग्रत् जाग्रदवस्था पशु जागर युक् पशुजागरावस्थया युक् योगिनी यतः शिलष्टमित्यर्थः। (तत्) तस्मात्कारणादन्तर्दशारं दशेन्द्रिय सन्निवेशपदव्याप्य दशारं ऐश ईश्वराधिष्ठातृकम्। इहेश्वराधिष्ठातृके दशार चक्रपदे भेदोदयोल्लसितं भेदविजृम्भणेन समुदञ्चितं यत्कोणगतं बहुत्वं कोण बाहुल्यं एतदभेद कोट्यां अभेद पक्षाविर्भावे सग्रहम्। अभेद पदोचितं बाहुल्य त्यागं प्राप्नोतीति प्रतिपद्रहस्यं ज्ञानरहस्यम्। अयमर्थः विसर्गव्याप्तौ सकलभेद समुज्जृम्भस्थले चुतुर्विंशत्यक्षरात्मके स्पर्श कदम्बके पञ्चवर्ग संविभक्तं यत्पञ्चाङ्गकं पदं चतुरस्रं दशारयुग्मस्य चतुर्षु कोणपञ्चकेषु व्यवस्थितम्। पशु जागरे शिवजागरेतु भेद संक्षयेसति चतुरस्रपदं पादि वर्णचतुष्टयं हकारत्वेन परिगण्यते। बहिर्दशार कोण पञ्चकगतः कवर्गश्च हकारेऽन्तर्भवति। अवशिष्ट कोणपञ्चक गतश्चवर्गः शकारत्वेन परिणमति। अन्तर्दशारे कोण पञ्चकगतष्टवर्गः षकारत्वेन परिणमति। अवशिष्ट कोण पञ्चकगतस्तवर्गः सकारत्वेन परिणमति। मकारो हकार रूपेण परिणामिनि प-वर्गे च सम्बन्धमुपलभते। प्रमातृ कक्ष्यायाञ्चवक्ष्यमाण त्रिकोण बिम्बे संबंधमुपलभतइति। विसर्गपदे बिंद्वाविर्भाव-प्रक्रिया चतुरस्र दशारयुग्म रूपं चक्रत्रयं कोणचतुष्टय्याकारेण परिणमति। विसर्गपदे बिंदुपदे च वर्णानां कोणानां चैकरूप्येण भवितव्यमिति ये मन्यन्ते ते भेदाभेददशयोरप्यवशेषं प्रतिपद्यंत इत्यलम्।।८।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

श्रीचक्र में पशु जाग्रत् अवस्था के द्योतक दशार चक्र को बहुत अक्षरों से युक्त दर्शाया गया है। अन्तर्दशार चक्र-दश इन्द्रियों का द्योतक है, जिसका अधिष्ठाता ईश्वर है, किन्तु ईश्वर-तत्त्व को विगत सूत्र में श, ष, स, ह अक्षरों का अधिष्ठाता दर्शाया गया है। अतः शकार आदि चार अक्षरों के अधिष्ठाता ईश्वर-तत्त्व का बहु अक्षरों से युक्त दशार चक्र में सन्निवेश शंका का विषय हो जाता है जिसका का औचित्य इस पद में प्रतिपादित किया गया है।

व्याख्या

शिव की जाग्रत् अवस्था पशु की जाग्रत् अवस्था से संयुक्त है। इस कारण से अन्तर्दशार का अधिष्ठाता ईश्वर है। इस दशा में भेद का उल्लास होता है अतः कोणों का बाहुल्य है।

जब अभेद पक्ष का आविर्भाव होता है जब कोणों के बाहुल्य का त्याग हो जाता है यह ज्ञान मार्ग का रहस्य है। इसका तात्पर्य है कि समस्त भेद सृष्टि की जन्म स्थल विसर्ग व्याप्ति दशा में स्पर्श वर्ण कदम्बक के क से भ पर्यन्त चौबीस अक्षर पाँच वर्गों में विभक्त हैं जो पञ्चाङ्गक पद के नाम से कहा गया है। इस पञ्चाङ्गक पद की व्यवस्था दशारद्वय के चार कोण-पञ्चकों में की गई है।

जब पशु-जाग्रद् अवस्था तथा शिव जाग्रद् अवस्था के भेद की समाप्ति हो जाती है तब प, फ, ब, भ, चार वर्णों से युक्त चतुस्त्र पद हकार में परिणत हो जाता है तथा बहिर्दशार के पाँच कोणों में चित्रित क-वर्ग ह-कार में अन्तर्भाव हो जाता है।

दशार के कोण-पञ्चक के अवशिष्ट वर्गों में से च-वर्ग श-कार के रूप में, ट वर्ग ष-कार के रूप में तथा त वर्ग स-कार के रूप में परिणत हो जाता है। ह-कार के रूप में परिणत प वर्ग के अंतर्गत म-कार का संबंध उपलब्ध होता है।

विसर्ग पद में बिन्दु के आविर्भाव की प्रक्रिया चतुरस्त्र अन्तर्दशार तथा बहिर्दशार के अभिव्यञ्जक तीन चक्रों को कोण चतुष्ट्य के आकार में परिणत कर देती है। जो विसर्ग पद तथा बिन्दु पद में वर्णों तथा कोणों को एक रूप मानते हैं वे सिद्धांती भेदाभेद दशाओं को भी एक रूप प्रतिपादित करते हैं।

नवमं सूत्रम्

यः पार्थिवेचिदुदयः स हि शुद्धविद्या
यः प्राकृते सपुनरीश्वरता किलाण्डे।
यो मायिकं स तु सदाशिवतेति शादे-
स्त्रैरूप्यधीरिहरहस्यतमं गुरूणाम्।।९।।

व्याख्या

इदानीं पक्षान्तराश्रयणेन इन्द्रियदेहात्मनि मज्जित प्रपञ्चानां शुद्धविद्येश्वर सदाशिवानां पृथ्वी (भूः) प्रकृतिमायान्ताश्चिन्मयीकृता विषया इत्युपकल्पयति। यः पार्थिवेत्यादि। बहिरिन्द्रियविषयरूपेपार्थिवाण्डेयश्चिदुदयः चिद्व्याप्तिः स हि सखलु बिन्दूदयः शुद्धविद्या। यामिन्द्रियप्रकाशरेकाकारीकृतप्रमेयत्व लक्षणात्। पार्थिवाण्डे प्रमातृस्थानीयः प वर्गः सम्बन्धवान् एव। त्रिपुट्यांनित्यं तत्सम्बन्ध नियमात्। अतस्त्यक्तसङ्कोचेपार्थिवाण्डे चतुर्वर्णरूपस्यसर्वस्य शवर्गस्यसम्भवः। एवञ्चास्मिन्पक्षे शुद्धविद्याप्रमातुर्भेदप्रशमोपक्रमपदत्वात्। पशुजाग्रच्च त्रिकोण-बाहुल्ये सत्येवसन्निवेशोपपत्तिरिति च विसर्गस्पर्शाः शवर्गाकारेणपरिणमदवस्था शुद्धविद्या प्रमातरिभेदशिरो दर्शनमुप लभन्त इति मुख्यया वृत्याविश्वस्यैव शिवजाग्रत्पशुजाग्रच्चक्र संश्लेषः। शुद्धविद्या (या) सत्वपरिणतविवेका-नामङ्गीकाराय पाक्षिकस्तत्संश्लेष इत्यलम्। यः प्राकृतेण्डे चिदुदयः शवर्गा-कारेणसङ्कोचत्यागः स पुनरीश्वरताकिल। अत्रोपपत्ते प्रतिभासमात्र गम्यत्वात्। किलेति साम्प्रदायिकमैतिह्यम्। अत्रपवर्गस्य शवर्गाकारेण सङ्कोचत्याग एवमभ्यूह्यः। मकारस्योष्ठ्य वर्णस्यसङ्कोच त्यागः कण्ठ्यवर्णोहकार इतिसुगमम्। पकारस्य प्रकृतिवर्णस्यहकारे चित्पदेऽन्त र्भावः। फकारादिवर्णत्रयस्य शकारादि वर्णत्रयत्वे युक्तिरुच्यते। फकारबकार भकारा जलाग्नि वायवः। शकारषकार सकाराश्च तथा। अतः फकारादिसङ्कोच त्यागरूपत्वं शकारादीणाम् समानतत्वप्रतिपादकत्वात् शकारादीनाम्जलादि-प्रतिपादकत्वम् प्रागुक्तभूतवैपरीत्याभाव विमर्शेस्फुटं फकारादीनांरूपमुच्यते। अल्पप्राणो वर्ग प्रथम वर्णः अल्पवृत्तिश्चेतरभूतापेक्षया पृथिवी अतस्तत्प्रतिपाठिका। महाप्राणो वर्ग द्वितीयवर्णः पृथिव्यपेक्षया महावृत्ति च जलम्। अतस्तत्प्रतिपादकः नादवान्वर्गतृतीयवर्ण महाप्रणान्नादोऽधिकवृत्तिः। जलादधिकवर्ति वृत्तिश्चाग्निः। अतः सः तत्प्रदिपादकः। नादवान्घोषवांश्च वर्ग

चतुर्थ वर्णः केवल नादवती (भवः नाद) नादवतीघोषवान्अधिकवृत्तिः। अग्नेरधिकवृत्तिश्च वायुः। अतस्तत्प्रतिपादकः उक्त सकल धर्मसंसृष्टि रूप पवर्ग पञ्चमं। अतः पृथिव्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽचतभ्योऽधिकवृत्तिराकाशः। अतःपञ्चम-वर्णः आकाशप्रतिपादक इति। अतः फकारादिप्रतिपाद्यतत्व प्रतिपादकतया सङ्कोचत्यागरूपत्वाच्च शकारादयः फकारादि परिणतिरूपा इति लभ्यते। ईश्वरस्य विश्वमयप्रकृत्यभिमानलक्षणत्वात्त्यक्तसङ्कोचं प्रकृत्यण्डमीश्वरपदत्वमर्हतीत्य-भिप्रायः। यो मायिकेण्डेचिदुदयःस तु सदाशिवता मायिकाण्डस्य स्वप्नस्य आत्मप्रकाशपदत्वात् सदाशिवस्य विश्वात्मत्वलक्षणात्यक्तसङ्कोचो मायाण्डः सदाशिवपदमिति। शादेः शकारादिवर्ण चतुष्टयस्य। त्रैरूप्यधीः पृथिव्यण्डे-प्रकृत्यण्डे मायाण्डे च सिद्धस्य त्रैरूप्यस्य ऐकरूप्ये सत्येव स्नानकृतत्रैविध्यस्य याथी र्विवेकः। साधीरिह शुद्धविद्यादिदशाविवेकप्रस्तावे गुरुणां रहस्यतममतिरहस्यम्।।९।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

शुद्ध विद्या ईश्वर सदाशिव रूप इन्द्रिय, देह तथा आत्मा में निमज्जित प्रपञ्च के अन्तर्गत पृथ्वी, प्रकृति एवं माया पर्यन्त चिन्मयीकृत विषयों का प्रकारान्तर से प्रतिपादन करते हैं।

व्याख्या

"यः पार्थिवं" :- बाह्य इंद्रियों के विषय स्वरूप पार्थिव अण्ड में जो चित् की व्याप्ति होती है वह विन्दु का उदय है, जिस को शुद्ध-विद्या के नाम से सम्बोधित किया गया है। जैसा कि पूर्व में प्रतिपादित किया गया है कि शुद्ध-विद्या में दश इन्द्रियों के प्रकाश के साथ प्रमेय का एकीकरण हो जाता है जिसके कारण विसर्ग का अन्त होकर बिन्दु का उदय होता है।

पार्थिव-अण्ड से प्रमातृ-स्थानीय प-वर्ग का सम्बन्ध है। सिद्धान्ततः अहङ्कार, बुद्धि तथा मन रूप त्रिपुटी से प्रमाता म-कार का नित्य सम्बन्ध है। अतएव पार्थिव-अण्ड के सङ्कोच के त्याग की अवस्था में चतुर्वर्णात्मक समस्त श-वर्ग की उत्पत्ति होती है। तात्पर्य यह कि प-वर्ग के तीन अक्षर फ, ब, भ क्रमशः अहङ्कार, बुद्धि तथा मन के द्योतक हैं। इस त्रिपुटी से प्रमातृ-स्थानीय

म-कार का नित्य सम्बन्ध है। अर्थात् मकार-रूप चित का समावेश त्रिपुटी में अविना भाव रूप से है। अतएव जब पार्थिव-अण्ड की सङ्कोचावस्था का अन्त हो जाता है तब शुद्ध-विद्या तत्त्व में श, ष, स, ह चतुर्वर्णात्मक समस्त श-वर्ग का प्रादुर्भाव होता है।

इस प्रकार टीकाकार के मत के अनुसार शुद्ध-विद्या प्रमाता में भेद के शमन का उपक्रम होता है अतः पशु-जाग्रत् में त्रिकोण के बाहुल्य के होते हुए भी शुद्ध-विद्या के अन्तर्गत श-वर्ग की केवल उपपत्तिमात्र होती है; एवं यह अवस्था विसर्ग-स्पर्श के श-वर्ग रूप में परिणत होने की अन्तर्कालीन अवस्था है। अर्थात् शुद्ध-विद्या में भेद का दर्शन शेष रह जाता है अतएव मुख्यावृत्ति से ईश्वर तत्त्व का ही शिव-जाग्रत् एवं पशु-जाग्रत् चक्रों में संश्लेश है, शुद्ध-विद्या में केवल पाक्षिक संश्लेश है क्योंकि इस दशा में पूर्ण विवेक का उदय नहीं होता है।

"यः प्राकृते अण्डे" :- प्राकृत-अण्ड में चिदोदय ईश्वर तत्त्व है। प्राकृत-अण्ड का अन्त होने पर जब चित् का उदय होता है तब प्रकृति के द्योतक स्पर्श-वर्णों के सङ्कोच का त्याग होकर श-वर्ग में परिवर्तन हो जाता है; यही ईश्वरता है।

श-वर्ग के आकार में प-वर्ग के सङ्कोच-त्याग का विवरण इस प्रकार है :- ओष्ठ वर्ण म-कार के सङ्कोच का त्याग कण्ठद्वारा उच्चारित ह-कार वर्ण में हो जाता है। प्रकृति वर्ण प-कार का चित्पद हकार में अन्तर्भाव हो जाता है। फ-कार, ब-कार तथा भ-कार क्रमशः जल, अग्नि एवं वायु के द्योतक हैं। इसी प्रकार श, ष, स भी क्रमशः जल, अग्नि, वायु के द्योतक हैं, अतः समान तत्त्वों के प्रतिपादक होने के कारण फ-कार आदि वर्णों के सङ्कोच का त्याग होने पर श, ष, स में परिवर्तन हो जाता है।

पूर्वोक्त तत्त्वों के वैपरीत्य अर्थात् अभाव-विमर्श के अन्तर्गत फ-कार आदि के रूप का कथन करते हैं। वर्ग का प्रथम अक्षर प-कार अल्प प्राण है। अन्य भूतों की अपेक्षा पृथ्वी में प्राण की अल्प वृत्ति है अतः प-कार पृथ्वी का प्रतिपादक है। वर्ग का द्वितीय वर्ण फ-कार महाप्राण है, पृथ्वी की अपेक्षा जल में प्राण की वृत्ति अधिक है; अतः फ वर्ण जल का प्रतिपादक है। वर्ग का तृतीय वर्ण ब-कार महाप्राण फ-कार से अधिक नाद-युक्त है, जल से अग्नि में नाद की वृत्ति अधिक होती है, अतः ब-कार अग्नि का प्रतिपादक है। वर्ग का चतुर्थ अक्षर भ-कार नाद एवं घोष दोनों से युक्त है। केवल नादवान तत्त्व से नादवान एवं घोषवान तत्त्व में प्राण की

वृत्ति अधिक होती है; अर्थात् अग्नि से वायु में प्राण की अधिक वृत्ति है, अतएव अधिक वृत्ति के आधार पर भ-कार वायु का प्रतिपादक है। उपर्युक्त प्रकार से प-वर्ग पञ्चक स-कल धर्म की संसृष्टि का स्वरूप है। आकाश की प्राण वृत्ति पृथ्वी आदि तत्त्वों की वृत्ति से अधिक है अतः पञ्चम वर्ण म-कार आकाश तत्त्व का प्रतिपादक है।

इस प्रकाश श, ष, स वर्ण एवं फ, ब, भ वर्ण समान तत्त्वों के प्रतिपादक हैं, एवं दोनों ही वर्गों के स्वरूप में सङ्कोच का अन्त हो जाता है। अतः इन दोनों कारणों के आधार से टीकाकार ने शकार आदि को फकार आदि का परिणत रूप सिद्ध किया है।

विश्वमय प्रकृति का अभिमानवान ईश्वर है, इस परिभाषा के अनुसार सङ्कोच के त्याग हो जाने पर प्रकृति-अण्ड ईश्वरपद की योग्यता को प्राप्त करता है। मायिक-अण्ड में जो चित् का उदय होता है उसको सदा-शिव-पद कहा गया है। शकारादि के द्वारा पार्थिव-अण्ड, प्रकृति-अण्ड तथा मायाण्ड के अन्तर्गत स्थान भेद से प्रतिपादित त्रिरूप की एक रूपता का, शुद्ध-विद्या के प्रस्ताव में, जो प्रतिपादन किया गया है; वह गुरु-परम्परा का अत्यन्त गूढ़ रहस्य है।

टिप्पणी -

प्रयत्न के द्वारा वर्णों का उच्चारण होता है। यह प्रयत्न व्याकरण शास्त्र के अनुसार दो प्रकार का है। (१) **आभ्यन्तर प्रयत्न** एवं **बाह्य प्रयत्न**। आभ्यन्तर प्रयत्न पांच प्रकार का है। १) स्पृष्ट, २) ईषत्-स्पृष्ट, ३) ईषत्-विवृत, ४) विवृत, ५) संवृत-आभ्यन्तर प्रयत्न के भेद हैं। प्रथम खण्ड के तृतीय श्लोक की टीका में इसका विस्तृत विवेचन है।

वाह्य-प्रयत्न एकादश प्रकार के हैं १) विवारः, २) संवार, ३) श्वास, ४) नाद, ५) घोष, ६) अघोष, ७) अल्प-प्राण, ८) महाप्रमाण, ९) उदात्त, १०) अनुदात्त एवं ११) स्वरित-नामक एकादश भेद वाह्य-प्रयत्न के हैं।

इस सूत्र में सिद्ध किया है कि निवृत्त्यात्मक-प्रवाह में प-वर्ग के प, फ, ब, भ वर्ण श, ष, स, ह वर्णों में परिणत हो जाते हैं। इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिये टीकाकार ने वर्णों के उच्चारण के बाह्य प्रयत्न का आश्रय लिया है। प्राण की न्यूनता एवं अधिकता के आधार पर वर्णों के द्वारा प्रतिपादित तत्त्वों का अभिव्यञ्जन होता है। प-वर्ग अल्प-प्राण है, पृथ्वी में कठिनत्व अधिक

होने के कारण प्राण के लिये अल्प स्थान है; अतः पकार पृथ्वी तत्त्व का द्योतक है। इसी आधार पर फकार महाप्राण, बकार नाद तथा भकार नाद एवं घोषवान है। अतः उत्तरोत्तर प्राण के प्रयोग के आधिक्य के कारण फ जल का प्रतिपादक, ब अग्नि का प्रतिपादक, भ वायु का प्रतिपादक है एवं म आकाश का प्रतिपादक है। इसी प्रकार श, ष, स, ह, पृथ्वी, जल, अग्नि एवं वायु के प्रतिपादक हैं; अतः निवृत्ति की ओर प्रवाह होने पर पृथ्वी आदि प-वर्ग द्वारा प्रतिपादित तत्त्व शुद्ध-विद्या आदि श, ष, स, ह ऊष्माण वर्णों द्वारा प्रतिपाद्य तत्त्व में परिणत हो जाते हैं।

दशमं सूत्रम्

बिन्दूदये विशति सर्ग इमं तथैव
सर्गोदये तथम सोऽपि पदे तदन्तः।
कः स्याद्धकार हृदिलश्च बकारगर्भे
बाह्ये तु चित्प्रकृतिसर्गमुखेविभक्ता।।१०।।

व्याख्या

इदानीं श-वर्गे कवर्गस्य देह प्रतिपादक लकारस्य शङ्का (सङ्कोच) त्यागरूपवर्णादर्शनात्। तद्दर्शनोपपत्तिमाह। बिन्दूदय इत्यादि। बिन्दूदये बिन्दुव्याप्तौ। इमं बिन्दु। पूर्वमेतत् व्यापकविसर्गो विशति। बिन्दावेकी भवतीत्यर्थः। पूर्वं बिन्दु गर्भादिव बहिर्विश्व सृष्टो विसर्गः पुनस्तमेव विशतीत्यर्थः। तथैव सर्गोदये विसर्ग व्याप्तौ तं विसर्गं अथानन्तरं सोऽपि बिन्दुरपि विशतीत्यर्थः। तत्तस्मात्कारणात् अन्तःपदे बिन्दु व्याप्ति स्थले। कः। जलादि भूतचतुष्टयप्रतिपादकेनपादिवर्णचतुष्टयेनात्त गर्भः। पृथिवौ प्रतिपादकः ककारोः हकार हृदिस्यात् तत्रान्तर्गतो भवतीत्यर्थः। स्वप्नस्याप्यान्तर्पदत्वात् तत्रापि विसर्ग प्रमातुर्लकारस्य गर्भे स्थितिमाह। ल श वकारगर्भ इति। लः लकारो वकारगर्भे च चकारात् हकारगर्भे च अन्तस्थ सङ्कोच त्यागरूपे श वर्गे च हकार गर्भे लकारान्तर्धानं भवतीत्यर्थः। विसर्गस्य बिन्दुसमावेशे तदेक रसत्वमेव। बिन्दोविसर्ग समावेशे विशेषमाह। वाह्येत्विति। बाह्ये विसर्ग व्याप्ति स्थले तु चिद्बिन्दुः प्रकृति सर्ग मुखे प्रकृति रूपस्य विसर्गस्यमुखे सम्मुखे तिष्ठन्नपि विभक्ता प्रकृतौ नान्तर्भवति। अपि तु विभक्त रूपेण दृश्यते। मकारो हि पकार रूपिण्याः

प्रकृतेश्च तत्समीपस्थितिसूचितस्यावहिर्मोक्षणस्य कर्तैव, तया नान्तर्धीयते। न तत्रैकरस्यात्स्वरूपहार्निं लभते। पृथिवी रूपस्य विसर्ग बिन्दुना बहिर्विसृष्टस्य न बिन्द्वैकरसीकरणं पवर्गरूपे बिन्दोर्दर्शनात्। असो विसर्ग व्याप्तौ न बिन्दु स्वरूपतो लोप इति भावः।।१०।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

क-वर्ग तथा लकार के सङ्कोच-त्याग के द्योतक वर्ण का श-वर्ग में स्थान नहीं है अतः इसकी प्राप्ति के लिये युक्ति का निरूपण करते हैं।

व्याख्या

बिन्दु के उदय होने पर इस में विसर्ग अन्तर्लीन अर्थात् एकाकार हो जाता है। प्रथम बिन्दु से ही विसर्ग का आविर्भाव होता है तथा विसर्ग में ही विलय हो जाता है। इसी प्रकार विसर्ग के उदय होने पर बिन्दु का विसर्ग में प्रवेश होता है। इस कारण से बिन्दु की व्याप्ति-दशा में जल आदि भूत चतुष्ट्य के प्रतिपादक पकार आदि वर्णचतुष्ट्य के गर्भ-गत पृथ्वी के प्रतिपादक ककार की हकार में परिणति हो जाती है।

स्वप्नावस्था भी आन्तर-पद होने के कारण यहाँ भी विसर्ग प्रमाता ल-कार का व-कार में लय होता है तथा व-कार का लय अन्तःस्थ वर्णो के सङ्कोच त्याग रूप श-वर्ग के अन्तर्गत ह-कार में होता है। बिन्दु के अन्तर्गत विसर्ग का एकरस अर्थात् तादात्म्य हो जाता है। किंतु विसर्ग के अंतर्गत विन्दु के समावेश में विशेषता रहती है।

वाह्य कक्षा में विसर्ग की व्याप्ति के अन्तर्गत बिन्दु का यद्यपि प्रकृति में समावेश होता है, तथापि यह समावेश पूर्ण नहीं है अपितु भेदरूप है।

यद्यपि म-कार की स्थिति प-कार से प्रतिपादित पृथ्वी के समीप है तथापि अन्तः अवस्था में म-कार मोक्षकर्ता है; इस कारण से विसर्ग के अन्तर्गत बिन्दु अन्तर्धान नहीं होता है तथा एकरस होकर अपने अस्तित्व को नहीं खोता है। पृथ्वी रूप विसर्ग की बिन्दु के बाहिर सृष्टि होती है अतः विन्दु का विसर्ग के साथ एक रसीकरण नहीं होता है तथा प-वर्ग के अन्तर्गत विन्दु रूप म-

कार का दर्शन होता है। अतएव विसर्ग व्याप्ति में विन्दु के स्वरूप का लोप नहीं होता है।

एकादशं सूत्रम्

अन्तःपदंभवतित्तच्चतुरङ्गमैक्या-
च्चित्त्चैत्ययोः करणसीम्न्यपि भावितैक्यम्।
पञ्चाङ्गकंभवतिबाह्यपदप्रकृत्यां
चिद्वह्निगर्भकुहुरादथनिर्गतायाम्।।११।।

व्याख्या

अथ विसर्गस्य विन्दुनिलयनान्तः पदस्य चतुरङ्गत्वं विसर्गबिन्दोरविलयेन बाह्य पदस्य पञ्चाङ्गत्वमिति प्रागुक्तमपि प्रमेयं प्रस्फुट प्रतिपत्तये पुनरुद्भासयति- अन्तरित्यादि। तत्तस्मात्कारणात् बिन्दौ विसर्ग निलयनरूपाद्धेतीः अन्तः पदं चतुरङ्गं भवति। कुत इत्याह। चिच्चैत्ययोरैक्यात्। चितश्चैवैकरसीकरणसामर्थ्य-सम्भवात् किंविधमन्तः पदं। करण सीमन्यपि भावितक्यं विसर्गः प्रमातुः सर्वव्यापिपदस्योपलक्षणेनचिन्मज्जनेत बहिर्भासमाने करणत्रयपदेऽपि विभावितचिदैक्यम्। विसर्गपदस्य कवर्गस्य हकार मज्जनेन उपलक्षणेन करणत्रयस्थानीय चवर्गटवर्गतवर्गसङ्कोच त्याग रूपाणां शषसनां हकारे निमज्जनमेवेति विभाव्यमित्यर्थः। तेषां यद्वहिस्फुरणेन शुद्धविद्यादिस्वरूपविवेचनं तद् हकारे निमज्जते। सत्येवेतिवेदितव्यम्। ततश्चामेदरूपंचित्यपदमेकाङ्गमेव शषसनांहकारनिमज्जनेनादर्शने शुद्धविद्या स्वरूपं न विज्ञायते इति। तद्विज्ञानाय हकारान्तार्गतानामेव तेषां बहिर्विभासनमिति वेदितव्यम्। अथ विसर्गस्पन्देचिद्वह्नि-गर्भकुहुरात्प्रकृत्यांविनिर्गतायां करणत्रयेण सहेत्यध्याहार्यम्। बाह्यपदं पञ्चाङ्गकंभवति। चैत्यस्य चित्यपदं बिनास्वरूपासिद्धेस्तत्रालुप्तेन चित्पदेन सहेत्यर्थः।।११।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

सुषुप्ति प्रकरण में बिन्दु को चतुरङ्ग-पद तथा विसर्ग को पञ्चाङ्ग-पद

प्रतिपादित किया गया है। यहाँ इसी सिद्धान्त को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। बिन्दु के अन्तर्गत विसर्ग का लोप हो जाता है अतः बिन्दु पद अ, इ, ऋ, लृ चार वर्णों से अभिव्यञ्जित है। विसर्ग-पद में बिन्दु का अस्तित्व पृथक् रहता है अतः अ, इ, उ, ऋ, ल वर्णों द्वारा विसर्ग-पद का प्रतिपादन किया गया है।

व्याख्या

बिन्दु व्याप्ति में सर्व-व्यापि विसर्ग पद के चित् में निमज्जन से बाह्य अवभासित कारण-त्रय अर्थात् अहङ्कार, बुद्धि तथा मन का भी चित् में ऐक्य हो जाता है। विसर्ग-पद के क-वर्ग का हकार में निमज्जन हो जाता है। अतः इस उपलक्षण के अनुसार करण-त्रय-स्थानीय च-वर्ग, ट-वर्ग एवं त-वर्ग के सङ्कोच-त्याग रूप श, ष, स का भी हकार में निमज्जन स्वीकार करना उचित है। करण-त्रय के वाह्य स्फुरण होने पर शुद्ध-विद्या आदि के स्वरूप का जो बाह्य विवेचन किया जाता है उसका अन्तः दशा में हकार में निमज्जन हो जाता है; ऐसा सिद्धान्त है। अभेद-रूप चित्-पद एकाङ्गी है तथा श, ष, स का हकार में लय हो जाने से अवभास नहीं होता है; अतएव शुद्ध-विद्या आदि कां ज्ञान अन्तर-दशा में नहीं होता है। अतः यहाँ सिद्ध होता है कि हकार के अन्तः में स्थित शुद्ध-विद्या आदि का ही वाह्य विसर्ग दशा में अवभास होता है। इस प्रकार विसर्ग-स्पन्द में चित्-अग्नि के गर्भ-कुहुर से प्रकृति के निर्गमन होने के पश्चात् करण त्रय का आविर्भाव होता है। अतएव बाह्य-पद पङ्चाङ्गक सिद्ध है क्योंकि विसर्ग की चित्-पद के बिना सिद्धि सम्भव नहीं है तथा चित् का पृथक् बोध विसर्गं में दृष्टि-गम्य है।

तात्पर्य यह कि विसर्ग में प्रकृति, अहङ्कार, बुद्धि तथा मन के साथ पाँचवाँ तत्त्व चित् का भी पृथक् अनुभव होता है अतः विसर्ग में चित् सहित पाँच अङ्ग हैं।

द्वादशं सूत्रम्

ज्ञानक्रियोन्मुख हकारमयाद्वयेच्छा
विश्रान्तिरन्तर्बहिर्मुखविश्रमात्मा।
कूटाक्षरात्मतनुरेष शिवः सुषुप्ति
विश्रान्तिरेव स विकल्पकलाल्पगन्धा।।१२।।

व्याख्या

इदानीं शक्तिरूपस्य हकारस्य स्वरूपं विविच्य व्युत्पादयन् एतदुत्तरपदस्य लकार क्षकार रूप कूटाक्षर प्रतिपाद्यास्य शिवतत्वस्य स्वरूपमवबोधयति-ज्ञानेत्यादि। ज्ञानक्रियोन्मुखहकारमयाद्वयेच्छाविश्रान्तिः सदाशिवेश्वरात्मक योर्ज्ञानक्रिययोर्विषये उन्मुखः। तदधिष्ठातृत्वादित्यर्थः हकारमयाद्वयेच्छा हकार स्वरूपाभेदेच्छा। हकार प्रतिपाद्यत्वे हकार स्वरूपत्वादभेदेच्छायामाचरितम्। सैवेच्छा विश्रान्तिंरूपत्वाद्विश्रान्तिः। अयमर्थः-येयमपरिच्छिन्न ज्ञानक्रियात्मक सदाशिवेश्वरे स्वरूपज्ञानक्रियाकवणाधिष्ठातृ ज्ञानक्रिययोः कूटस्थत्वलक्षणेन तदधिष्ठातृत्वेनेच्छाव्यपदेशविषया ज्ञानक्रिया-कूटस्थत्वस्यैवेइच्छा लक्षण-त्वादिच्छास्वरूपिणी शक्तितत्वमित्यागमकैरुद्‌घोष्यमाणा द्वैतस्पृष्टिहिताकार-प्रतिपाद्या महाविश्रान्तिः। सैवान्तः पदे अबहिर्मुखविश्रमात्मा प्रपञ्चानभिमुखा विश्रान्ति रूपा। सविकल्प कलाल्पगन्धः। सुषुप्तिविश्रान्तिरेव स्वरूपानुभवमात्र-विकल्पयुक्ता सुषुप्तिरेवः कूटाक्षरात्मतनुः लकार क्षकारोभयैक्यरूप कूटाक्षरात्मकनिजस्वरूपः। तत्प्रतिपाद्य इत्यर्थः। एष अपरोक्षानुभव गोचरः। शिवः शिवतत्वं भवतीति शेषः। जाग्रत्येव सम्भवन्ति सोमादिसाधनता-भाग्यवशात् स्वतः प्रवृत्ता वा काचित् सुषुप्तिविश्रान्तिरन्तर्मुखीचेच्छिव तत्वं भवति। सैव बहिर्मुखी चेच्छक्ति तत्वं भवतीति विवेकः।।१२।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

उपर्युक्त ग्यारहवें सूत्र में शक्ति-रूप हकार का विवेचन करने के पश्चात् उत्तरपद ल-कार तथा क्ष-कार कूटाक्षरों द्वारा प्रतिपादित शिव-तत्त्व का विवेचन करते हैं।

व्याख्या

प्रथम विश्रान्ति की परिभाषा करते हैं। ज्ञान एवं क्रिया की ओर उन्मुख ह-कारमय अद्वय इच्छा विश्रान्ति है। ह-कार अर्थात् शक्ति-तत्त्व सदाशिव एवं ईश्वर-तत्त्व का अधिष्ठाता है तथा ज्ञान एवं क्रिया क्रमशः सदाशिव एवं ईश्वरात्मक है अतः यहाँ ज्ञान क्रिया की ओर उन्मुख शक्ति रूप ह-कार को विश्रान्ति कहा गया है। अद्वय इच्छा विश्रान्ति रूप है, अतः इसको विश्रान्ति के नाम से ही सम्बोधित किया गया है।

इसका तात्पर्य है कि इच्छा-शक्ति ज्ञान एवं क्रिया के मध्य कूटस्थ है। इस कारण से अपरिच्छिन्न ज्ञान-क्रियात्मक सदाशिव एवं ईश्वर-तत्त्व में स्वरूप के ज्ञान, क्रिया एवं करण की अधिष्ठातृ इच्छा-शक्ति है जिसका आगम शास्त्र में द्वैत-स्पृष्टि से रहित अ-कार के द्वारा प्रतिपादन किया गया है। इस अद्वयात्मक इच्छा-शक्ति का नाम महाविश्रान्ति है। प्रपञ्च से पराङ्मुख यही इच्छा-शक्ति अन्त दशा में विश्रान्ति रूप प्रतिपादित की गई है।

अन्वय – "सविकल्पकलाल्पगंधा कूटाक्षरात्मतनुः सुषुप्तिविश्रांतिरेव शिव."

सूत्र के उत्तरार्ध में शिव का प्रतिपादन है। सविकल्प कला की गन्ध से युक्त अर्थात् स्वरूप के अनुभव मात्र विकल्प से युक्त सुषुप्ति-विश्रान्ति ही शिव-तत्त्व है, जिसके स्वरूप का प्रतिपादन एक रूप लकार एवं क्ष-कार कूटाक्षरों द्वारा होता है। अर्थात् सम्मिलित ल एवं क्ष वर्ण शिव के द्योतक है। जाग्रत्-अवस्था में सम्पादित सोम आदि साधनता अर्थात् भाग्यवश स्वतः प्रवृत्त कोई अन्तर्मुखी सुषुप्ति-विश्रान्ति अवस्था शिवत्व को प्राप्त करती है, एवं बहिर्मुख वही सुषुप्ति-विश्रान्ति अवस्था शक्ति-तत्त्व है।

त्रयोदशं सूत्रम्

नास्त्यस्तिवेत्त्युदित संशय जाग्रतीह-
सुप्तौ शिवे (भवति) जाग्रदभेदरूपम्।
ज्ञानक्रियात्मकतया प्रतिरूपभिन्न-
मेवं चतुर्विधमधिश्रित बीजमात्रम्।।१३।।

व्याख्या

अथान्तर्मुखजाग्रत्सुषुप्तिविश्रान्तिरूपस्य शिवस्य जडसुषुप्ति विश्रान्ति-निरूपायाः स्वरप्रतिपाद्यायाः शक्तेरिव जगत्कारणत्वेन तत्वजगद्बीज-स्थित्यौचित्यमिति तदवस्थानं कूटाक्षर रूपेण विभाव्यमानं व्युत्पादयति। नास्तीत्यादि। नास्त्यस्तिवेत्युदितसंशयजाग्रति नास्त्यस्तिवेत्युद्भूतसशयः। जाग्रत्यत्र हहि सुप्तौ अस्ति वा नास्तिवेति संशयगोचरेण निर्देशितायांसुषुप्तावित्यर्थः। शिवे तादृक् सुषुप्ति रूपे शिवे। अभेदरूपमपि अथेत्येवं भिन्नम् एवं सम्भूय चतुर्विध जगत् अधिश्रितबीजमात्रं बीजमात्रेणाधिश्रितं भवतीतिशेषः। अयमर्थः

स्वप्नरूपेऽन्तः पदे भेदज्ञानरूपं जाग्रद्रूपे बहिः पदे भेदक्रियारूपं, तथैव स्वप्न रूपेऽन्तःपदेऽभेदज्ञानरूपं जाग्रद्रूपे बहिः पदे भेदक्रियारूपमितिसंग्रहेण जगच्चतुर्विधम्। तदेव शिवतत्वे कूटाक्षर रूपेण बीजमात्रं तिष्ठतीति व्युत्पादितम्।।१३।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

जिस प्रकार स्वर द्वारा प्रतिपाद्य जड़-सुषुप्ति-विश्रांति रूप शक्ति-तत्त्व जगत् का कारण है, उसी प्रकार अन्तर्मुख जाग्रत्-सुषुप्ति विश्रांति रूप शिव भी जगत् का कारण होने से तत्त्वात्तमक जगत् का बीज है। इस सिद्धान्त को दर्शाने हेतु ही शिव को कूटाक्षर रूप कहा है।

व्याख्या

जाग्रदावस्था में यह संदेह होता है कि जगत् है अथवा नहीं है; इसी प्रकार सुषुप्ति में भी जगत् के नास्ति व अस्ति के संशय का उद्भव होता है। सुषुप्ति-विश्रान्ति रूप अभेद शिवावस्था में चतुर्विध भेद-रूप जगत् केवल बीज-रूप से आश्रित रहता है; इसका तात्पर्य है कि जगत् स्वप्नात्मक अन्तःपद में भेद ज्ञान रूप, जाग्रदात्मक बहिःपद में भेद-क्रिया रूप, स्वप्नात्मक अन्तःपद में अभेद-ज्ञान रूप एवं जाग्रदात्मक वहिःपद में अभेद-क्रिया रूप चार प्रकार का है। वही जगत् शिव-तत्त्व में कूटाक्षर के रूप में बीजमात्र अवशिष्ट रह जाता है।

चतुर्दशं सूत्रम्

ज्ञानं द्वयाद्वयमयं लसकाररूपं
तादृक् च कर्म क षकारमयंविदुस्तत्।
श्लिष्टं पुरः स्फुरित सद्वयकोटिलक्ष
रूपं परस्परगतं च समं च कूटम्।।१४।।

व्याख्या

इदानीं लकारसकारककारषकाररूप वर्णचतुष्ट्ये कादिस्पर्श कूटाक्षरस्य चतुर्विधजगद्बीजसंसृष्टिरूपत्वं व्युत्पादयति। ज्ञानमित्यादि। द्वयाद्वयमयं भेदा-

भेदात्मकं ज्ञानं लसकार रूपं भेदज्ञानं। पदान्तःस्थयवर्गे प्रकृति प्रतिपादको यो लकारस्तस्यैव तत्पदाधिष्ठातृत्वात्। तत्पदस्य ज्ञान पदत्वात्। ज्ञान प्रमातृत्वं मनःप्रतिपादकस्य लकारस्य तदव्याप्यत्वाभिमानदोषान्न ज्ञातृतोपत्तिः। तन्मूल-रूपस्य वकारस्य च तथा ज्ञेयस्थानीयस्य यकारस्य च ज्ञातृत्वं नाशङ्कनीयम्। ज्ञेयवर्गस्य गन्धादेः सर्वत्र पृथिव्याद्यङ्गत्वात्। प्रकृत्याकार पृथिवीरूपस्य लकारस्यान्तःपदे क्रियाप्रमातृशङ्का न समुचिता। अतो लकारस्य ज्ञातृत्वं निश्चितम्। श-वर्ग पदे अभेद ज्ञानत्वं सदाशिवात्मन सकारस्य निर्विवादम्। तादृग् द्वयाद्वयमयं कर्म। च कषकार रूपं ककार षकार रूपं भेद प्रकृयापदे स्पर्शस्यले ट-वर्गस्य क-वर्गव्याप्यत्वाभिभानदोषान्नकर्तृत्वम्। अपितु क-वर्गाधिष्ठातुः ककारस्य अभेद क्रिया पदे श-वर्गै ईश्वरात्मनष कारस्य कर्तृत्वं स्फुष्टम्। तदेतच्चतुष्कमिदं श्लिष्टं भेदज्ञानेन लकारेणाभेदज्ञानं सकारः। भेदक्रियया ककारेणभेदक्रिया षकारः। भेदाभेदयोरन्योन्यश्लिष्टता स्वभावात्। श्लेषे च पुरः स्फुरितसद्वय-कोटिप्रमायाः बलादिति भावः। श्लिष्टयोरक्षरद्विकयो सद्वयकोटिपुरस्फुरणे कीदृग् रूपमित्यत आह। लक्षरूपमिति। लकार सकारयोः श्लेष भेद रूपस्य लकारस्य पुरः स्फुरणे ल इति वर्णः स्यात्। ज्ञाने ज्ञानमेकरसी भवतीति। सकारस्य लकारे सामरस्यात् सकारयोगसंभावितोच्छूनभागो लकारी ल इति श्रूयते। ककारषकारयोः श्लेषे ककारस्य द्वैतरूपस्य पुरः स्फुरणे क्रियायां क्रिया न सामरस्यं लभत इति क्षकार स्यात्। एतत्कूट परस्परगतं क्रमात्परस्परेणव्याप्त। प्रथमं लकारेण सकारो व्याप्यते। एकत्संस्थानं भेद संसारबीजं अनन्तरं सकारेण लकारः। आ? एतत् संस्थानमभेदसंसार बीजम्। क्रियापदे च प्रथमं ककारेणषकारो व्याप्यते, अनन्तरं षकारेण ककारः। एतत्संस्थानकृत भेदाभेद बीजत्वं पूर्ववत्। समंच मध्यमपदे समव्याप्तिकत्वान्निष्यन्दम् सद्भेदाभेदोभय विमिश्रेणबीजम्। भेद संसार बीजभूतेन संस्थानेन दृश्यमानस्य कूटस्यैव संस्थानप्रकृया गुरूमुखात्पारंपर्यागत प्रतिभावद्भिरनु संधेया। शिवतत्त्वपुञ्जकस्य कूटस्यैकाक्षरत्वमेव व्यङ्गयस्य शिवतत्वस्यैक्यत्वात्। सास्नामित्वव्यङ्गयायाः जातेरिव शिव स्थूलरूपकूटाक्षरव्यङ्गयस्य शिवतत्त्वस्य न विश्रान्तिस्वरूपताभङ्ग इति वेदितव्यम्।।१४।।

भाषा टीका

सूत्रसार –

इस सूत्र में लकार, सकार, ककार एवं षकार को चतुर्विध जगत् का बीज प्रतिपादित किया गया है।

व्याख्या

भेद एवं अभेद ज्ञान के प्रतिपादक वर्ण क्रमश: लकार एवं सकार हैं।

भेद-ज्ञान-स्वप्नावस्था विकल्प की जननी है अत: इस अवस्था में भेद ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। स्वप्न का द्योतक य – वर्ग है। य – वर्ग के अन्त: में स्थित प्रकृति का प्रतिपादक लकार स्वप्न-पद का अधिष्ठाता है। स्वप्न भेद-ज्ञान की अवस्था है इस कारण से स्वप्न-पद का अधिष्ठाता लकार ज्ञान-प्रमाता सिद्ध है।

तृतीय खण्ड में प्रकृति के द्योतक लकार को ही मन के रूप में प्रतिपादित किया गया है किन्तु लकार में व्याप्यत्व के अभिमान के दोष के कारण ज्ञातृत्व का भान नहीं होता है। अर्थात् प्रमाता मन का स्वरूप सूक्ष्म, है किन्तु मन के प्रतिपादक लकारात्मक पृथ्वी का रूप विस्तृत है; अत: यद्यपि मन-रूप पृथ्वी में प्रमातृत्व है किन्तु व्याप्यत्व के कारण उसकी उपपत्ति नहीं होती है।

तृतीय खण्ड में लकार को वकार के अन्तर्लिन प्रतिपादित किया है किन्तु इस कारण वकार अथवा ज्ञेय स्थानीय य-कार में प्रमातृत्व की शङ्का उचित नहीं है। इसी प्रकार ज्ञेय वर्ग गन्ध आदि पृथ्वी का अङ्ग है तथापि इस कारण पृथ्वी रूप लकार के अन्त: पद में क्रियात्मक प्रमाता की शङ्का सम्भव नहीं है। अर्थात् लकार द्वारा प्रतिपादित प्रकृत ज्ञान-प्रमाता है क्रिया-प्रमाता नहीं।

अभेद-ज्ञान – इसी प्रकार सदाशिव पद का द्योतक सकार अभेद-ज्ञान का स्वरूप है। ज्ञान के सदृश कर्म भी भेदात्मक तथा अभेदात्मक है। क-कार भेद-क्रिया का तथा ष-कार अभेद-क्रिया का प्रतिपादक है। भेद-क्रिया के द्योतक स्पर्श वर्णो के अन्तर्गत क-वर्ग में ट-वर्ग व्याप्त है इस दोष के कारण ट-वर्ग में कर्तृत्व स्पष्ट नहीं है अपितु क-वर्ग के अधिष्ठाता श-वर्ग द्वारा प्रतिपादित अभेद-प्रक्रिया पद ईश्वर तत्त्व में कर्तृत्व स्पष्ट है। अर्थात् कर्मेन्द्रियों के द्योतक ट-वर्ग में कर्तृत्व की स्थिति होते हुए भी जडांश के कारण कर्तृत्व स्पष्ट नहीं है यह कर्तृत्व कर्मेन्द्रियों के अधिष्ठाता ईश्वर तत्त्व में स्पष्ट होता है।

उपर्युक्त प्रकार से चतुर्विध जगत् में भेद-ज्ञानात्मक लकार से अभेद-ज्ञानात्मक सकार का संश्लेश है तथा भेद-क्रियात्मक क-कार के अभेद-क्रियात्मक ष-कार का संश्लेष है। इस प्रकार अन्योन्य संश्लेश का कारण स्वभाव ही है।

इस प्रकार क एवं स तथा ट एवं ष के संश्लेष का द्वैतात्मक स्फुरण से पूर्व के स्वरूप का निरूपण सूत्र के परार्ध में करते हैं। द्वेत रूप में स्फुरित

होने से पूर्व ल-कार का स्वरूप ळ है। सकार एवं लकार के सामरस्य के कारण सकार के योग से सम्भावित उच्छून भावात्मक लकार का ळ स्वरूप होता है।

क-कार तथा ल-कार के श्लेष में द्वेत-स्फुरण से पूर्व द्वैत रूप क-कार का क्रिया में सामरस्य नहीं होता है अतः द्वैत-स्फुरण से पूर्व क-कार का स्वरूप क्ष है। अर्थात् संहारात्मक है। यह कूट क्रमशः एक दूसरे में व्याप्त हैं। प्रथम लकार से सकार व्याप्त होता है अतः यह संस्थान भेद संसार का बीज है। पश्चात् में सकार से लकार व्याप्त होता है अतः यह सकार अभेद-संसार का बीज है।

क्रिया पद में प्रथम क-कार से ष-कार व्याप्त होता है अतः क-कार भेद पद है इसके पश्चात् ष-कार से क-कार व्याप्त होता है अतः ष-कार अभेद-संसार का बीज है समं च कूट-सम पद अर्थात् मध्यम पद में व्याप्ति समान होती है अतः सम पद निस्पन्द है। भेदाभेद दोनों का मिश्रण होने से, क्षकार अक्षर को बीज रूप कहा गया। भेद-संसार का बीज होने के कारण दृश्यमान कूट की संस्थान प्रक्रिया का, परम्परा के अनुयायी प्रतिभावान साधकों को गुरुमुख से ज्ञान प्राप्त कर अनुसन्धान करना चाहिये।

शिवतत्त्व के ऐक्य के अर्थात् अद्वैत रूप के कारण शिवतत्व-पुञ्जक कूटात्मक क्षकार को एक अक्षर के रूप में प्रतिपादित किया है।

जिस प्रकार गौ का परिभाषा में गौ को सास्ना आदि से युक्त कहने से गोत्व-जाति का अभिव्यजन होता है उसी प्रकार स्थूल-रूप कूटाक्षर से अभिव्यञ्जित शिवतत्व की विश्रान्ति-रूपता का अभिव्यञ्जन क्षकार से होता है अर्थात् स्थूल-रूप कूटाक्षर को शिव-तत्व के बीज के रूप में अभिव्यञ्जक स्वीकार करने से शिवतत्व की विश्रान्ति-स्वरूपता भङ्ग नहीं होती है।

पञ्चदशं सूत्रम्

ज्ञानात्मजागर सुषुप्त्यवधीमकार-
कूटात्मकौ पशुशिवौ गुणकोणबिन्दोः।
शिलष्टौ वशादिचतुरस्रयुगान्वयोत्थ-
नागास्र रश्म्युदरगौ ननु सर्गबिन्दू।।१५।।

व्याख्या

इदानीं मकारादि क्षकारान्त दशाक्षर रूपस्यप्रमातृपदस्याष्टार-त्रिकोणबिन्दुचक्रेषु सन्निवेश व्युत्पादयति ज्ञानात्मेत्यादि। ज्ञानात्म जागर सुषुप्त्यवधी ज्ञानात्मनोर्जागरस्य सुषुप्तेश्च अवधी स्थानभूतौ अवधिस्थाने तिष्ठन्तावित्यर्थः। ज्ञानजागरोऽन्तस्थप्रतिपाद्यः स्वप्नः तस्यावधौ यकार प्रान्ते स्वप्नस्य प्रवृत्तिः प्रथमपदस्य जागृदाभिमुख्येन प्रवर्तमानत्वाद्वकारमारभ्य यकारे परिसमाप्तिः, तदनन्तर पदत्वान्मकारस्य स्वप्नावधिस्थानत्वम्। ज्ञान सुषुप्तिः शकार वर्ग (र्ण) प्रतिपाद्यनिर्विभेदजाग्रत्स्वप्नरूपं पदद्वयं तस्यावधौ हकारोत्तरभागे क्षकारः। निवृत्ति रूपाया ज्ञान सुषुप्तिः सुषुप्त्यभिमुखं प्रवर्तमानत्वाच्छकारमारभ्य हकारे परिसमाप्तिः तदनन्तरपदत्वात् क्षकारस्य ज्ञानसृप्त्यावधि स्थानत्वम्। एवं ज्ञान जागर ज्ञानसुषुप्त्यवधी मकार कूटात्मकौ मकार कूटाक्षर स्वरूपौ पशुशिवौ गुण कोण बिन्द्वौः त्रिकोणबिन्दुचक्रयोः श्लिष्टौ। त्रिकोण गर्भे बिन्दुः बिन्दु गर्भे त्रिकोण इति जीवशिवयोरन्योन्यव्याप्तिस्वभावत्वाच्छलेषः। भेदस्त्रैगुण्यरूपइति। त्रिगुणत्वावच्छिन्नस्य भेदप्रमातुर्जीवस्य त्रिकोण रूपता अभेदस्त्वेकरूप इत्यभेद प्रमातुः शिवत्स निर्गुणत्वोपलक्षण निष्कोण बिन्दुस्वरूपता ननु भेद प्रमातृत्वं प्रकृते पृथिव्या एवेति युज्यते। तत्र भेद पदे जीवस्य प्रमेयत्वमिति प्राक्प्रतिपादितम्। तत्कथमत्र भेदप्रमातृत्वं जीवस्य उच्यते अभेदप्रतिसिंहासनारोहश्चाप्यत्रैबोच्यत इति चेदुच्यते। प्रमातृत्वस्य अनुसन्धातृत्व लक्षणत्वात् चित्पद एव मुख्य वृत्योपपत्तिः। चैत्यपदेनुव्याप्तिमधिकृत्य गौण वृत्योपचार इति चैत्य प्रमातृत्वं जीवस्यैव। फलसमये अभेदपदीये व्यवहारे तु चैत्यस्यैवेति विवेकः। अतस्त्रिकोण विन्द्वोः श्लिष्टौ जीवशिवौ। वशादिचतुरस्त्रयुगान्वयोत्थनागास्रश्मियुदरगौ वकारादयः शकारादयश्च ,वर्णाः वशादयः। वशादिभिश्चतुरस्त्रयुग्मम्। वादिभिर्यान्तै-श्चतुभिर्वर्णैरिक चतुरस्त्रम्। शादिभिर्हान्तैश्चतुर्भिर्वर्णैरन्यच्चतुरस्त्रम्। तयोश्चतुर-स्त्रयोरन्वयः श्लेषः तेनोत्थमुद्भुतं यन्नाग्राश्रमष्टकोणं तदेव रश्मयः रश्मिचक्रम् क्षकारात्मनः शिवस्य शादि वर्ण निष्पन्न चतुरस्त्रं रश्मिचक्रम्। मकारात्मनो जीवस्यवादिवर्णनिष्पन्नं चतुरस्त्रं रश्मिचक्रं तयोश्चक्रयोर्यथाक्रममन्तर्गौ अधिष्ठा-तृत्वेन मध्यस्थितौ सर्गबिन्दू ननु विसर्गबिन्दुस्वरूपौ ननु त्रिकोणात्मनो जीवस्य विसर्ग रूपता बिन्दुचक्रात्मनः शिवस्य बिन्दुरूपतेति विवेकः।।१५।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

श्रीचक्र में प्रदर्शित अष्टार, त्रिकोण एवं बिन्दु के अन्तर्गत म-कार से क्ष-कार पर्यन्त दश अक्षरों से युक्त प्रमातृ-पद के समावेश का प्रतिपादन इस सूत्र में किया गया है।

व्याख्या

ज्ञानात्म-जागर अर्थात् स्वप्नावस्था की सीमा म-कार है तथा ज्ञान-सुषुप्ति की सीमा क्ष-कार है। म-कार जीव का (पशु) द्योतक तथा क्ष-कार शिव का द्योतक है। श्रीचक्र के अन्तर्गत त्रिकोण एवं बिन्दु के द्वारा मकारात्मक पशु एवं क्षकारात्मक शिव का संश्लिष्ट स्वरूप दर्शाया गया है।

सुषुप्ति से जाग्रत् की ओर प्रवर्तन होने पर प्रथम स्वप्न अवस्था का आविर्भाव होता है। अतः स्वप्न के प्रतिपादक अन्तस्थ वर्णों की व-कार से प्रारम्भ होकर य-कार में परिसमाप्ति है। विलोम दशा में य-कार के पश्चात् म-कार की स्थिति है। अतः म-कार स्वप्नावस्था की सीमा है।

इसी प्रकार अभेद-स्वप्न एवम् अभेद-जाग्रत् से युक्त निवृत्ति रूप सुषुप्ति अवस्था की परिसमाप्ति ह-कार में होती है। ह-कार के पश्चात् क्ष-कार का स्थान है अतः क्ष-कार ज्ञान-सुषुप्ति की सीमा है। अर्थात् जब जाग्रत् से सुषुप्ति की ओर प्रत्यावर्तन होता है तब तन्मात्र-रूप श-कार से प्रारम्भ होकर ह-कार में ज्ञान-सुषुप्ति की परिसमाप्ति होती है अतः ह-कार के अनन्तर स्थित क्ष-कार पद में ज्ञान-सुषुप्ति की सीमा निर्धारित है।

इस प्रकार श्रीचक्र में त्रिकोण एवम् बिन्दु द्वारा चित्रित, ज्ञान-जाग्रत् की सीमा म-कार स्वरूप जीव एवं ज्ञान-सुषुप्ति की सीमा क्ष-कार स्वरूप शिव का परस्पर एक-दूसरे से श्लेष है।

तात्पर्य यह है कि त्रिकोण के अन्तर्गत बिन्दु तथा बिन्दु के अन्तर्गत त्रिकोण स्थित हैं। जीव एवं शिव की स्वभावतया अन्योन्य व्याप्ति है अतः दोनों का एक-दूसरे से श्लेष सिद्ध है।

भेद का स्वरूप त्रिगुणात्मक है, तीनों गुणों का अभिव्यञ्जन श्रीचक्र में

त्रिकोण द्वारा किया गया है अतः त्रिकोण, त्रिगुणा-वच्छिन्न भेद-प्रमाता जीव का स्वरूप है। अभेद एकरूप है अतः निर्गुण होने के कारण अभेद-प्रमाता शिव का स्वरूप निष्कोण केवल बिन्दु मात्र है। पूर्व में प्रतिपादित किया गया है कि भेद-पद में जीव प्रमेय है क्योंकि प्रकृति ही भेद-प्रमाता सिद्ध होती है, जब जीव को यहाँ भेद-प्रमाता तथा अभेद पदारोही क्योंकर प्रतिपादित किया गया है?

इस प्रश्न के उत्तर में टीकाकार का तर्क है कि प्रमाता की परिभाषा अनुसन्धान-कर्ता है। अतः मुख्य वृत्ति की उपपत्ति चिद्पद ही है। अनुवृत्ति का अधिग्रहण कर चित् की चैत्यावस्था में गुणात्मक प्रवृत्ति केवल उपचार मात्र है। शिवत्व की ओर प्रत्यावर्तन में फल सिद्धि के समय चैत्य का ही चित् के साथ अभेद होता है, ऐसा सिद्धान्त है। अतः त्रिकोण एवं बिन्दु के रूप में प्रदर्शित जीव एव शिव एक-दूसरे में श्लिष्ट हैं। यह सिद्ध है।

श्रीचक्र के अन्तर्गत दो चतुरस्रों का चित्रण है। एक चतुरस्र व, ल, र, य अन्तस्थ वर्णों से निष्पन्न है तथा दूसरे चतुरस्र का उद्भव श, ष, स, ह वर्णों से है। इन दोनों चतुरस्रों के श्लेष से अष्टकोण का प्रादुर्भाव दर्शाया गया है जिसके अन्तर्गत अधिष्ठाता होने के कारण विसर्ग एवं विन्दु की स्थिति है। शादि वर्णों से निष्पन्न चतुरस्र क्षकारात्मक शिव का रश्मि चक्र है तथा वादि वर्णों से निष्पन्न चतुरस्र मकारावबोधित जीव का रश्मि-चक्र है। इन दोनों चतुरस्रों के अन्तर्गत अधिष्ठाता होने के कारण विन्दु एवं विसर्ग का चित्रण है; अतएव सिद्ध है कि शिव बिन्दु-रूप हैं तथा जीव विसर्ग-रूप है।

टिप्पणीं -

काम-कला-विलास में अष्ट कोण को श, ष, स तथा प-वर्गमय प्रतिपादित किया गया है : "श ष स पवर्ग मयं तद्वसुकोणं" किन्तु शुद्ध मत प्रस्तुत सूत्रकार का ही प्रतीत होता है प वर्ग का चक्र के बाह्यतः स्थित चतुरस्र में सन्निवेश युक्ति युक्त है।

- श्लोक २९ दृष्टव्य – पृ. १६ – खण्ड ४ मा. च. वि.

षोडषं सूत्रम्

ज्ञानक्रियात्मक सुषुप्ति विबोधमध्य
संस्थौक्षमावुभयपक्षगबिन्दुसगौं।
सव्यापकौ तदुभयस्यतदङ्गिभूतौ
जागृत्सुषुप्तिसमवायपदेनशक्तौ।।१६।।

व्याख्या

इदानीं क्षकार मकारात्मनोः शिवजीवयोर्ज्ञानक्रियासुषुप्त्योर्मध्यपदे ज्ञान-क्रियाजागरयोर्मध्यपदे च यथाक्रमं सन्निवेशौचित्यंव्युत्पादयति ज्ञानक्रियेत्यादि। ज्ञानक्रियात्मक सुषुप्तिविबोधमध्य संस्थौ ज्ञानात्मिका सुषुप्तिरभेद जाग्रत्स्वप्नरूपा शवर्गप्रतिपाद्याक्रियात्मिकाभेद सुषुप्तिः स्वरेषु बिन्दुभागप्रतिपाद्या तयोः सुषुप्त्योर्मध्ये क्षकारात्मनः शिवस्य संस्थानं ज्ञानात्मको विबोधो जागरोऽन्तस्थप्रतिपाद्यो भेदस्वप्नः क्रियात्मको विबोधः स्पर्श प्रतिपाद्यो जागरः। तयोर्मध्यभागे मकारात्मनः जीवस्य सन्निवेशः। ज्ञानविभेदो भेद सुषुप्तेरप्युपलक्षणम्। अभेद जाग्रत् स्वप्नरूपायाः पूर्वकोटेरभेद सुषुप्तेरुदर-कोटिमध्ये यदा शिवस्यसन्निवेशस्तदा भेद सुषुप्ति ज्ञानविबोधात्मिका याः पूर्व कोटेः क्रिया विबोध रूपायाः उत्तर कोटिमध्ये जीवस्य सन्निवेश इति वेदितव्यम्।

एव निरूपित सन्निवेशस्थानौ क्षकारमकारात्मकौ शिवजीवौ उभयपक्षगबिन्दुविसर्गौ ज्ञानक्रिया सुषुप्तिलक्षणोभयपक्षगस्तद्व्यापकस्तदु-भयाधिष्ठाता। वैन्दवः क्षकारः भेद सुषुप्तिसहितज्ञानजागरकेवलक्रियाजागर लक्षणोभयपक्षव्यापकस्तदधिष्ठाताव्यापकोमकारः। एवं सुषुप्तिरूपोभय पक्षबैन्दवसुषुप्तिसहितजागररूपोभयपक्षव्यापकौ अतएव तदङ्गिभूतौ। निवृत्तिरूपायाः द्विविधायाः सुषुप्तेः प्रवृत्तिरूपस्य भेदसुषुप्तिसहितस्य द्विविधस्य जागरस्याधिष्ठातृत्व सूचकेन मध्यसन्निवेशन निवृत्तिरूपयोः अभेद पदयोरङ्गिभूतौ। जाग्रत्स्वप्न सुषुप्ति समवायपदे जाग्रत्सुषुप्त्योर्यः समवायो मिश्रणं तत्पदे अन्तस्थोष्म वर्गयोः खलु जाग्रत्सुषुप्त्योः समस्तयोर्नतु व्यस्तयोः समवायः अन्तस्थ पदे च जाग्रत्सुषुप्त्योः समवाय ईषत्स्पृष्टताविषयत्वात्ऊष्मपदे च जाग्रत्सुषुप्तयोः समवायः। तच्छलेषात्तस्यैषद्विवृतता विषयत्वात्। अतो व्यापकवर्गा दशाक्षर रूपस्वरस्पर्शदशयोर्व्यापिका अतएव तस्यव्यापक वर्गसंज्ञा। तत्र मध्यपदेपक्षद्वयव्यापकयो शिवजीवयोः मध्यपदोचितयोः सन्निवेशः सोपपत्तिक इति विवेकः।।१६।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

इस सूत्र में सिद्ध किया है कि ज्ञान-सुषुप्ति एवं क्रियासुषुप्ति के मध्य में क्षकारात्मक शिव की स्थिति है तथा ज्ञान-जागर एवं क्रिया-जागर के मध्य मकारात्मक जीव की स्थिति है।

व्याख्या

ज्ञानात्मक सुषुप्ति के अन्तर्गत जाग्रत् एवं स्वप्न की अभेदात्मक स्थिति होती है, जिसका अभिव्यञ्जन शवर्ग द्वारा होता है। क्रियात्मक भेद-सुषुप्ति का अभिव्यञ्जन स्वरान्तर्गत बिन्दु-भाग के द्वारा होता है। इस प्रकार निरूपित अभेद-सुषुप्ति एवं भेद-सुषुप्ति के मध्य क्षकारावबोधित शिव की स्थिति है।

ज्ञानात्मक-विबोध का अर्थ है अन्तःस्थ द्वारा अभिव्यञ्जित भेद-स्वप्न तथा क्रियात्मक-विबोध का अर्थ है स्पर्श-वर्ग के द्वारा अभिव्यञ्जित जाग्रत्। इस प्रकार निरूपित भेद-स्वप्न तथा भेद-जाग्रत् के मध्य मकारात्मक जीव की स्थिति है।

शिव-जीवात्मक क्षकार, मकार की स्थिति के सम्बन्ध में अन्य विकल्प भी है। ज्ञान-विभेद भेद-सुषुप्ति का उपलक्षण भी है, अतः भेद-सुषुप्ति एवं अभेद-सुषुप्ति के मध्य जब शिव की स्थिति निरूपित की जाती है तब ज्ञान-विबोधात्मक भेद-सुषुप्ति एवं क्रियाविबोधात्मक जाग्रत् के मध्य जीव की स्थिति का निरूपण होता है।

इस प्रकार क्षकारात्मक शिव एवं मकारात्मक जीव, जिनके सन्निवेश का उपर्युक्त स्थान निरूपित किया गया है, उभय पक्ष में व्याप्त विन्दु एवं विसर्ग हैं। अर्थात् ज्ञान-सुषुप्ति एवं क्रिया-सुषुप्ति के लक्षण के अनुसार उभय पक्षों में व्यापक वैन्दव क्षकार अधिष्ठाता है। भेद-सुषुप्ति सहित ज्ञान-जागर क्रिया जाग्रत् लक्षणों से युक्त है अतः उभय पक्षों में व्यापक विसर्गात्मक म-कार इसका अधिष्ठाता है।

इस प्रकार बिन्दु सुषुप्ति-रूप उभय पक्षों में व्यापक है अतः बिन्दु उभय पक्षों का अङ्गी है, तथा सुषुप्ति सहित जागर रूप उभय पक्षों में विसर्ग व्यापक है; अतः विसर्ग उभय-पक्षों का अङ्गी है। अधिष्ठाता के रूप में बिन्दु, विसर्ग को निवृत्ति रूप द्विविधा सुषुप्ति एवं प्रवुति रूप भेद-सुषुप्ति सहित ज्ञान-जागर

के मध्य में सन्निविष्ट प्रतिपादित किया गया है, इससे स्पष्ट है कि निवृत्ति-प्रवृत्ति रूप अभेद पद के अङ्गी भी बिन्दु एव विसर्ग ही हैं।

जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्था त्रय के समवाय (मिश्र) पद में जाग्रत्-सुषुप्ति का अन्तःस्थ एवं ऊष्म वर्गों के साथ समष्टि रूप में समवाय है न कि व्यष्टि रूप में। अन्तस्थ पद में जाग्रत्-सुषुप्ति का समवाय ईषत्-स्पृष्टा के कारण है। तथा ऊष्म पद में ईषत्-विवृत्ति का विषय होने से श्लेश के वश जाग्रत् एवं सुषुप्ति का समवाय है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि जाग्रत् एवं सुषुप्ति के अवबोधक स्वर एवं स्पर्श वर्ग अन्तःस्थ एवं ऊष्माण वर्गों में व्यापक हैं। अतः मकार से क्षकार पर्यन्त दश वर्णों का नाम व्यापक वर्ग है। इस कारण यहाँ श्रीचक्र में स्वर एवं स्पर्श उभय पक्षों में व्यापक शिव जीव को अर्थात् क्षकार से अवबोधित शिव एवं मकार से अवबोधित जीव को मध्य पद में सन्निविष्ट करना युक्ति युक्त है।

सप्तदशं सूत्रम्

सङ्कोच पूर्ति परसीमपदोभयार्था
श्रीचक्रमध्यनिलया त्रिपुरेश्वरीसा।
त्रेधा विसर्गपदमेक विधं पदं च
बिन्दोस्तुरीयमिति बाहुचतुष्टयाढ्या।।१७।।

व्याख्या

इदानीं दशारयुग्म चतुर्दशार व्यापकस्य अष्टारात्मनो मध्य चक्रस्य अधिष्ठातृत्वेन जीवशिवात्मकम-कारक्ष-कारसामरस्यमेव सर्वचक्राधिष्ठातृ भूतायाः मध्य चक्र निलयायास्त्रिपुरेश्वर्याः स्वरूपमिति व्युत्पादयति। सङ्कोचेत्यादि सङ्कोचपूर्ति परसीम पदोभयर्था। सङ्कोचस्य सङ्कोच भावस्य पूर्ते पूर्ण भावस्य यत्परसीम पदं परमावधिस्थानं जाग्रदात्मकदशारयुग्मरूपं सुषुप्त्यात्मकं चतुर्दशार रूपं च तदुभयोभयार्था। श्रीचक्र मध्य निलया प्रमेय प्रमाण प्रमातृ लक्षण पुरत्रयात्मनः श्रीचक्रस्य मध्यं स्वप्नात्मकमष्टाररूपं प्रमातृपुरं तदेव निलयः सन्निवेशस्थानं यस्याः सा त्रिपुरेश्वरी अनेन म-कार क्षकारयोरष्टारा-धिष्ठातृत्वादुभय सामरस्यमेव त्रिपुरेश्वरी स्वरूपमिति प्रतिबोधितः। अथ त्रिपुरेश्वर्याः सुषुप्ति स्वप्न जागर तुर्य लक्षण सकल चक्रार्थ स्वरूपिण्याः

दशाचतुष्टयमेवाङ्ग चतुष्टयमिति तद् विभागमाहत्रिदेत्यादि। त्रिधा विध विसर्गपदं भेदपदं भेदस्तु सुषुप्तिभेदस्वप्नभेद, जागर रूप, बिन्दोरेक विध पदं तुर्यरूपम्। अत्र च यद्यपि अभेद जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिरूपेण त्रैविध्यं सम्भवति तथापि तस्य त्रैविध्यस्य भेद प्रतियोगित्वोपाधिवशात् स्फुरत्ता न तु पारमार्थेनेति तुर्यस्याभेद-पदस्यैवेक विधमेवेति। बाहुचतुष्टयाढया इत्युक्त दशाचतुष्टयोपलक्षणेन बाहुचतुष्टयेन आढ्यायाः सम्पन्नायाः त्रिपुरेश्वर्याः साम्प्रदायिको योऽयं बाहुचतुष्टय। संकेत सोऽयं दशा दशाचतुष्टयांगत्वोपलक्षण न तु पारमार्थिक इति सद्गुरुकटाक्षक्षयित सर्वसंशयस्य भाग्यवतो जीवनस्य एक वेद्यं महारहस्यमिति साम्प्रदायिक प्रवादः।।१७।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

दशार-युग्म एवं चतुर्दशार से व्यापक, अष्टारात्मक मध्य चक्र के अधिष्ठाता होने के कारण म-कार एवं क्ष-कार का सामरस्य, सम्पूर्ण श्रीचक्र की अधिष्टातृ-भूत, मध्य-चक्रस्थ, त्रिपुर-सुन्दरी का स्वरूप है, जिसका प्रतिपादन इस सूत्र में किया गया है।

व्याख्या

जाग्रदात्मक दशार-युग्म सङ्कोच भाव की चरम सीमा, एवं सुषुप्त्यात्मक चतुर्दशार पूर्ण भाव की पर-सीमा है। उभय चक्रों की अधिष्ठातृ त्रिपुरसुन्दरी हैं। श्रीचक्र के मध्य में त्रिपुरसुन्दरी का सन्निवेश स्थान है। श्रीचक्र के प्रमाण, प्रमेय, प्रमाता नामक तीन पुर हैं, जिसके मध्य में स्वप्नात्मक अष्टार रूप चक्र है जो प्रमातृ पुर के नाम से सम्बोधित होता है। यह प्रमातृ पुर त्रिपुरसुन्दरी का निलय है। इसका तात्पर्य है कि अष्टार रूप प्रमातृ पुर के अधिष्ठाता होने के कारण म-कार एवं क्ष-कार का सामरस्य ही त्रिपुर सुन्दरी का स्वरूप है।

सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत् एवं तुरीय लक्षण से लक्षित सकल चक्रार्थ स्वरूपिणी त्रिपुरसुन्दरी की चार दशाऐं ही उसके चार अङ्ग हैं। विसर्ग पद के, सुषुप्ति-स्वप्न-जाग्रत् तीन भेद हैं तथा बिन्दू का तुर्य नामक केवल एक भेद है। बिन्दु के भी, अभेद जाग्रत् स्वप्न-सुषुप्ति रूप तीन भेद हो सकते हैं; तथापि इन त्रिविध भेदों का स्फुरण इस कारण होता कि तुर्य भेद का प्रतियोगी है

अतः तुर्य के यह त्रिविध भेद पारमार्थिक नहीं हैं। इस प्रकार अभेद तुर्य केवल एक प्रकार का ही है।

सम्प्रदाय के अनुसार त्रिपुरसुन्दरी को चार बाहुओं से युक्त प्रतिपादित किया गया है, किन्तु यह दशा चतुष्टय ही देवी के अङ्ग हैं अतः बाहु की कल्पना उपलक्षण मात्र है पारमार्थिक नहीं है। यह रहस्य केवल वही जान सकते हैं जिनके समस्त संशय गुरु की कृपा से नष्ट हो गये हैं।

अष्टादशं सूत्रम्

सौषुप्त जाग्रदवहिः पद जागरेषु
तोयक्षमानिलमयेष्वकलात्मशक्त्या
आत्ते चवर्ग यमयस्वगुणेक्षुचाप
पुष्पेषुपाशनिगृहीतचितात्रिवाहुः।।१८।।

व्याख्या

तथैवमेव बाहुचतुष्टयसंकेतमायुद्धचतुष्टसंकेतेन सह प्रस्फुटं व्युत्पादयति। सौषुप्तेत्यादि। सौषुप्तं सुषुप्तिः जाग्रज्जागरः अबहिःपद जागरस्वप्नः सुषुप्ति जागरस्वप्नेषु तोयक्षमानिलमयेषु जलपृथिवीरूपेषु सुषुप्तिर्जडत्वाज्जलरूपा। जाग्रत्सङ्कोच रूपत्वेन कठिनत्वात्पृथिवीरूपम्। स्वप्नोवायु पर्यायमनोविलासत्वा-द्वायुरूपः। क्रमेणैतासु दशासु अ कलात्मशक्त्या अकारककारलकाररूपया शक्त्या। चैत्यात्मिकया पृथ्वीरूपेति भावः। पृथिव्या एवात्यन्त कठिनस्वरूपायाः परम चैत्यत्वात् किं बिधया शक्त्या। आत्ते चवर्ग यमयस्वगुणेक्षुचापपुष्पेषु-पाशनिगृहीतचितासुषुप्तिजाग्रत्स्वप्नेषु क्रमेणआत्तैः- पर्रिग्रहीतैः इकारचवर्ग-यकारमयैः स्वगुणैः स्वकीयधर्मैः भूतपञ्चकाधिष्ठातृभूतायाः पृथिव्याः शब्दादिपञ्चकं खलु धर्मरूपम्, नियमेन तदाश्रितत्वात्। एतैरेव शब्दादिभिः सुप्त्यादिदशात्रये प्राप्तौल्वण्यतारतम्यमयै अत एव सुषुप्ताविक्षुचापमिति सङ्केतितैः जलमयत्वेन मधुरत्वाच्च जीवस्वरूपावर्जकत्वाच्च जाग्रति प्रबुद्धभेदैः प्रस्फुट पञ्चरूपैः वशीकरणमात्र-व्यापारवत्ता कुसुमवाणा इति सङ्केतितैः स्वप्ने किञ्चिदुच्छूनदशायां वायुरूपत्वाद् वात्यावद् भ्रामणव्यापारेण भेदाभेदभ्रान्तिजननेन पाश इति सङ्केतितैः एवं इकार चवर्गयकारमयैः प्रतिपाद्याः शब्दादया एवइक्षु चाप पुष्पबाण पाशत्वेन सङ्केतिताः, तैरेवंभूतैः साधनैर्निग्रहीता बद्धा आवृता

चित्जीवस्वरूपिणी चितिर्यंयातया पृथिव्या शक्त्या त्रिबाहुः बाहुत्रयवती एवं चैत्यात्मिकतया शक्त्यैव सुप्त्यादि दशात्रयाधिष्ठातृ त्रिपुरेश्वर्याः बाहुत्रयां तदाश्रितं शब्दादिकपञ्चकमेव तत्तद्दशाव्यवस्थितस्वरूपविशेषं सत् इक्षुचापाद्यायुधत्रयमिति महोपदेशः।।१८।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

त्रिपुर-सुन्दरी के चार बाहुओं के संकेत एवं आयुधों के संकेत का विस्तृत विवेचन इस सूत्र का विषय है। त्रिपुरसुन्दरी के सुषुप्ति, जाग्रत्, स्वप्न नामक तीन बाहु हैं, जिनके क्रमशः इक्षु-चाप पुष्प-बाण एवं पाश तीन आयुध हैं। बाहुओं एवं आयुधों का युक्ति युक्त निरूपण यहाँ करते हैं।

व्याख्या

जडत्व के कारण सुषुप्ति जल रूपा है। संकोच रूप होने से जाग्रत् में कठिनत्व है अतः यह पृथ्वी रूप है। वायु के पर्यायवाची मन का विलास मात्र होने से स्वप्न वायु का रूप है।

सुषुप्ति आदि तीन दशाओं में क्रम से अ क ल आत्मक शक्ति के द्वारा चिति स्वयं के गुणों से उद्भूत इक्षु-चाप, पुष्प-बाण, एवं पाश रूप आयुधों को धारण कर लेती है। अकार, ककार एवं लकार अर्थात् अकल शक्ति चैत्यात्मिका अर्थात् पृथ्वी[1] रूपा है। परम चैत्यत्व के कारण पृथ्वी का काठिन्य रूप होता है; जिसमें इकार चवर्ग एवं यकार[2] द्वारा संकेतित गुणों अर्थात् जल, पञ्च तन्मात्राओं एवं वायु का अन्तर्भाव रहता है। शब्द आदि पञ्च तन्मात्राऐं भूतपञ्चंक की अधिष्ठातृ भूत पृथ्वी के आश्रित रहते हैं। अतः यह शब्दादि पञ्चक पृथ्वी के धर्म हैं। सुप्ति आदि दशा त्रय में शब्द आदि धर्मों के औलवण्य अर्थात् तारतम्य से इक्षु-चाप आदि का संकेत निरूपित किया गया है जिसको स्पष्ट करते हैं।

सुषुप्ति को जल रूप प्रतिपादित किया गया है, जल का गुण माधुर्य है अतः सुषुप्ति में माधुर्य गुण के कारण इक्षु-चाप का संकेत किया गया है।

टिप्पणी – (१) अकार ककार एवं लकार पृथ्वी के बोधक हैं।
(२) इ-कार का संकोच-स्वरूप च वर्ग एवं य-कार है। (खण्ड ४ सूत्र २)

जाग्रत अवस्था जीव की आवर्जक है, इस दशा में प्रपञ्च का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है, जिस से जीव मोहित होता है। अतएव जाग्रत् दशा को, वशीकरणमात्र व्यापार के कारण, कुसुम-वाण से संकेत किया है।

स्वप्न दशा उच्छूनावस्था है अर्थात् इस दशा में विकल्प की सृष्टि होती है अतएव यह वायु रूप है, अतः इस दशा में वायु के समान भ्रामण व्यापार होता है जिससे भेदाभेद भ्रान्ति की उत्पत्ति होती है जो जीव के बन्धन का कारण है। पाश बन्धन का द्योतक है अतः स्वप्न दशा का पाश से संकेत किया है।

इस प्रकार इकार चवर्ग, यकार द्वारा प्रतिपाद्य शब्दादि का ही इक्षु-चाप, पुष्प-वाण, पाश नाम से संकेत किया है। एवं भूत साधनों से आवृत चित् अर्थात् जीव स्वरूपिणी चिति को पृथ्वी रूपा शक्ति के द्वारा बाहु त्रय से युक्त निरूपित किया गया है। तथा इसी प्रकार चैत्यात्मिका शक्ति से, सुप्ति आदि दशात्रय की अधिष्ठातृ, त्रिपुरेश्वरी को बाहु त्रय से युक्त निरूपित किया है।

चैत्यात्मिका शक्ति के आश्रित शब्द आदि पञ्चक ही तत् तत् दशाओं में व्यवस्थित स्वरूप विशेष निरूपित हैं, इस कारण इक्षु-चाप आदि को आयुध रूप में प्रस्तुत किया गया है।

ऊनविंशति सूत्रम्

तुर्येऽग्निधाम्निहचिता ससृणिप्रणुन्न
चैत्यातिपश्विभजडत्वरुजैकबाहुः।
एवं चतुर्भुज विभाव्य चतुर्दशाङ्गा
क्ष्मात्माङ्गिनी जयति मध्यपदेऽति तुर्या।।१९।।

व्याख्या

एवं बन्धकं बाहुत्रयं तदायुध सहितं व्युत्पाद्य मोचकं चतुर्थं बाहुं तदायुधेनसह व्युत्पादयति। तुर्येत्यादि। अग्निधाम्नि अग्नि स्वरूपे चिद्व्याप्तिस्था नादिति भावः। तुर्ये चतुर्दशायां पारिशेषा तुर्यमिति। तमा (द) काश स्वरूप मिति वेदितव्यम्। हचिता। हकार प्रतिपाद्य चिता ससृणीत्यादि सकार रूपेण सृणिना अङ्कुशेन प्रणुन्नः चैत्यमेवाति पशुर्महापशुः। अतएव महापशुत्वादिभो गजः। तस्य

जडत्वं चिद् व्यतिरेकेण स्फुरणं तदेव रुक् रोगः ययातयेति हचिद्विशेषणमेतत्। यथा महापशुर्गजः खल्वङ्कुशेन बोध्यते चैत्यमपि तथा सकार रूपेण सदाशिव विमर्शेन बोध्यते। चिदेक रूप्ययतां प्रात्यत इति सकारस्याङ्कुश सङ्केतोपपत्तिः। अभेद विमर्शः सकारो हकारात्मिकायाः सवित् शक्तया अङ्गत्वाद्धर्म इति तदायुधत्वं तस्य एव सकाराङ्कुशभृता ह-साकार शक्तया एकबाहुः एकबाहुमती। एवं चतुर्भुजं विभाव्य चतुर्दशाङ्गा चतुर्भुजैर्विभाव्यानि चतस्रो दशाएवाङ्गानि यस्याः सा क्ष्मात्माङ्गिनी। क्षकार मकार संसृष्टि रूपा अङ्गिनी क्षकार मकाराभ्यामेव दशाचतुष्टयमधिष्ठितमिति। तदुभय संसृष्टिरङ्गित्वं त्रिपुरेश्वर्याः प्राण स्वरूपतेति सभ्यगुपपत्तिः। निर्विकल्पपदस्य तुरीयस्य माध्यमिकत्वेनाधिष्ठातृतया क्षकारो बीजभूतः। विकल्प पदस्य सुषुप्त्यादि दशा त्रयात्मनो माध्यमिकत्वेन मकारो बीजभूतः तदुभय संसृष्टिरेव सर्वमूलत्वात्तुर्यातीत स्वभाव इति समुपदिशति। मध्यपदे तुर्येति। एतस्यैव पदस्य सर्वोत्कृष्टता जयतीति शब्देनोन्मीलिता।।११।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

बन्धकारिणी तीन भुजाओं का आयुधों सहित निरूपण करने के पश्चात् मोक्ष दातृ चतुर्थ भुजा का प्रतिपादन करते हैं।

व्याख्या

चित् व्याप्ति का स्थान होने के कारण तुर्य अग्नि स्वरूप है। अग्नि रूप तुर्य दशा में ह-कार द्वारा प्रतिपादित चित् तत्त्व स-कार रूप अङ्कुश से युक्त है। यहाँ चैत्य (जीव) की उपमा गज से की गई है। महापशु रूप चैत्य में जडत्व के कारण चित् का स्फुरण नहीं होता है इसी को महारोग कहा गया है। जिस प्रकार महापशु गज को बोध कराने के लिये अङ्कुश की आवश्यकता होती है उसी प्रकार महापशु रूप चैत्य (जीव) को बोध कराने के हेतु स-कार रूप सदाशिवात्मक विमर्श की आवश्यकता होती है। अर्थात् सदाशिव तत्त्व के द्वारा चैत्य की चित् से एकाकारता सम्पन्न होती है। अतः स-कार रूप सदाशिवात्मक विमर्श की आवश्यकता होती है। अर्थात् सदाशिव तत्त्व के द्वारा चैत्य की चित् से एकाकारता सम्पन्न होती है। अतः स-कार का अङ्कुश के रूप में संकेत है अभेद-विमर्श रूप स-कार हकारात्मिका (अर्थात् ह-कार से अवबोधित) संवित्

शक्ति का अङ्ग हैं। इस कारण स-कार शक्ति के चौथे बाहु के आयुध के रूप में कल्पित है।

चार भुजाओं में विभाजित चार दशाऐं ही जिसके अङ्ग हैं वह त्रिपुरेश्वरी क्ष्मात्माङ्गिनी भी कही जाती है। इसका अर्थ है कि त्रिपुरेश्वरी क्ष-कार एवं म-कार की संसृष्टि रूपा है अर्थात् क्ष-कार म-कार से सुप्ति आदि दशा चतुष्ट्य अधिष्ठित हैं। तात्पर्य यह कि क्ष-कार–म-कार की संसृष्टि ही त्रिपुरेश्वरी का अङ्गित्व है अर्थात् प्राण-स्वरूपता है।

निर्विकल्प तुरीय पद के मध्य में स्थित होने के कारण क्षकार अधिष्ठाता है अतः इसको बीज कहा है। सुप्ति आदि दशा त्रयात्मक विकल्प पद के मध्य स्थित होने से म-कार को बीज कहा है। अतः सब दशाओं का मूल होने से क्ष-कार म-कार की संसृष्टि ही तुर्यातीत स्वभाव है। सूत्र में प्रयुक्त जय शब्द से इसी पद की सर्वोत्कृष्टता प्रदर्शित की गई है।

विंशति सूत्रम्

सुप्तिप्रभृत्युदित चैत्य विजृम्भितस्य
जाग्रत्पदप्रभृति चिद्विनिमज्जनं यत्।
तुर्यं पदं च खलु तत्रसुषुप्तिभागो
यश्चिन्मयः शिववपुस्तदतीवतुर्यम्।।२०।।

व्याख्या

ननु पञ्चभूतानिपञ्चाम्नायाः देवस्य पञ्चमुखानीति दशाभिरपिपञ्चमिर्भवितव्यम्। सुषुप्त्यादिभिः पञ्चभिर्दशाभिरङ्गैरूपलक्षितस्तत्सर्वमयादि तदन्यो भवितुमर्हति। तत्कथं तुर्यातीतस्याङ्गित्वमुक्तमित्यत्राह सुप्तिप्रमृतीति।

सुप्तिदशामारभ्य। उदितस्य चैत्यविजृम्भितस्य जाग्रत्पदप्रभुति जाग्रत्पदमारभ्य यच्चिद्विनिमज्जनं चिन्मयतावभासः। तत्खलु तुर्यं पदं सुषुप्तिस्वप्न जाग्रत्क्रमेणोन्मीलितस्यभेदावभासस्य जाग्रत्स्वप्न सुषुप्तिक्रमेण योऽयमभेदावभासः तत्खल्वभेदाबभासस्थानंतुर्यदसा। तस्यांदशायां यश्चिन्मयसुषुप्तिभाग जाग्रत्स्वप्नयोश्चिन्मयावभासानन्तरं सम्भावमानश्चिन्मयीभूतसुषुप्तिरूपोविश्रमः। असोखल्वतीततुर्यम् तुर्यातीतस्वभावम् शिववपु शिवस्य शिरोरूपम्वपुः।

चिन्मयौजाग्रत्स्वप्नौ शिवस्य जघन्यंवपुः, चिन्मयी सुषुप्तिस्तस्यशिरःपद-मितिवेदितव्यमिति भावः। एतदुक्तंभवति येषां चतस्त्र एव दशा इति मतम्। चिन्मय सुषुप्तिरतीततुर्यमत्युत्तीर्णतुरीयमितिव्यपदेशाङ्गीकारेणतुर्य एवान्तर्भाव। तेषां तुर्यातीतं नाम नान्या पृथग्दशा, चिन्मयसुषुप्तेस्तुर्यातीतत्वसम्भावनाविषयस्य तुर्य एवान्तर्भावात्। अतस्तुर्यातीतस्वभावः सर्वदशासमवायरूपो न दशामात्रः। किन्तु सर्वदशाधिष्ठाता। एतन्मतानुसारेण क्षकारमकारः समवायः सर्वदशाधिष्ठातृ-भूतस्य तुर्यातीत स्वभावत्वमङ्गित्वाभिप्रायेणोक्तम् दशामात्रपरत्वेनेतिपूर्व सूत्राभिप्रायः। नन्वेवंचाङ्गिपरत्वेनाभिमतस्य तुर्यातीतस्वभावस्य सर्वदशाङ्ग-समवायएवयुक्तः सत्वेकदशानियतक्षकारमकारसंसृष्टि सन्निवेशौचित्यमिति न मन्तव्यम्। यशाशरीरेण सर्व शरीर समवायतोऽपि शरीरैक देशे हृदयकमले सन्निवेशाङ्गीकारस्तथा सर्वदशा समवायवत् एव तुर्यातीते (त) स्वभावस्य क्षकारमकारसंसृष्टिरूपमध्यचक्रसन्निवेशो युज्यतएवेति निर्वद्यम्। येषांपुनर्मते तुर्यातीतं चिन्मय सुषुप्तिपरं पञ्चमी दशैव तेषां मतेक्षकारमकारसंसृष्टिरूपं पदं सर्वदशासमवेतं महातत्वमेव त्रिपुरेश्वरीप्राणपर्याय मिति व्यत्यययोगः।।२०।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

आकाश आदि पञ्चमहाभूतों को पञ्चमुखी देवता के पांच मुखों के रूप में निरूपित किया गया है, किन्तु जाग्रत् आदि दशाएं भी मुख के रूप कल्पित की जा सकतीं हैं। सुषुप्ति आदि दशाएं जिस देवता के अङ्गों के रूप में कल्पित की गई है वह देवता दशा रूप अङ्गों से भिन्न होना चाहिये, किन्तु यहाँ तुर्यातीत दशा को ही अङ्गी के रूप में मान्य किया गया है जो विरोधात्मक है। इसका स्पष्टीकरण यहाँ करते हैं।

व्याख्या

सुषुप्ति, स्वप्न एवं जाग्रत् क्रम से उन्मीलित भेदावभास का जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति रूप विलोम क्रम से जिस दशा में अभेद आभास होता है। वह तुर्य दशा है।

तुर्य दशा के अन्तर्गत, जाग्रत्-स्वप्नात्मक चिन्मय आभास के अनन्तर, जिस विश्रम रूप सुषुप्ति का आभास होता है वह तुर्यातीत स्वभाव है, जिसको शिव का शिरस्थान कहा गया है। अर्थात् चिन्मय जाग्रत् एवं स्वप्न शिव के जघन्य भाग हैं तथा चिन्मयी सुषुप्ति शिर-पद है।

जिनके मत में केवल चार दशाओं का ही प्रतिपादन किया गया है वह भी चिन्मय विश्रान्ति-सुषुप्ति को अङ्गीकार करते हैं, किन्तु इसका अन्तर्भाव तुर्य में ही मानते हैं, पृथक् दशा के रूप में नहीं। अतः तुर्यातीत स्वभाव समस्त दशाओं का समवाय रूप होने से अधिष्ठाता है न कि दशा मात्र। इस मत के अनुसार क्ष-कार म-कार का समवाय ही सब दशाओं का अधिष्ठातृ-भूत तुर्यातीय स्वभाव है जिसको अङ्गी स्वीकार किया है न कि केवल दशा के रूप में।

टीकाकार का मत है कि तुर्यातीत दशा को समस्त दशाओं का समवाय स्वीकार करना युक्ति युक्त है, किन्तु क्ष-कार, म-कार की संसृष्टि को एक मध्यवर्ति स्थान में सन्निविष्ट स्वीकार करना उचित नहीं है। जिस प्रकार शरीर शब्द से समस्त शरीर के समवाय का आशय व्यञ्जित होता है तथापि समस्त शरीर में व्याप्त आत्मा को हृदय-कमल में सन्निविष्ट मान्य किया जाता है उसी प्रकार सर्व दशाओं के समवाय के रूप में तुर्यातीत स्वभाव को क्ष-कार–म-कार संसृष्टि रूप मध्य-चक्र में सन्निविष्ट स्वीकार करना युक्ति युक्त है न कि केवल एक देशीय।

पुनः जिनके मत में चिन्मय सुषुप्ति रूप तुर्यातीत को पाँचवीं दशा स्वीकार करते हैं उनके मत में भी क्ष-कार, म-कार की संसृष्टि रूप पद को सर्व दशाओं के समवेत रूप महातत्त्व त्रिपुरेश्वरी के प्राण के रूप में प्रतिपादित किया है।

एकविंशति सूत्रम्

तुर्यं द्विखण्डमभवस्यजघन्यभागो
मूर्धाऽतितुर्यमनयोरनुभूः क्षमध्यम्।
जाग्रच्छिराः स्वपनंसुप्ति जघन्यभागो-
मप्राणकः पशुरसौ विपरीत बोधः।।२१।।

व्याख्या

अतीत तुर्यं शिववपुरिति पूर्व सूत्रे सामान्योक्तं विशेषेण व्युत्पादयति। तुर्यमित्यादि। द्विखण्डं खण्डद्वयोपलक्षितम्। अभेद जाग्रत् स्वप्नरूपमितिभावः

तुर्यं अभवस्य शिवस्य जघन्यभागः। अतितुर्यं अभेद सुषुप्तिरूपं तुरीयं तुर्य दशा भागः। मूर्धा शिरः अभवस्येति सम्बुद्ध्यते। शिवस्य निर्विकल्पप्रधानत्वात् विकल्पात्प्राधान्याच्चेति भवः। अनयोरप्रधानप्रधानाङ्गयोःक्षमध्यं क्षकार रूपं मध्यं अनुभूः प्राणस्थानं। जघन्य शिरोरूपयोरङ्गयोर्मध्यस्थाने कण्ठे खलु प्राण स्थितिरिति भावः। उभयाधिष्ठातुरुभयमध्य स्थितिरुपपन्नेति तात्पर्यम्। शिवप्रसङ्गेनजीवस्याप्यङ्ग विवेकमाह। जाग्रच्छिरो यस्य जाग्रच्छिराः स्वप्न सुप्तिजघन्य भागः स्वपनं स्वप्नः स्वपन सुषुप्तिर्जघन्य भागो यस्व असौ विपरीतबोधः शिवाद्विपरीतज्ञानः पशु विकल्प प्राधान्यान्निर्विकल्पाप्राधान्याच्च पशोः शिवाद्वैपरीत्यम्। एवं विधः पशुः मप्राणकः उभयाङ्गमध्यवर्तीयो मकारः स एव पशोः प्राणस्थानमितिपूर्ववद्विवेकः।।२१।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

इस सूत्र में शिव के शरीर का विस्तार से वर्णन किया जाता है।

व्याख्या

अभेद-जाग्रत् एवं अभेद-स्वप्न रूप तुर्यं दशा शिव का जघन्य भाग है। अभेद सुषुप्त्यात्मक-तुर्यावस्था शिव का शिरो-भाग है। शिव-दशा में निर्विकल्प का प्राधान्य होता है तथा विकल्प का अप्राधान्य। अतएव प्रधान एवं अप्रधान अङ्गों के मध्य स्थित क्ष-कार अनुभूः अर्थात् प्राण-स्थान है। तात्पर्य यह कि जघन्य एवं शिरोभाग के मध्य-स्थान कण्ठ में प्राण की स्थिति है अतः जघन्य एवं शिरोभाग के अधिष्ठाता शिव-रूप अतितुर्य की, दोनों भागों के मध्य स्थिति युक्ति युक्त है।

शिव की सुषुप्त्यात्मक अवस्थाओं के क्रम के विपरीत जीव की अङ्गभूत अवस्थाओं का क्रम है। पशु अर्थात् जीव का शिरोभाग जाग्रत् तथा स्वप्न एवं सुषुप्ति जघन्य भाग हैं। पशु-दशा में विकल्प का प्राधान्य रहता है एवं निर्विकल्प अनुभूति की अप्रधानता होती है अतः पशु के अङ्गों की स्थिति शिव के अङ्गों की स्थिति से विपरीत है। इस प्रकार पशु का प्राण-स्थान म-कार है क्योंकि इसकी स्थिति उभय अङ्गों के मध्य में है।

द्वाविंशति सूत्रम्

मात्मापशुः प्रकृतिरेवतयानिगीर्णो-
हात्मापि चित्प्रकृतिरेवनिवृत्तिरूपा।
इत्थं द्विधा प्रकृतिविश्रमभूः क्षकारः
शम्भुः परः परत एव भवेत् प्रकृत्याः।।२२।।

व्याख्या

भेद संसारप्रवर्तिन्या प्रकृत्याः यथा मकाररूपः पशुर्वद्धः अभेदसंसार वर्तिन्या प्रकृत्या तथा क्षकाररूपस्यापि शिवस्य बन्धः। सम्भाव्यते। तत्कथं नियत बन्धं मकारक्षकारसामरस्यमुपास्यत्वेनाङ्गीकृतमित्यत्राह।

मात्मेति। मात्मा मकारस्वरूपः पशुर्जीवः प्रकृतिरेव तत्रहेतुमाह तया निगीर्ण इति। प्रकृत्याग्रस्तत्वात्। प्रकृत्युत्तीर्णस्तदुत्तीर्ण इति भावः। हात्मापिचित् हकाररूपिणीचित् निवृत्तिरूपा प्रकृतिरेव तदनुषङ्गनैयत्यादित्यभिप्रायः। क्षकारस्तु इत्थं द्विधा प्रकृति विश्रमभूः इत्थमुक्तमर्यादयाद्विधा द्विरूपिण्याः प्रवृत्तिनिवृत्ति रूपिण्याः प्रकृतेर्विश्रमस्थानभूः विश्रमस्थान शुद्धान्तर्मुखत्वेन संसारद्वयकला-स्पृष्टत्वात् प्रकृत्यनावृतः किन्तुप्रकृतेः स्वयमावरकमित्यभिप्रायः। अतएव। क्षकारः परः शम्भुः प्रकृत्याः परत एव न तु तदन्तः पतितः। अतो नित्यमुक्तः क्षकारः अस्यैव यद्वहीरूपं हकारः यच्चात्यन्तबहीरूपंमकारः तयोरेव प्रकृतिपारतंत्र्येण प्रकृतित्वम् न तु क्षकारस्य अतस्तस्योपास्यत्व युज्यत एवेति तात्पर्यम्।।२२।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

उपर्युक्त प्रतिपादन से शङ्का उत्पन्न होती है कि जिस प्रकार मकारात्मक पशु भेद-संसार की प्रवर्तक प्रकृति द्वारा बद्ध है उसी प्रकार अभेद-संसार की प्रवर्तक प्रकृति के द्वारा क्षकार की भी बद्धता की आशङ्का हो सकती है, अतः वन्धन युक्त क्ष-कार एवं म-कार के सामरस्य-रूप देवता की उपासना युक्ति युक्त नहीं है। इस शङ्का का निवारण इस सूत्र में किया गया है।

व्याख्या

प्रकृति द्वारा निगीर्ण (ग्रस्त) मकारात्मक पशु प्रकृति ही है तथैव हकारात्मक चित् भी निवृत्ति-रूप प्रकृति है। क्योंकि दोनों का नियत आनुषङ्गिक सम्बन्ध है।

उपर्युक्त प्रतिपादन के अनुसार प्रवृत्ति एवं निवृत्ति रूप द्विधा प्रकृति का विश्रान्ति-स्थान क्षकार भी प्रवृत्ति एवं निवृत्ति भेद से दो प्रकार का सा प्रतीत होता है। शुद्ध अन्तर्मुख होने के कारण क्षकार बाह्य एवं आभ्यन्तर दोनों संसारों की कला से स्पृष्टि है, अतः प्रकृति से अनावृत होते हुए भी स्वयं प्रकृति का आवरक है अतः क्षकार प्रकृति से परे परशम्भु है न कि प्रकृति से आवृत जीव। अतः क्षकार नित्ययुक्त है।

प्रकृति का बाह्य रूप ह-कार एवं अत्यन्त वाह्य-रूप म-कार ही प्रकृति के परतन्त्र होने के कारण प्रकृति रूप है, किन्तु क्षकार (परशम्भु) प्रकृति के परतन्त्र नहीं है। अतः उनका स्वरूप उपास्य है।

त्रयोविंशति सूत्रम्

यद्वाशिवः क्ष इह मप्रतियोगिभावात्
सौषुप्तमेव परशम्भुपदम् चिदात्मा।
यच्चक्रमध्य पदता तदधीशता च
शम्भो (स्तस्य) सदेश्य गुणगन्धितयार्च्यभावात्॥२३॥

व्याख्या

क्षकारस्य मकार प्रतियोगितया विकल्प गन्धोदुर्निवारः अतः शुद्ध निर्विकल्प चित्सुषुप्ति पदमेव परं तत्व तदेदोपास्यमिति ये मन्यन्ते तदाक्षेपायाह।

यद्वेति मप्रतियोगिभावात् मकारस्य जीव प्रतिपादकस्य प्रतियोगिभावात् अन्योन्य व्याप्य व्यापक भाव संसर्गात् क्षकारः शिवः नतु परमशिवः।

विकल्प गन्ध नैथत्यादितिभावः। चिदात्मा चिन्मयंसौषुप्त पदं सुषुप्ति रेव परशम्भुपदं परमशिव तत्वं। यद्वा। यद्वेति पक्षान्तरे अस्मिन् पक्षे चित्सुषुप्तावपि विकल्पस्यात्यन्तोच्छेदो दुष्प्रतिपादः साधिते विकल्पस्यान्त्यन्तो च्छेदेपर्यन्ततो जडत्व प्रसज्येत। जडस्य च नोपास्यत्वम्। अतो विकल्पपदे वा गन्धपदे वा

तत्वमुपास्यमिति क्षकारस्य चक्रमध्यस्थित्या विभाव्येन चक्राधिष्ठातृत्वेनोपास्यत्वं स्फुटोभूतमिति समाधत्ते। यच्चक्रमध्वपतितेत्यादि। क्षकारस्य शम्भोश्चक्रमध्यता साम्प्रदायिकी चक्रस्य मध्यप्रतिष्ठा तत्प्रतिबोधिता तदधीशता चक्राधीशता च तदेतदस्य शम्भोर्गुणगन्धितया हेतुना सिद्धिरेते सिध्यति अर्च्यभावात् अर्चनीयत्वात् उपपाद्यत इति शेषः। गुण गन्धाधानेनार्च्यनीयो नतु निर्गुण इति प्रतिपत्तिरेव क्षकारस्य शम्भोश्चक्र मध्यस्थितिः साम्प्रदायिकीतिसमर्थयतीति विवेकः।।२३।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

कतिपय विद्वानों का मत है कि म-कार के प्रतियोगी होने के कारण क्ष-कार में विकल्प का लेश अनिवार्य है। अतः शुद्ध निर्विकल्प चित् सुषुप्ति-पद ही परम तत्त्व है; जिस कारण से इसको उपास्य प्रतिपादित किया गया है।

व्याख्या

आक्षेप को स्पष्ट करते हैं कि जीव के प्रतिपादक म-कार एवं क्ष-कार में अन्योन्य व्यापक-व्यापक संसर्ग है, अतएव क्ष-कार अर्थात् शिव में विकल्प की गन्ध नित्य है न कि परमशिव में। चिदात्मा चिन्मय सौषुप्त पद ही परम शिव तत्व है। अतः परम-शिव उपास्य है।

इसके विपरीत टीकांकार का मत है कि चित् सुषुप्ति में भी विकल्प का अत्यन्त उच्छेद दुष्प्रतिपाद है। यदि विकल्प के अत्यन्त उच्छेद की सिद्धि की जावै, तब परम-तत्त्व में जडत्व का प्रसङ्ग उत्पन्न हो जाता है। जड-तत्त्व की उपासना का विधान नहीं है। अतः विकल्प-पद अथवा गन्ध-पद (अर्थात् विकल्प के संसर्ग से युक्त पद) में ही उपासना का औचित्य है। क्ष-कार की स्थिति चक्र के मध्य में विभावित है, अतएव सम्प्रदाय के अनुसार क्ष-कार ही चक्र का अधिष्ठाता है; जिसके कारण इसका उपास्यत्व और अधिक स्पष्ट हो जाता है।

क्ष-कार शम्भू का अवबोधक है, अतएव सम्प्रदाय के अनुसार शम्भू की स्थिति भी क्ष-कार के समान ही चक्र के मध्य में प्रतिष्ठित है। एवं इसी से शम्भू की चक्राधीशता का बोध होता है तथा इसी कारण गुण-गन्धता के हेतु से शम्भु का ही उपास्यत्व सिद्ध है। अर्थात् परम-तत्त्व शम्भू-गुण के आधार से ही उपासनीय है न कि निर्गुणता के कारण। इस से यह भी सिद्ध होता है कि क्षकारात्मक शम्भू की स्थिति सम्प्रदाय के अनुसार चक्र के मध्य में ही है।

चतुर्विंशति सूत्रम्

चन्द्राग्निभुक्छसिभुगग्निरथः समस्वं
भानुः पदेपदइदंत्रितयं स्वरादौ।
खण्डत्रयात्मकमखण्डपदं च तद्वत्
तद्विश्रमः प्रतिदशं समसंख्यतैषाम्।।२४।।

व्याख्या

अथ पुनः पुनरावर्तमानाभिर्दशाभिरेवतिथिभिः कालो व्यवस्थाप्यते। तिथयश्च शुक्ल पक्षे च पञ्चदशकृष्णपक्षे च तावत्यः सम्भूय त्रिंशत् संख्यकाः पुनःपुनरावर्तन्ते। योगिदृष्टौदशानामेवतिथिरूपतायां तिथि समान संख्यता दशानांसाम्प्रदायिकोपदेश गम्येति तदेव प्रमेयमुपदिशति।- चन्द्राग्नि भुगित्यादि। सूत्रद्वयेनदशायांदशायां तथातथा रूपः संसारः पञ्चभूतात्मनैव कलापेन सम्पद्यते तान्यपिभूतानि दशा स्वभावान्येव। तथा हि जलतत्वात्मकश्चन्द्रः सुषुप्तिरूप, वायुतत्वात्मकः सूर्यो जाग्रद्रूपः तेजस्तत्वात्मको वह्निः स्वप्न स्वरूपः पृथिवी तत्वात्मिका प्रकृतिर्गुणत्रयपर्याय तेजस्त्रयबीजभूता। तुर्यम्। आकाशतत्वात्मकः पुमान् सकलप्रपञ्चबीजरूपिण्याः प्रकृतेः विश्रान्तिस्थानं तुर्यातीतम्। यद्यपि सुप्त्यादौकलानां बाहुल्यं विद्यते। तथापि ताः कला पञ्चस्वेव तत्वेष्वन्तर्भवन्ति। इति प्रतिदशं पञ्चैवाङ्गदशाः सुषुप्तिः सुषुप्तिर्जलम्, सुषुप्तिजाग्रद् वायुः, सुषुप्तिस्वप्नो वह्निः सुषुप्तितुर्यं पृथिवी, सुषुप्तितुर्यातीतमाकाशः। इत्येवम् जाग्रदादावप्यङ्गदशापञ्चकविभागोऽवगन्तव्यः। एवं प्रवृत्तिरूपासु सुषुप्ति जाग्रत्स्वप्नेषु प्रतिदशं पञ्चाङ्गदशागणनायां प्रवृत्तिरूपः संसारः पञ्चदशाङ्गवान् भवति। तान्येवाङ्गानि शुक्लपक्ष (स्य) योः पञ्चदशतिथय इतिविवेकः। अथनिवृत्तिसंसारे प्रवृत्तिसंसाराङ्गानां सर्वेषांनिवृत्तिरूपतेति तत्र कृष्ण पक्ष (स्य) योस्तिथयः पञ्चदशभवन्ति। प्रवृत्तिसंसारे वेद्यमयस्यचन्द्रस्याभिबृद्धिरिति तत्संसार (क) स्य शुक्ल पक्षता। निवृत्ति संसारेवेद्यस्यचन्द्रस्य क्षय इति कृष्णपक्षता तस्येतिविवेकः। सूत्रयोरक्षरार्थस्तु अग्निभुगनिग्नव्यापकश्चन्द्रः शशिभुक् चन्द्रव्यापकोऽग्नि एवं चन्द्राग्नयोः स्वभावोऽग्निः नतु सर्वासुदशास्वग्निना चन्द्रकवलनं चन्द्रेणाग्नि कवलनं विविक्षितम्। तथात्वेप्रवृत्तिसुषुप्त्यादौ अग्निना चन्द्रकवलने शुक्लपक्षत्व (व्य) हानिरिति। अथ। समता। अनयोश्चन्द्राग्न्योस्सभिता भानुः। स्वरादौ स्वरवर्गादौ पदे पद इदं त्रितयं संसारकलापकत्वेन

नियताभ्युपेयमितिशेषः। तद्वच्चन्द्रादिवत् खण्डत्रयात्भकं चन्द्राग्निभानु रूपखण्ड त्रयात्मकंचन्द्राद्याकारेण विलसन अखण्डपदं प्रकृतिपर्याय पृथिवीरूपंचन्द्रादयः खलुगुणत्रयमयाः प्रकृतिपर्याय पृथिवीपर्याय विलासरूपाः इतिवेवेकः। अखण्डपदं गुणत्रयसमष्टिरूपत्वात् प्रकृतेरखण्डपदत्वम्। एतच्च पदं पदे चन्द्रादि पदवच्च संस्थानमिति एतद्वच्छब्दार्थः। तद्विश्रमश्च तस्यप्रकृतिरू पदस्य विश्रमः विश्रान्तिस्थानंआकाशरूपं स्वात्मतत्वमित्यर्थः। एतदपि पदं प्रतिदशं नियतमिति अङ्गदशः पञ्चक नैयात्दशानामुक्तम्। एषामङ्गानां दशासु नियतानां तिथिभिः समसंख्यता वेदितव्येति शेषः।।२४।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

चन्द्र में अग्नि व्यापक है तथा अग्नि में चन्द्र व्यापक है। भानु का स्वरूप चन्द्र एवं अग्नि का समत्व है। इन तीनों पदों की स्थिति स्वर-वर्ग में है। स्वर-वर्ग चन्द्र, अग्नि, सूर्य रूप-खण्डों के समान ही खण्डत्रयात्मक है। तथा विश्रमात्मक अखण्डपद भी उसी के समान है। यह भी ज्ञातव्य है कि प्रत्येक दशा में तिथियों की संख्या भी समान है।

व्याख्या

इस सूत्र में पुनः पुनः आवर्तमान दशाओं को तिथियों के रूप में प्रतिपादित कर काल का व्यवस्थापन किया गया है। शुक्ल पक्ष की पन्द्रह तथा कृष्ण पक्ष की पन्द्रह, एकत्र तीस तिथियों का पुनः पुनः आवर्तन होता है। योग सम्प्रदाय में दशा-रूप तिथियों के अन्तर्गत तिथि तथा दशाओं की संख्या समान है।

दो सूत्रों के द्वारा विवेचन किया गया है कि प्रत्येक दशा में तत्तत् दशा के अनुरूप संसार का सम्पादन पञ्चभूतात्मक कलाप के द्वारा होता है। अर्थात् पञ्चभूतों का स्वभाव दशाओं के स्वभाव के अनुरूप है। टीकाकार ने दशाओं तथा पञ्चभूतों के स्वभाव की एकरूपता का विस्तार से वर्णन किया है। जल-तत्त्वात्मक चन्द्र सुषुप्ति रूप है, तेज-तत्त्वात्मक अग्नि स्वप्न का स्वरूप है, वायु-तत्त्वात्मक सूर्य जाग्रत् रूप है, त्रिगुणात्मिका पृथ्वी रूप प्रकृति तुर्य स्वरूप है, तथा आकाश-तत्त्वात्मक पुरुष सकल प्रपञ्च की बीज रूपिणी प्रकृति का तुर्यातीत नामक विश्रान्ति स्थल है।

यद्यपि सुप्ति आदि दशाओं में कलाओं का बाहुल्य रहता है तथापि उन कलाओं का आविर्भाव पञ्च तत्त्वों के अन्तर्गत ही होता है। अतः प्रत्येक दशा के अन्तर्गत उनकी अङ्गभूत दशाऐं भी पाँच ही होती हैं। उदाहरणार्थं सुषुप्ति-सुषुप्ति जल तत्त्वात्मक, सुषुप्ति-जाग्रत् वायु रूप, सुषुप्ति-स्वप्न वह्नि रूप, सुषुप्ति-तुर्य पृथ्वी रूप एवं सुषुप्ति-तुर्यातीत आकाश तत्त्वात्मक हैं। इसी प्रकार जाग्रत् आदि अन्य दशाओं के अङ्गों के विभाजन का ज्ञान करना चाहिये।

इस प्रकार प्रवृत्ति रूप-सुषुप्ति-जाग्रत्-स्वप्न प्रत्येक की अङ्गभूत पांच दशाओं की गणना करने से प्रवृत्ति-रूप संसार के पन्द्रह अङ्ग बन जाते हैं। वही पन्द्रह अङ्ग शुक्लपक्ष की पन्द्रह तिथियाँ हैं। निवृत्ति-रूप संसार में प्रवृत्ति-रूप संसार के समस्त अङ्ग निवृत्ति रूप हो जाते हैं अतएव कृष्णपक्ष की पन्द्रह तिथियों का आविर्भाव होता है। प्रवृत्ति रूप संसार में वेद्य-रूप चन्द्र की अभिवृद्धि होती है; अतएव यह संसार शुक्ल पक्ष निरूपित किया गया है। निवृत्ति-रूप संसार में वेद्य-चन्द्र का क्षय होता है, अतः इसको कृष्णपक्ष निरूपित किया है।

सूत्र के अक्षरार्थ के अनुसार अग्नि में चंद्र व्यापक है तथा चन्द्र में अग्नि व्यापक है। इस कारण चन्द्र एवं अग्नि का स्वभाव अग्नि आत्मक है क्योंकि यहाँ सब दशाओं में अग्नि चन्द्र को आत्मसात् नहीं करती है और न ही चन्द अग्नि को आत्मसात् करता है, किन्तु यदि यह आत्मसात् करने की व्यवस्था समस्त दशाओं में स्वीकार कर ली जावै तब प्रवृत्ति-संसरण में सुषुप्ति आदि दशाओं में अग्नि द्वारा चन्द्र का कवलन कर लेने पर शुक्ल पक्ष की हानि हो जावेगी।

चन्द्र एवं सूर्य के समत्व को भानु के नाम से निरूपित किया है।

संसार कलाप के रूप होने के कारण चंद्र, अग्नि, भानु तीनों खण्ड स्वर, स्पर्श एवं अन्तःस्थ वर्गों में नियत हैं। तथा चन्द्र आदि के समान ही स्वर आदि वर्गों का विलास है।

अखण्ड पद प्रकृति की पर्याय भूत पृथ्वी का स्वरूप है, गुणत्रय की समष्टि रूप होने से प्रकृति का पद अखण्ड है। इस पद का भी चन्द्र आदि के समान संस्थान है अर्थात् इस प्रकृति-रूप पद का विश्रान्ति स्थान भी चन्द्र आदि की विश्रान्ति के समान आकाश है। आकाश से तात्पर्य है स्वात्म तत्त्व। यह अखण्ड-पद भी प्रत्येक दशा में उसी प्रकार नियत है जिस प्रकार प्रत्येक दशाओं के अन्तर्गत उनके पाँच अंग। दशाओं में नियत इन अंगों की तिथियों की संख्या भी समान है ऐसा जानना चाहिये।

पंचविंशति सूत्रम्

भेदाविभेद समता तनुभिः सुषुप्तिः
स्वप्न प्रजागर पदैस्त्रिगुणी कृताभिः।
पृथ्व्यादिखान्तर्तिथिभिर्ननु शुक्लपक्षः
कृष्णस्तु जागरपदादिक तन्निवृत्या।।२५।।

व्याख्या

भेदेत्यादि। भेदाविभेद समता तनुभिः। क्रमेण भेदाभेद तदुभय साम्यस्वरूपैः सुषुप्तिस्वप्न जागरपदैः त्रिगुणीकृताभिः पृथिव्यादि खान्त तिथिभिः पृथिव्याद्याकाशान्ताङ्गदशारूपाभिः पञ्चभिस्तिथिभिः त्रिगणनायां पञ्चदशभिः शुक्लपक्षो ननुभवतीतिशेषः। जागर पदादिक तन्निवृत्या। अथ तुर्यदशायां जाग्रदादि प्रथममन्त्यात्तु निवृत्तिरासांतिथीनां निवृत्या निवृत्तिरूपाङ्गीकारेण कृष्णः पक्षः। तु शब्दो भेदे। एवं सिद्ध-साम्प्रदायिककाल विवेक योगे छप्तदृदृष्टेः पुरुषस्य कालपञ्चकं सिध्यतीति एतत्प्रमेयोपदेशः।।२५।।

भाषा टीका

व्याख्या

भेद-अभेद-भेदा भेदात्मक सुषुप्ति, स्वप्न एवं जाग्रत् क्रम से तीन पदों का पृथ्वी से आकाश पर्यन्त पाँच तत्वों का गुणा करने से शुक्ल पक्ष की पन्द्रह तिथियों का आविर्भाव होता है; एवं जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति क्रम से निवृत्ति-पद में दशाओं का तत्त्व रूप तिथियों से गुणा करने पर कृष्णपक्ष का आविर्भाव होता है। जाग्रत् आदि उपक्रम से दशाओं की निवृत्ति तुर्य में होती है उसी के अनुसार तिथियों की भी निवृत्ति अङ्गीकार करने से कृष्णपक्ष का प्रवर्तन होता है। इस प्रकार सिद्ध-सम्प्रदाय के अनुसार काल विवेक के योग में छप्त दृष्टि पुरुष का स्वरूप काल-पञ्चात्मक सिद्ध होता है।

षड् विंशति सूत्रम्

देहात्मिका प्रकृतिरेव पराविमर्शा
सैव प्रवृत्ति विनिवृत्युभयादिभूता।
वागर्थ मिश्रवपुरिन्द्विनलार्यमत्रय्ये-
कैकयुक्त्रिपुटिका नवमूर्तिरेका।।२६।।

व्याख्या

इदानीं महाप्रकृति रूप परात्मिकायाः विमर्श शक्तेर्दशा विशेष रूपाणामङ्गानां नवसंख्याकत्वेन तस्याः प्रतिबिम्ब रूपं श्रीचक्रमपि नवचक्रसमय रूपमिति व्युत्पादयन्नाह। देहात्मिकेत्यादि। देहात्मिका देह रूपिणी अनेन त्रिपुरेश्वर्यां शरीरत्रयमेव मुख्यं रूपमिति व्युत्पादितम्। प्रकृतिरेव परा वाग्रूपिणी स्वरस प्रहणलक्षणात्। एवं प्रकृतिरिति परावागिति। व्यवधिष्ठा विमर्शः शक्तिः शिवप्रवृत्तिनिवृत्युभयादिभूता प्रवृत्ति संसारस्य निवृत्ति संसारस्य मिश्र संसारस्य च कारणभूतः सर्वोऽपि संसारः प्रकृतिमूलः प्रकृतेरेव विलास रूपत्वादित्यर्थः। वागर्थमिश्रवपुः नतु केवलं परावग्रूपत्वाच्छब्दरूपः अपित्वर्थरूपा च मिश्ररूपा च सर्वव्यापिवस्तुनः शब्द मूलत्वाच्छब्देऽन्तर्भावात् एवं रूपता त्रिपुरेश्वरी इन्द्वनलनार्यमादि त्रय्येकैक युक्तिपुटिका। त्रिपुटिका प्रमेयप्रमातृप्रमाण-समुदायलक्षणा इन्द्वनलार्यम्णां त्रय्या एकैकयुक् एकैकं प्रत्येकं युज्यते इत्येकैकयुक्। एवं प्रत्येकं प्रवृत्तिरूपेणचन्द्रेण निवृत्ति रूपेणनिलेन उभयसाम्यरूपेणार्यम्णा सूर्येण युक्ता या त्रिपुटी प्रमेयादिपुरत्रयी तत्स्वरूपा सती तत्त्वत एक रूपाऽपि विश्रान्ति दशायामद्वितीयापि नवमूर्तिः नव संख्या स्वरूपभेदः। असमर्थः। जडत्वात्प्रमेय रूपं चतुर्दशारात्मकं सुषुप्तिपुरं विसर्ग प्राधान्याबिन्दु प्राधान्यादुभय प्राधान्याच्च त्रिधाभिद्यते। प्रमाण रूपं दशार द्वयात्मकं जाग्रत्पुरमपि तथा प्रमातृरूपं अष्टारात्मकं स्वप्नपुरमपि तथेति नव चक्र विवेकः। एवच्चक्रं तत्तद्दशा रूपेण नवधा विलासं स्यात् सा त्रिपुरेश्वर्याः बिम्बभवतीति हृद्गताभिप्रायः।।२६।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

महाप्रकृति परात्मिका विमर्श शक्ति के दशा विशेष रूप अङ्कों की संख्या

नौ है, इस कारण समय सिद्धान्त के अनुसार विमर्श शक्ति का प्रतिबिम्ब रूप श्रीचक्र नव त्रिकोणात्मक हैं।

व्याख्या

देहात्मिका प्रकृति ही परा-विमर्श है। तथा वही प्रकृति प्रवृत्ति, निवृत्ति एवं उभय-रूपात्मक है।

प्रवृत्ति को देहात्मिका उल्लेख करने से तात्पर्य है कि त्रिपुरेश्वरी के जाग्रदादि दशात्मक रूप-त्रय प्रकृति की देह है। प्रकृति ही स्वरस-प्रवाहिणी वाग्रूपा परावाणी है।

प्रवृत्ति, निवृत्ति एवं उभयात्मक संसार प्रकृति के विलास का रूप है अतः तीनों रूपों में संसार का मूल प्रकृति ही है।

प्रकृति का स्वरूप वाक् एवं अर्थ दोनों से मिश्रित है। प्रकृति को परा वाग्रूप कहा गया है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि प्रकृति केवल शब्दात्मक है, अपितु सर्वव्यापी वस्तु का मूल शब्द है। शब्द के अन्तर्गत अर्थ का अन्तर्भाव है, अतः परा प्रकृति का शब्द, अर्थ एवं उभयात्मक मिश्र स्वरूप है।

शब्दात्मिका परा-शक्ति के तीन स्वरूप प्रमेय, प्रमाण तथा प्रमाता हैं, जो तीन पुरों के नाम से कल्पित किये गये हैं अतः तीनों पुरों में स्थित देवता को त्रिपुर-सुन्दरी के नाम से सम्बोधित किया गया है। त्रिपुरात्मक त्रिपुटी में से प्रमेय आदि प्रत्येक के अन्तर्गत प्रवृत्ति-रूप चन्द्र, निवृत्ति-रूप अग्नि एवं उभयात्मक सूर्य का समावेश है। अतः त्रिपुर-सुन्दरी का विश्रान्ति दशा में एक रूप होते हुए भी विसर्ग दशा में मूर्त्यात्मक नवधा स्वरूप हो जाता है। अर्थात् श्रीचक्र में चतुर्दशार के नाम से चित्रित, जडत्व के कारण प्रमेय रूप में प्रतिपादित सुषुप्ति-पुर विसर्ग के प्राधान्य, बिन्दु के प्राधान्य एवं विसर्गविन्दु उभय के प्राधान्य के आधार पर त्रिधा विभक्त है। इसी प्रकार प्रमाण-रूप दशार-द्वयात्मक जाग्रत्पुर, एवं प्रमातृ रूप अष्टारात्मक स्वप्न-पुर का विसर्ग, बिन्दु एवं उभय के प्राधान्य के आधार पर प्रत्येक दशा त्रिधा विभाजित है। इस प्रकार प्रमाता, प्रमेय एवं प्रमाण का नवधा विभाजन है, जो श्रीचक्र में नव चक्र के नाम से अङ्कित है। विभिन्न दशाओं के रूप में चक्रात्मक यह नवधा विलास त्रिपुर-सुन्दरी का बिम्ब है।

सप्तविंशति सूत्रम्

चैतन्यता च जडता च विमर्श चित्यो-
स्तुल्या यदिन्धनलयोरुभयंतदिच्छा।
स्यात्कर्म चावगलितं तु मिथोजडत्वात्
ज्ञानं तयोः समपदं च तथा द्विरूपम्।।२७।।

व्याख्या

एवं शिवस्य सगुणस्वरूपं प्रकृतिमेवोत्कृष्य उपास्यत्व सम्भावनया नवचक्रेश्वरीं व्युत्पाद्य तस्याश्चेत्यत्वे प्रसिद्धे सम्भावितमुपास्यत्व व्याहतिशङ्का-करण्डत्वम् (कारणत्व) प्रवादमपददन्नाह। चेतन्यतेत्यादि। चितिरजडेति सम्प्रत्ययः विमर्शस्यचित्साम्य प्रतिपादयन् जडत्वमपवदति। विमर्शचित्योः विमर्श प्रकाशयोः चैतन्यता च जडता च तुल्या। उभयोरपि प्रत्येकं चैतन्यत्वं जडत्वञ्चभवतीति चमत्कारः। अयं चमत्कारोऽन्योन्य व्याप्ति निबन्धनः। व्यापकमेव चैतन्यं व्याप्यमेव जडमिति द्वयोरपि व्यापकत्वे व्याप्यत्वे च सति चिदचिद्भाव चमत्कारो निर्विशेषेण कर्त्तव्येति भावः।

उभावेतौ प्रकाश विमर्शौं इच्छाज्ञान क्रियावन्तावपि विमर्शस्याजडत्व प्रतिपादने हेतुमाह। यद्यस्मात्कारणात् इन्द्वनलयोरुभयं द्वयं तदिच्छा तयोः प्रकाश विमर्शयोरिच्छा। प्रकाशस्य कदाचिद्व्यापकत्वे अनल इच्छा भवति कदाचिद् न्याप्यत्वेन्दुः। विमर्शस्यापि तथा विमर्शस्येन्दुरेवेच्छेति नाशङ्कनीयम्। तस्य विमर्शस्य व्यापक दशायां तदिच्छायाः इन्दोरग्निर्वैभवप्राप्तिरग्नित्वमेव। प्रकाशेच्छायाः अग्नेरपि तदव्याप्येदन्तायामिन्दुजाड्य प्राप्तेरिन्दुत्वमेव।

एवं प्रकाश विमर्शयोर्व्यवहारपदे स्वरूपस्यानऽलेन्दु द्वयस्यान्योन्य-मेषितव्येच्छारूपेण प्रत्यैक्यं (प्रत्येकं) जडाजडत्वमुक्तवा मिथा कर्तृकार्य रूपं जडाजडत्वमाह। स्यादित्यादि। मिथः अवगिलितं व्याप्तं कर्त्राखलु कर्म व्याप्यते। अता परस्परमवगिलितं ग्रसितं कर्म च भवति। भूतात्कर्त्ता च भवति। इत्यर्थः। तयोः समपदं अन्योन्यविषयत्वात्तुल्यरूपं ज्ञानं च तथा पूर्ववद्द्विरूपम्। अन्योन्यं ज्ञाता च भवति ज्ञानं च भवतीत्यर्थः। एवमिन्द्वन-लयोर्विमर्श प्रकाशयोरेषित-व्येच्छा भावे कार्यकर्तृत्व भावे ज्ञातृज्ञेयभावे मिथो निर्विशेते सति प्रकाश तत्वं जडमिति दुराग्रहे विवेकहीनतां आपादयतीत्यर्थः।।२७।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

तेवीसवें सूत्र में प्रतिपादन किया है कि जड उपासनीय नहीं है अतः शिव का निर्गुण रूप उपास्य नहीं कहा जा सकता है। केवल सगुण रूप उपास्य है। छब्बीसवें सूत्र में त्रिपुरसुन्दरी को नवचक्रात्मक प्रतिपादित किया है अतः यहाँ भी उपासत्व की शङ्का उत्पन्न होती है अतः इस सूत्र में शिव एवं शक्ति दोनों को उपास्य सिद्ध करने के लिये समत्व का प्रतिपादन किया जा रहा है।

व्याख्या

विमर्श तथा चित् दोनों तत्त्वों में समान रूप में जडता एवं चैतन्यता की स्थिति है। अर्थात् प्रकाश एवं विमर्श दोनों में से प्रत्येक जड भी है तथा चैतन्य भी है। जडत्व एवं चैतन्यत्व दोनों परस्पर विरोधी तत्त्वों की एक ही स्थान पर स्थिति है यह चमत्कार है। विमर्शं एवं प्रकाश की अन्योन्य व्याप्ति इस चमत्कार का कारण है। चैतन्य व्यापक है तथा जड़ व्याप्य है। व्यापकत्व एवं व्याप्यत्व दोनों में चित्-अचित् का चमत्कार नित्य विद्यमान है। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रकाश एवं विमर्श दोनों इच्छा-ज्ञान एवं क्रिया से युक्त हैं।

इन्दु जड है अतः क्रियात्मक है अग्नि अजड है अतः ज्ञानात्मक है। ज्ञान एवं क्रिया के मध्य में स्थित होने से इच्छा ज्ञानक्रियात्मक है। इस प्रकार प्रकाश एवं विमर्शं दोनों की इच्छा का रूप इन्दु एवं अग्नि सिद्ध होता है। प्रकाश जब व्यापक होता है तब प्रकाश की इच्छा का रूप अग्नि है तथा जब कदाचित् प्रकाश व्याप्य दशा में होता है तब इसकी इच्छा का रूप इन्दु होता हैं। इसी प्रकार विमर्श की इच्छा का स्वरूप भी अग्नि एवं इन्दु है।

यद्यपि विमर्श की इच्छा का साधारण स्वरूप निःसंदेह इन्दु है तथापि विमर्श की व्यापक दशा में इन्द्वात्मक इच्छा को अग्नि का वैभव प्राप्त हो जाता है अतः इस दशा में प्रकाश की इच्छा अग्नि स्वरूप ही है। इसके विपरीत विमर्श की व्याप्य दशा अर्थात् इदंता में अग्नि भी इन्दु की जड़ता को प्राप्त हो जाती है अतः यहां अग्नि इन्दु रूप है। इस कारण सिद्ध है कि व्यापक एवं व्याप्य दोनों दशाओं में विमर्श की इच्छा का रूप अग्निमय होने से विमर्श अजड है।

इस प्रकार व्यवहार पद में प्रकाश एवं विमर्श की इच्छा को इन्दु एवं अनलात्मक सिद्ध करके इन दोनों तत्त्वों को जडाजडात्मक सिद्ध किया है उसी प्रकार प्रकाश एवं विमर्श दोनों ही ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेय रूप हैं। प्रकाश एवं विमर्श दोनों ही जडाजडात्मक हैं अतः दोनों के परस्पर व्याप-स्वरूप के कारण दोनों ही कर्ता हैं तथा दोनों ही कार्य हैं। अर्थात् प्रकाश एवं विमर्श दोनों में समान रूप से कर्तृत्व एवं कर्म का समावेश है। प्रकाश तथा विमर्श दोनों एक दूसरे का विषय हैं। अतः समत्व के कारण दोनों ही ज्ञान स्वरूप हैं। इस प्रकार प्रकाश एवं विमर्श एक दूसरे के ज्ञाता एवं ज्ञेय हैं तथा दोनों ज्ञान स्वरूप हैं उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध है कि इच्छा-भाव, कर्म-कर्तृत्वभाव एवं ज्ञातृज्ञेय-भाव में प्रकाश एवं विमर्श की समानता है; इस कारण न ही प्रकाश में और न ही विमर्श में जडत्व का प्रतिपादन किया जा सकता है। अर्थात् प्रकाश एवं विमर्श दोनों ही चैतन्य रूप हैं।

टिप्पणी -

इसी को एक उर्दू कवि ने यों लिखा है -

"जर्रा जर्रा है मज़हरे खुर्शीद"

अष्टाविंशति सूत्रम्

पक्षद्वयेऽपि परिवृत्तिवशात्त्रयाणा-
मिच्छादिकत्रितयताप्रतिधामधाम्नाम्।
षट्स्वत्रवृत्तिसु च कारणकार्यतास्या-
द्विन्दुक्षयोर्मभबोः पफवर्ग (र्ण) योश्च।।२८।।

व्याख्या

अथ खण्डत्रयात्मनो मातृकामहामन्त्रस्य प्रतिबन्धमुभयपक्षार्थे न सदावर्तनं भवेत्। खण्डानामन्योन्यमादिमध्यान्तत्वनिर्विशेषेऽन्योन्यकार्यकारण भावचमत्कार श्चक्राकारता च भवतीति रहस्यमेतत्व्युत्पादयति। पक्षद्वय इत्यादि। त्रयानांधाम्नां। पदानां। मन्त्रखण्डानामित्यार्थः। पक्षद्वयेऽपि दक्षिणतो वामतश्चेत्यर्थः।

परवृत्तिवशात् आवर्त्तवशात्। प्रतिधाम प्रतिपदं इच्छादिक त्रितयता इच्छात्वं ज्ञानत्वं क्रियात्वं च भवति। यस्य कस्य चिद्वा खण्डस्याऽऽदित्वाङ्गीकारे इच्छात्वं मध्यत्वाङ्गीकारे ज्ञानत्वमन्त्यत्वाङ्गीकारे क्रियात्वमितिविवेकः। अत्र खण्डत्रयेउक्तमर्यादया षट्सु वृत्तिसु सर्वासु बिन्दुक्षयोः (बिन्दुः) स्वर वर्गस्तस्य बिन्दोः क्षकारस्य च तथामभयोः व्यापक वर्ग सन्निवेशवतो मकारस्य स्पर्शवर्गस्य तयोर्भकारवकारयोर्युगलस्य स्पर्श वर्गस्य तयोरेव पकार फकारयोर्युगलस्य स्वरवर्गस्थितस्य विसर्गस्य चान्योन्यं कार्यकारण भावो भवति। अयमर्थः। प्रतिखण्डं हृदयप्रदेशात् प्राणपदादावर्त्तोदयः सम्भाव्यः। प्रतिखण्डं च हृदयप्रदेशे बिन्दु विसर्गौ स्वरवर्गोदरे अन्तः इति बिन्दु विसर्गों स्वरवर्गोदरे चतुरस्त्र चक्रसन्निविष्टाः प्रकृत्यहङ्कार बुद्धि मनः प्रतिपादका पकार फकार बकार भकाराः तत्र विसर्गस्थानीयौ पकार फकारौ, बिन्दु स्थानीयौ बकार भकारौ व्यापक वर्गोदरे मकार क्षकारौ (विसर्ग बिन्दु स्थानीयौ) विसर्गः बिन्दुस्थाने। एवं सति (यदा) सर्वेषु बिन्दुमुपक्रम्य प्रतिलोमावर्तेन व्यापक वर्गावगाहे क्षकारपर्यन्त-मावतः। तदानीं बिन्दुः कारणम्। क्षकारः कार्यम्। क्षकारमारभ्यअनुलोमावर्त्तेन बिन्दुपर्यवसाने क्षकारः कारणं बिन्दुः कार्यम्। अथ स्वरोदयगतं विसर्गमारभ्य स्पर्शोदरगत प फ वर्ण रूपविसर्गान्तिमनुलोमेनावर्त्ते विसर्गः कारणं प फ रूप विसर्ग कार्यम्। प फ रूपविसर्गमुपक्रम्य स्वर विसर्गान्ति प्रतिलोमेनावर्त्ते प फ विसर्गः कारणम् स्वरस्थ विसर्गः कार्यम्। अथ स्पर्शोदरगतं ब भ वर्ण रूप बिन्दुमुपकभ्यानुलोमेन व्यापकवर्गोदरस्थमकाररूपबिन्दुपर्यन्तभावर्त्ते व भ रूप बिन्दुः कारणम्। मकार बिन्दुः कार्यम् मकार बिन्दुमारभ्य प्रतिलोमेन ब भ रूप बिन्दु पर्यन्तमावर्त्ते मकार बिन्दुः कारणं ब भ रूप बिन्दुः कार्यमिति तद्विवेकः।

अत्र बिन्दु क्षकारयोर्बिन्दुत्वं शुद्धविसर्ग प फ वर्ण युगलस्य विसर्गत्वं शुद्धम्, ब भ वर्ण युग्म मकारयोः साङ्कर्येण बिन्दुत्वं विसर्गत्वञ्चेति साम्प्रदायिकोपदेशः। प्रमेय प्रमाण प्रमातृखण्डेषु यस्य कस्यचिद्वा मूलत्वाभ्युपगमसिद्धान्तः। सिद्धैरनुभवारोधेनापिकृतः। अनुभवश्चैवं हि घटादिस्फुरणे चक्षुरादि प्रमाणस्फुरणं चक्षुष्मत्प्रमातृस्फुरणं चाऽविभाव्य क्रममनुभूयते तत्र कश्चित् घटस्फुरणं प्रधानतया मन्यते। कश्चिदिन्द्रियस्फुरणंप्रधानं कश्चित्प्रमातृ स्फुरणमिति तत्पुरुष प्रतिभा व्यवस्थापिते सिद्धान्तत्रये विप्रतिषेध विषये सति सिद्धसिद्धान्तः प्रकाश विमर्श चमत्कारभूतेषु घटादिस्फुरणे (षु) सिद्धान्तत्रय समष्टिरेव सन्तिष्ठतीति।।२८।।

भाषा टीका

स्वर, स्पर्श एवं व्यापक खण्ड-त्रयात्मक मातृका महामन्त्र के प्रत्येक बन्ध का उभय पक्षों में आवर्तन होता है। अर्थात् तीनों खण्डों में से किसी भी खण्ड का आदि, मध्य एवं अन्त पद के रूप में आवर्तन हो सकता है। इस प्रकार पौर्वापर क्रम निश्चित न होने से महामन्त्र के खण्डों में अन्योन्य कार्य-कारण भाव का चमत्कार एवं चक्राकारता का आविर्भाव होता है, जिसका रहस्य इस सूत्र में उद्घाटित किया गया है।

सूत्रसार -

(वाम एवं दक्षिण) उभय पक्षों में आवर्तन के वश प्रत्येक खण्ड इच्छा, ज्ञान, क्रियात्मक है। तथा इस प्रकार आविर्भूत छै वृत्तियों में कारण कार्य सम्बन्ध होता है। अर्थात् बिन्दु एवं क्ष-कार का, म-कार एवं भ-कार ब-कार का तथा प फ वर्णों का अन्योन्य कार्यकारण सम्बन्ध सिद्ध होता है।

व्याख्या

पक्षद्वये :– मन्त्र के तीनों पदों का दक्षिण एवं वाम दोनों पक्षों में आवर्तन होता है इस कारण प्रत्येक पद में इच्छात्व, ज्ञानत्व एवं क्रियात्व का सन्निवेश है। तीनों खण्डों में से किसी भी खण्ड को यदि आदितः स्वीकार कर लिया जावै तब वह खण्ड इच्छात्मक हो जाता है। यदि उसी को मध्य खण्ड स्वीकार किया जावै तब वह ज्ञानत्व का तथा अन्त्य पद स्वीकार करने पर क्रियात्व का रूप हो जाता है। इस मर्यादा के अनुसार दक्षिण एवं वाम पक्षों से मंत्र के खण्डों का आवर्तन करने पर छै वृत्तियाँ निर्धारित होती हैं। इन छै वृत्तियों में से प्रत्येक वृत्ति एक दूसरे का कार्य एवं कारण है। अर्थात् उपर्युक्त छै वृत्तियों के द्योतक विन्दु, क्ष-कार, म-कार, भ-ब तथा प-फ वर्णों में अन्योन्य कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध होता है।

(१) स्वर वर्ग में स्थित बिन्दु का क्ष-कार से कार्य कारण सम्बन्ध है।

(२) म-कार का अर्थात् व्यापक वर्ग में सन्निविष्ट म-कार का स्पर्श वर्ग में स्थित भ-ब वर्णों से तथा

(३) प-फ वर्णों का स्वर वर्ग में स्थित विसर्ग से अन्योन्य कारण सम्बन्ध सिद्ध होता है।

प्रत्येक खण्ड में प्राणात्मक हृदय प्रदेश से मन्त्र के प्रवाह का प्रारम्भ होता है तथा प्रत्येक खण्ड के हृदय प्रदेश में ही स्वर वर्ग गत बिन्दु-विसर्ग का स्थान है। अर्थात् हृदय प्रदेश में बिन्दु का विसर्गोन्मुख आवर्त प्रारम्भ होता है तथा हृदय में ही बिन्दु की ओर विसर्ग के प्रवाह का अन्त होता है। अतः स्वर वर्ग गत विन्दुविसर्ग चतुरस्र में सन्निविष्ट प्रकृति-अहंकार-बुद्धि-मन के अभिव्यञ्जक प-कार, फ-कार, ब-कार, भ-कार का स्वरूप हैं।

यहाँ तात्पर्य है कि प-कार एवं फ-कार विसर्ग स्थानीय है, ब-कार एवं भ-कार विन्दु स्थानीय हैं तथा व्यापक वर्ग में स्थित म-कार एवं क्ष-कार विसर्गं एवं बिन्दु स्थानीय हैं। ऐसी स्थिति में सब में विन्दु के उपक्रम से प्रतिलोभ प्रवर्तन में व्यापक वर्ग के अवगाहन के उपरान्त क्ष-कार पर्यन्त आवर्त की सीमा निर्धारित होती है। इस स्थिति में बिन्दु कारण है तथा क्ष-कार कार्य है। क्ष-कार से प्रारम्भ कर बिन्दु के पर्यवसान तक अनुलोम* आवर्तन में क्ष-कार कारण है तथा बिन्दु कार्य है।

स्वर वर्ग में स्थित विसर्ग से प्रारम्भ कर स्पर्शान्तरगत प-फ वर्ण रूप विसर्ग पर्यन्त अनुलोम आवर्त में विसर्ग कारण है तथा प-फ रूप विसर्ग कार्यं है। तथा प-फ रूप विसर्गं से प्रारम्भ कर स्वर-वर्ग-गत विसर्ग पर्यन्त प्रतिलोम प्रवाह में प फ रूप विसर्ग कारण है तथा स्वरस्थ विसर्ग कार्य है।

इसी प्रकार स्पर्श-वर्गस्थ ब-भ वर्ण रूप बिन्दु से प्रारम्भ कर, व्यापक-वर्गस्थ म-कार रूप विन्दु पर्यन्त अनुलोम आवर्त में ब-भ रूप विन्दु कारण है तथा मकारात्मक बिन्दु कार्य है। मकारात्मक बिन्दु से प्रारम्भ कर ब-भ रूप बिन्दु पर्यन्त प्रतिलोम प्रवर्तन में मकारात्मक बिन्दु कारण है एवं ब-भ रूप बिन्दु कार्य है। इस प्रकार षट्-वृत्तियों के अन्योन्य कार्य-कारण के विवेक का यह विवरण टीकाकार ने प्रस्तुत किया है।

सम्प्रदाय का मत है कि स्वरस्थ बिन्दु एवं क्ष-कार के योग से घटित बिन्दुत्व शुद्ध है, स्वर वर्गस्थ विसर्ग एवं प-फ वर्ण युगल से घटित विसर्गत्व शुद्ध है एवं म-कार से घटित बिन्दुत्व एवं व-भ वर्ण युग्म से घटित विसर्गत्व में साङ्कर्य अर्थात् अशुद्धता है।

टिप्पणी – * बिन्दु मुख्य स्थान है जहाँ से प्रवर्तन का प्रारम्भ एवं अवसान होता है अतः बिन्दु से विसर्ग की ओर प्रवर्तन को (अर्थात् प्रधान से अप्रधान की ओर प्रवर्तन को) प्रतिलोम प्रवर्तन की संज्ञा दी गई है।

प्रमेय, प्रमाण तथा प्रमातृ खण्डों में से कोई भी खण्ड प्रवर्तन क्रम में मूल भूत स्वीकार किया जा सकता है अर्थात् यहाँ भी पूर्वापर क्रम नहीं है। यह सिद्धान्त सिद्ध जनों के अनुभव के आधार पर स्वीकार किया गया है।

प्रत्यक्ष रूप में भी अनुभव होता है कि घट के स्फुरण होने पर चक्षु आदि प्रमाण का स्फुरण एवं चक्षुष्मत् प्रमाता का स्फुरण विभावित होने पर ही पूर्वापार क्रम का अनुभव होता है। इस प्रकार घट की अनुभूति में कोई घट-स्फूरण की प्रधानता निरूपित करते हैं, कोई इन्द्रिय-स्फुरण की प्रधानता स्वीकार करते हैं एवं अन्य विचारक प्रमाता के स्फुरण की प्रधानता स्वीकार करते हैं। विचारक की प्रतिभा के आधार पर उपर्युक्त तीनों सिद्धान्तों का व्यवस्थापन किया गया है। इसके विपरीत सिद्ध-जनों का मत है कि प्रकाश एवं विमर्श के चमत्कार-भूत घटादि के स्फुरण की अनुभूति क्रम में उपर्युक्त तीनों सिद्धान्तों की समष्टि को अङ्गीकार करना युक्ति युक्त है।

ऊनत्रिंशत् सूत्रम्

चन्द्राग्निविश्रमणयोः स्वरयादिधाम्नोः
विश्वस्य बीजदशयोः प्रथमे पदे चिद्।
चित्ये निमज्जति परत्र चितौ तु चैत्य-
मेतत्समस्तमुभयोल्लसिते तु भानौ।।२९।।

व्याख्या

ननु पूर्वोक्तत्रिखण्डस्वरूपस्य चतुर्दशारविन्यासवतः सुषुप्त्यात्मनः शाक्तस्य स्वरखण्डस्य प्राधान्येन यजद्भिः शाक्तैः सिद्धान्तीकृतम्। चिन्निमग्न चैत्यस्वरूप-साष्टारविन्यासवतः स्वप्नात्मनः शैवस्य व्यापकखण्डस्य प्राधान्येनयजनं शैवैः सिद्धान्तितम्। चतुरस्रगर्भितदशारविन्यासवतो जाग्रदात्मनः स्पर्श खण्डस्य पशुदशाशङ्कया प्राधान्येन यजनमविवेकिजनस्य उपेक्षाविषये वा स्यादिति तस्यैव खण्डस्य प्रधान यजनौचित्यं साम्प्रदायिकमिति सूत्रचतुष्टयेनव्युत्पादयति। चन्द्राग्नीत्यादि। चन्द्राग्निविश्रमणयोः। स्वर यादिधाम्नोः स्वरवर्ग व्यापक वर्गात्मिनोः पदयोः चन्द्रस्य विसर्गस्य विश्रमणं विश्रान्तिस्थानत्वं स्वरवर्गपदे अग्नेर्बिन्दोः विश्रमणं व्यापकवर्गपदे स्वरवर्गे चिन्निगरणेन चैत्यैकच्छत्रतो ता व्यापकवर्गे चैत्यनिगरणेन चिदेकश्छित्रतेति भावः। विश्वस्य बीजदशयोः।

चैत्यविश्रमचिद्विविश्रमयोः। प्रत्येकं विश्वबीजत्वं विश्वस्य विमर्शमयत्वेन प्रकाशमयत्वेन चानुभवात्। प्रथमे पदे स्वरपदे चित् चित्ये निमज्जति। चितोदर्शनं नास्तीत्यर्थः। परत्र व्यापकवर्गपदे तु चैत्यं चिता निमज्जति चैत्यस्यदर्शनं नास्तीत्यर्थः उभयोल्लसिते। चित्च्चैत्ययोरुल्लसिते उल्लासरूपे भानौ तु स्पर्शखण्डे तु एवं (एतत) चिच्चैत्ययुगलं समस्तं अन्योन्यनिगीर्णस्वरूपम्। चिच्चैत्यरूप मुभयमपि तत्वं सम्भूय दर्शनपदे भवति। शिवशक्त्योरुभयोरपि दर्शनस्थानत्वात् भानुरूपं जाग्रच्चक्रमेव प्राधान्येन यजनीयमिति विवेकः।।२९।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

पूर्व सूत्र में मातृका-महामन्त्र को स्वर, स्पर्श एव व्यापक वर्गात्मक तीन खण्डों में प्रतिपादित किया गया है। शाक्त मतावलम्बी चतुर्दशार-चक्र में विन्यस्त, सुषुप्त्यात्मक, शक्ति तत्त्व के द्योतक स्वर-वर्गात्मक प्रथम खण्ड की उपासना को प्रधान रूप से स्वीकार करते हैं। शैव सिद्धान्ती अष्टार में विन्यस्त, स्वप्नात्मक, चैत्यात्मीकृत चित् के स्वरूप, शिव-तत्त्व के अभिव्यञ्जक, व्यापक खण्ड को प्रधानतया उपासना का विषय प्रतिपादित करते हैं। चतुरस्र-गर्भित दशार में विन्यस्त जाग्रदात्मक स्पर्श-खण्ड को पशुदशा की आशङ्का से कतिपय अविवेकी साधक उपासना का विषय स्वीकार नहीं करते हैं, किन्तु जाग्रदात्मक स्पर्श-खण्ड ही प्रधान रूप से उपास्य है ऐसा इस सम्प्रदाय का मत है जिसका आगामी चार सूत्रों में विवेचन किया जा रहा हैं।

व्याख्या

श्रीचक्र का स्वरूप चन्द्र-अग्नि तथा सूर्यात्मक है। चन्द्र का द्योतक स्वर-वर्ग है अतः विसर्गात्मक चन्द्र का विश्रान्ति स्थल स्वर वर्ग निर्धारित है तथा य आदि वर्ग अग्नि के द्योतक हैं तथा अग्नि का विश्रांति स्थल व्यापक वर्ग है। स्वर वर्ग में चित् का चैत्य के अन्तर्गत निमज्जन हो जाता है। अतः चैत्य का प्राधान्य होता है। व्यापक वर्ग में चैत्य चित् में निगीर्ण हो जाता है अतः यहाँ चित् की प्रधानता के कारण चित् का एक छत्र साम्राज्य होता है। विश्व प्रकाशमय एवं विमर्शमय हैं अतः विश्व के विश्रांति स्थल होने से चित् एवं चैत्य प्रत्येक विश्व के बीज रूप हैं।

प्रथम पद स्वर-खण्ड में चित् का चैत्य में निमज्जन हो जाता है अतः अन्तर्लीन होने के कारण चित् तत्त्व का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता है। व्यापक वर्ग में चित् के अन्तर्गत चैत्य अन्तर्लीन हो जाता है, अतः चैत्य का दर्शन नहीं होता है। इस प्रकार स्वर-वर्ग एवं व्यापक वर्ग दोनों ही एकात्मक दशाएँ हैं। जब चित् एवं अचित् दोनों के उल्लास के स्वरूप भानु की प्रधानता होती है तब भानु के द्योतक स्पर्श-खण्ड में चित् एवं अचित् दोनों तत्त्वों के सम्मिलित दर्शन होते हैं। अतः शिव एवं शक्ति दोनों के साक्षात्कार की अवस्था भानु-रूप जाग्रत्-चक्र ही है जो उपासनीय है। इस प्रकार सम्प्रदाय का मत है।

त्रिंशत् सूत्रम्

इन्दौच हव्यभुजिचोदरसीम्नियत्स्या-
च्चक्रद्वयं चिदचिदभ्यवमर्दरूपम्।
बिम्बद्वयीयुगलमेतदशीतिभानो-
र्बिम्बस्थले हि चतुरस्रतयासमस्तम्।।३०।।

व्याख्या

चतुर्दशार चक्रे गर्भितचित्स्वरूपं यत् चैत्यं, अष्टार गर्भित चैत्यस्वरूपा या चित् एवमेतत् चक्राद्वयाधिष्ठातृभूत देवतायुगलं दशारद्वयाधिष्ठातृभूते चतुरस्रचक्रे सम्मिलितम्। अतेवास्य चकस्य चतरस्र भाव इतिव्युत्पादयति। इन्दौ चेत्यादि। इन्दौ। च। चतुर्दसार चक्रे। हव्यभुजि च। अष्टार चक्रे। प्रतिचक्रं। उदर सीम्नि। बिम्बस्थरश्मि चक्रमध्ये बिम्ब चक्रस्यौचित्यात्। यच्चक्रद्वयं स्यात्प्रतिचक्रं म (न्दि) न्दरे चक्रद्वयं भवतीत्यर्थः। चतुर्दशारोदरे अष्टदल-षोडशदलरूपं चिच्चैत्यरूपं चक्रद्वयम्। अष्टारोदरे त्रिकोणबिन्दुरूपं चैत्य चिदात्मकं चक्रद्वयं। कीदृशं चक्रद्वयं चिदचिदभ्यवमर्दरूपम्। चिदचितोश्चिच्चैत्ययोरभ्यवमर्दः। अन्योन्यक्रमणं तद्भूतं तदवस्थं। चतुर्दशारे षोडश दलात्मना चैत्यचक्रेणाष्टदलात्मक चिच्चक्रक्रमणम्। अतेवाष्टदलस्य षोडश दलरश्मि रूपेण तदवहिरवस्थानम्। अष्टारे विन्द्वात्मना चिच्चक्रेण त्रिकोणात्मना चैत्य चक्रक्रमणम्। अतएव त्रिकोणस्य बिन्दुरश्मि रूपेण बहिरवस्थानम्। एव व्यवस्थितमेतद् बिम्बद्वयीयुगलम्। अष्टदल षोडश दलात्मकं त्रिकोण बिन्द्वात्मकञ्च युगलं सम्भूय चतूर्रूपं। अशीत भानोः सूर्य बिम्बस्थले दशारद्वयोदरे चतुरस्रतया चतरस्र रूपेण समस्तं सम्भूय स्थितम्।

अष्टदल षोडशदल त्रिकोण बिन्दुरूपंचक्र चतुष्टय चतुरस्र चतुष्कोण रूपेण स्थितम्। अतस्चतुरस्त्रं प्राधान्येनयष्टव्यमिति निष्कर्षः।।३०।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

चतुर्दशार चक्र में गर्भित चिद्रूप चैत्य एवं अष्टार गर्भित चैत्य स्वरूपा चित् अर्थात् चतुर्दशार के देवता एवम् अष्टार के देवता युगल (चैत्य एवम् चित्) का दशारद्वय के अधिष्ठातृ-भूत चतुरस्र चक्र में सम्मिलित स्वरूप दर्शाया है अतएव इस चक्र को चतुरस्र नाम से सम्बोधित किया जाता है।

व्याख्या

इस सूत्र में चतुर्दशार को इन्दु तथा अष्टार को अग्नि नाम से सम्बोन्धित किया है। चतुर्दशार एवं अष्टार दोनों चक्रों में से प्रत्येक के अन्तर में दो-दो चक्र हैं। चतुर्दशार के अन्तः में अष्टदल नामक चिद्रूप एवं षोडषदल नामक चैत्य रूप दो चक्र हैं। इसी प्रकार अष्टार में चैत्यात्मक त्रिकोण एवं चिदात्मक विन्दु नामक दो चक्र हैं; दोनों चक्रों के अन्तः स्थित चैत्य एवं चित् का अभ्यवमर्द अर्थात् अन्योन्य अतिक्रमणात्मक स्वरूप है। अर्थात् चित् का चैत्य में तथा चैत्य का चित् में अतिक्रमण स्वाभाविक रूप में होता रहता है। चतुर्दशार चक्र में षोडश दलात्मक चैत्य का अतिक्रमण अष्टदलात्मक चित् में होता है अतएव अष्टदल के बाहिर षोडष दल रूप चक्र की स्थिति है। अष्टार के अन्तर्गत प्रदर्शित बिन्द्वात्मक चित् चक्रद्वारा त्रिकोणात्मक चैत्य का अतिक्रमण होता है, अतः बिन्दु की रश्मि के रूप में त्रिकोण की स्थिति बिन्दु चक्र के बाहिर प्रदर्शित की गई है। इस प्रकार बिम्ब युगल की व्यवस्था है। यह षोडशदल एवं अष्ट दलात्मक युगल तथा बिन्दु-त्रिकोणात्मक युगल चतुष्कोण का रूप है। यह चतुष्कोण दशार द्वय के अन्तः में सूर्य के बिम्ब स्थल के रूप में प वर्ग नाम से उल्लिखित हैं जिसको समष्टितः श्रीचक्र के अन्तर्गत चतुरस्र रूप में प्रदर्शित किया गया है।

इस प्रकार षोडश दल, अष्ट दल, त्रिकोण एवं बिन्दु रूप चार चक्रों से चतुरस्र चक्र की स्थिति सिद्ध की गई है। अतः चतुरस्र प्रधान रूप से यष्टव्य है। अर्थात् चतुरस्र की पूजा समस्त चक्रों से पहिले करनी चाहिये।

एकत्रिंशत् सूत्रम्

तस्माच्चतुष्पदमिदं चतुरस्रबिम्बं
चिच्चैत्यनिर्जरसरिद्यमुनाप्रयागः।
अर्च्यः भवेत्प्रथमतोऽथतदङ्गभूत-
चिच्चैत्यचक्रयजनं त्वितिपूर्वतस्तत्।।३१।।

व्याख्या

चतुरस्र चक्रस्य उक्तोपपत्या प्रथमतो यष्टव्यतां निगमयति। तस्मादित्यादि। तत्तस्मात्पूर्वसूत्र प्रतिपादतोपपत्तिरूपात् कारणात् चतुष्टयस्य समवाय स्थलम्। इदं चतुरस्र बिम्बं चिच्चैत्य निर्जर सरिद्यमुनयोः। भागीरथी यमुनयोः। चितः स्वच्छत्वात् तथा वर्ण भूत भागीरथी साम्यम्। चैत्यस्य संसार रूपतया कलङ्कितत्वान्नैल्येन यमुना साम्यम्। प्रयागो नाम यमुना भागीरथ्योः सङ्गमरूप पुण्यतमः तीर्थविशेषः। देवता चतुरस्रबिम्बमिति (मपि तथा पुण्यतमः तत्र निमज्जने सद्यो (देवता) भावश्चेति तथा निरूपितम्। इति (प्रथमतः) प्रमेयतः अर्च्यमर्च्यनीयंभवेत्। अथ चतस्र यजनानन्तरं तदङ्गभूतयो श्चिच्चैत्य चक्रयोरष्टार चतुर्दशाररूपयोर्यजनमिति। तच्चतुरस्रचक्रं पूर्वतः प्रमुखे कृतमितिशेषः। पुरत्रयात्मके श्रीचक्रे चतुरस्रमेव प्रथमतो यष्टव्यमित्येतदुपदेशात प्रमुखे देव्याः पदे (दं) सर्वंचक्रव्यापकस्थलेकृतम्। चतुरस्रस्य नैसर्गिक स्थितिषु (अष्टार) चतुरदशार यजनमिति तच्चतुरस्रचक्रं पूर्वतः चतुर्दशाष्टारमध्यदेश एव। प्रथमयष्टव्यता व्युत्पादनाय तयोश्चक्रयोर्व्यापकत्वाभिमते वाह्यस्थले सन्निवेशः काल्पनिक इति भावः। चतुरस्रचक्रं दशारद्वयास्याप्युपलक्षणम्। तस्यरश्मिचक्रमन्तरेण बिम्बचक्रावस्थानस्यानुपपन्नत्वात्।।३१।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

पूर्व सूत्र में निरूपित सिद्धांत के अनुसार बिम्बात्मक चतुरस्र चित्-चैत्य रूप गंगा एवं यमुना सरित के मध्य में स्थित प्रयाग तीर्थ के समान है। चतुरस्र भी चित्- चैत्य का अङ्ग है अतएव प्रथम यजनीय है।

व्याख्या

पूर्व सूत्र में प्रतिपादित किया है कि यह चतुष्पद जिसको चतुरस्त्र का बिम्ब नाम से सम्बोधित किया है, अङ्गाङ्गि रूप में स्थित देवता चतुष्टय का समवाय स्थल है। गंगा-यमुना चित्-चैत्य का स्वरूप हैं, चित् के समान स्वच्छ गंगा का जल है तथा चैत्य के समान यमुना का जल है। जिस प्रकार संसार रूप अनुभूति से चैत्य कलङ्कित है उसी प्रकार यमुना का जल नीला है। अतः चैत्य से यमुना की उपमा दी गई है। गंगा एवं यमुना के संगम का स्वरूप प्रयाग नामक पुण्य तीर्थ विशेष प्रसिद्ध है, जिसमें मज्जन करने से शीघ्र ही देवता की भावना साकार हो जाती है। अतएव प्रयाग के समान ही चित्-चैत्य रूप देवता चतुष्ट्य के समवाय स्थल चतुरस्त्र का अर्चन प्रथम करणीय है।

चतुरस्त्र के यजन के अनन्तर इसके अङ्ग-भूत अष्टार एवं चतुर्दशार रूप, चित्-चैत्य चक्र का यजन करना चाहिये। अतएव पूरत्रयात्मक श्रीचक्र के अन्तर्गत चतुरस्त्र को ही, प्रथम यष्टव्य निरूपित करने के हेतु, देवी के प्रमुख-पद अर्थात् समस्त चक्रों के व्यापक स्थल पर प्रदर्शित किया गया है।

चतुरस्त्र की नैसर्गिक स्थितियों में अष्टार एवं चतुर्दशार रूप का यजन होता है; अतएव चतुरस्त्र की पूर्व स्थिति यद्यपि अष्टार एवं चतुर्दशार के मध्य-देश में निरूपित है; किन्तु प्रथम यष्टव्यता प्रतिपादित करने के हेतु चतुरस्त्र, व्यापकत्व के कारण अभिमत, अष्टार एवं चतुर्दशार के बाह्य स्थल में कल्पित है।

चतुरस्त्र चक्र दशारद्वय का भी उपलक्षण है किन्तु दशारद्वय रश्मि-चक्र है एवं चतुरस्त्र बिम्ब-चक्र है, रश्मि-चक्र के अन्तर्गत बिम्ब-चक्र का अवस्थापन अनुपन्न है; अतएव चतुरस्त्र को प्रमुख बाह्य स्थल पर प्रदर्शित किया है।

द्वात्रिंशत् सूत्रम्

अन्तःस्थमेव चतुरस्त्रमुषर्बुधेन्द्वो-
रर्कात्मकं चिदचिदुद्भवमेतदमू।
एवञ्च सत्यपि जडाजडसारमेतत्
प्रागेव पूज्यमिति पूर्णपदे कृतं तत्।।३२।।

व्याख्या

चतुरस्रोपलक्षितस्यजाग्रच्चक्रस्यबहिः सन्निवेशःशिष्य व्युत्पादनायैव-व्युत्पन्नापेक्षयात्वियं कल्पना (ना) नुसरणीया अपितु मध्यस्थितस्यैव चतुरस्रस्य प्राधान्य दृष्ट्या प्रथमयष्टव्यता सिध्येतिचक्रस्यान्यथा सन्निवेशकल्पनाप्रत्यवायं-परिहरति अन्तस्थमित्यादि। उषर्बुधेन्द्वोः अष्टार चतुर्दशारोपलक्षितयोरर्कात्म-कंचतुरस्रं दशारद्वयोदर नियत सन्निवेशमन्तस्थमेव। एवकारेण नैयत्यमुक्तम्। न तु बहिर्देशे तस्य सन्निवेशः शङ्कनीय इत्यर्थः। एतदङ्ग एतयोः उषर्बुधेन्द्वोरङ्गं चतुरस्रं भानु रूपं खलु भानुश्चाग्नि चन्द्रयोरङ्ग तदुभयाधीन सिद्धिकत्वात्। एवं चतुरस्रस्य अङ्गत्वे सत्यपि जडाजड सार चन्द्राग्नि तत्वयोः सारभूतमेतच्चतुरस्र-चक्ररूपमङ्गसारत्वात् प्रागेवपूज्यमिति व्युत्पादनायैव। तच्चतुरस्र चक्रं पूर्ण पदे व्याप्तिस्थलेबाह्यदेशेकृतम्। आदि सिद्धेनशिवेनेतिशेषः। मध्य चक्ररस्य चतुर-स्रोपलक्षितस्यमूलाङ्कुरापेक्षया मध्यस्थितस्यबीजस्यैव यैरुपासकैःप्राधान्यमवगतं ते मध्यस्थितमपि चतुरस्रं बीजवत्प्राधान्यदृष्ट्या प्रथमतो यजन्ते येतत्राव्युत्पन्नाः-तदपेक्षयेयं चतुरस्रंस्यबहिः सन्निवेश रूपकल्पना चक्रस्थितस्यैवार्थस्य व्याख्यान-रूपता। तदप्रत्यवायविषय इतितात्पर्यम्। अष्टदलषोडश-दलयोश्चतुर्दशारमध्य एव सन्निवेशः। तयोश्चतुरस्रस्योदरभागे यः सन्निवेशश्चतुर-स्रस्य दशारद्वयास्याप्युप लक्षकस्य समनन्तरं चतुर्दशाराष्टारयोर्जनंकर्त्तव्यमिति चतुर्दशारोपलक्षकत्वेन षोडशदलमष्टारोप लक्षकत्वेनाष्टदलञ्च शिष्यव्युत्पादनायैव वहिः सन्निवेशित-मितिवेदितव्यम्। अयमर्थः सुषुप्तिजाग्रत्स्वप्नात्मकं चक्रत्रयमपि प्रत्येकं प्राधान्येन यष्टव्यम्। तत्र सुषुप्तिचक्रस्य चतुर्दशारस्य व्याप्तिस्थले बहिर्देशे स्थित्या प्राधान्यमुपगम्यते। साम्प्रदायिकेन विलोमेन स्वप्नचक्र व्यापारस्यापिप्राधान्यमुप-गम्यते। तदुभयमध्यपतितस्य जाग्रच्चक्रस्य बीजसन्निवेशं न्यायेन यैः प्राधान्यभव-गम्यते। तदपेक्षया चतुरस्र षोडशदलाष्टदलानां जाग्रत्सुषुप्तिस्वप्न चक्रोपलक्षकानां वहिः सन्निवेशकल्पनानुसरणीया। येतु पुनरत्राव्युत्पन्ना तदपेक्षया जाग्रच्चक्रस्य प्राधान्यं वहिश्चतुस्रादि चक्रस्यरेखात्रय सन्निवेशेन व्युत्पादितम्। तदीयाकल्पना शिष्टव्युत्पादनमात्र परा सन्निवेश कल्पना विवेकेन व्युत्पत्तिमता च साधकजनेन चतुर्दशार पर्यन्त एव श्रीचक्रत्रस्यप्रत्येकं प्राधान्यमुपगन्तव्यमितिशिवम्।।३२।।

भाषा टीका

सूत्रसार -

चित् एवं अचित् से उद्भूत अर्करूप चतुरस्र की स्थिति अग्नि एवं

इन्दु के अन्तः में है। अतएव यद्यपि चतुरस्र इन्दु एवं अग्नि का अङ्ग सिद्ध होता है तथापि जडाजड का सार होने से, आदि सिद्ध शिव के द्वारा, प्रथम पूजनीयताा निरूपित करने के हेतु, पूर्ण पद में प्रदर्शित किया गया है।

व्याख्या

कतिपय विद्वानों का मत है कि चतुरस्र उपलक्षित जाग्रत चक्र का श्रीचक्र के अन्तर्गत बाह्यतः सन्निवेश शिष्य के व्युत्पादन की दृष्टि से किया गया है, किन्तु व्युत्पन्न साधक की दृष्टि से यह अनुसरणीय नहीं है। अपितु अष्टार एवं चतुर्दशार चक्रों के मध्य में ही चतुरस्र की स्थिति प्रधानतया सिद्ध है, अतएव मध्य स्थित चतुरस्र की ही प्रथम पूजनीयता निरूपित करना युक्ति युक्त है। ग्रंथकार का मत है कि बाह्य प्रदर्शित चतुरस्र ही प्रथम पूजनीय है अतएव इस प्रकार बाह्यतः सन्निवेशं की कल्पना के दोषों का टीकाकार ने परिहार किया है।

अग्नि एवं इन्दु अर्थात् अष्टार एवं चतुर्दशार से उपलक्षित (देखिये सूत्र ३०) चतुरस्र की स्थिति दशारद्वय के अन्त में यद्यपि नियत है, तथापि इस कारण से चतुरस्र के बाह्यतः सन्निवेश की कल्पना के विपक्ष में शङ्का करना उचित नहीं है। इसका कारण निरूपित करते हैं।

इन्दु एवं अग्नि के अधीन होने से भानु इनका अङ्ग है, चतुरस्र भानुरूप है अतएव चतुरस्र भी इन्दु एवं अग्नि का अङ्ग सिद्ध होता है, तथापि यह चतुरस्र चक्र इन्दु एवं अग्निरूप जडाजड का सार भी है, इस कारण इसकी प्रथम पूजनीयता सिद्ध करने के हेतु ही श्रीचक्र के पूर्ण पद अर्थात् व्याप्ति स्थल में आदि सिद्ध शिव द्वारा प्रदर्शित किया गया है। (पूर्ण पद को ही बाह्य देश के नाम से व्यवहृत किया गया है।)

जो साधक चतुरस्र से उपलक्षित मध्य चक्र अर्थात् जाग्रत् चक्र का प्रथम अर्चन करते हैं वे चतुरस्र को बीज रूप मानते हैं। जिस प्रकार मूल एवं अङ्कुर की अपेक्षा बीज की प्रधानता होती है उसी प्रकार वे साधक चतुर्दशार एवं अष्टार की अपेक्षा चतुरस्रोपलक्षित मध्य चक्र की (बीज के दृष्टांत के समान) प्रधानता स्वीकार कर इसका यजन प्रथम करने के सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं।

अन्य साधक जो चतुरस्र के बहिः सन्निवेश की कल्पना को केवल अव्यत्पन्न शिष्य के हितार्थ स्वीकार करते हैं उनका मत उपर्युक्त सिद्धान्त का व्याख्यान मात्र है। अतः यह मत भी प्रत्यवाय से रहित है।

संक्षेप में तात्पर्य है कि अष्टदल-षोडशदल चक्रों का चतुर्दशार के मध्य में सन्निवेश है तथा इन चक्रद्वय का चतुरस्र के अन्तः में सन्निवेश है, एवं चतुरस्र दशार द्वय का उपलक्षक है अतएव चतुरस्र के समनन्तर ही चतुर्दशार एवं अष्टार का यजन करना उचित है। अर्थात् चतुर्दशार के उपलक्षक होने से षोडशदल का एवं अष्टार के उपलक्षक होने से अष्टदल का बाह्यतः चतुरस्र के रूप में सन्निवेश शिष्य के व्युत्पादन के हेतु ही किया गया है।

इसका अर्थ है कि सुषुप्ति, जाग्रत्, स्वप्न चक्र-त्रय में से प्रत्येक का प्रधान रूप में यजन करना चाहिये। सुषुप्ति-चक्रात्मक चतुर्दशार का बाह्यतः व्याप्ति स्थल में सन्निवेश है अतः इसका प्रधान्य निरूपित किया गया है। सम्प्रदाय के अनुयायी विद्वान् विलोम आर्वतन स्वीकार करते है अतः वे स्वप्न का प्राधान्य मान्य करते हैं। इनके अतिरिक्त वे साधक जो सुषुप्ति एवं स्वप्न के मध्य में आपत्ति जाग्रत् चक्र का बीज सन्निवेश-न्याय से प्राधानय स्वीकार करते हैं उनकी अपेक्षा से जाग्रत्-सुषुप्ति-स्वप्न के उपलक्षक चतुरस्र-षोडशदल-अष्टदल की वहिः सन्निवेश की कल्पना अनुसरणीय है। अर्थात् उन साधकों को पूर्ण पद में बाह्यतः सन्निविष्ट चतुरस्र का यजन प्रथम करना चाहिये न कि मध्यतः स्थित जाग्रत् चक्र का।

पुनः जो अव्युत्पन्न हैं उनकी अपेक्षा से जाग्रत् चक्र का प्राधान्य चतुरस्र चक्र के बाहिर रेखा त्रय के सन्निवेश से व्युत्पादित किया गया है। उनकी कल्पना केवल शिष्य के व्युत्पादन के हेतु है।

व्युत्पन्न साधकों की अपेक्षा से चक्रों के सन्निवेश की जो कल्पना की गई है। उसके अनुसार चतुदार पर्यन्त श्रीचक्र के अन्तगत सुषुप्ति आदि प्रत्येक की प्रधानता प्रतिपादित है।

त्रयस्त्रिंशत् सूत्रम्

इति परमरहस्यं मातृकार्थस्वरूपं
स्फुटतरमुपदिष्टं चक्रराजाभिनीतम्।
लगति यदयमर्थः शक्तिविद्धेऽन्तरङ्गै
न तु पुनरपरत्र प्रत्यवायो (ऽस्ति) न तन्मे।।३३।।

भाषा टीका

श्री चक्र के अभिनीत, मातृका के अर्थ के स्वरूपभूत परम रहस्य का प्रस्तुत सूत्रों में स्पष्टतर उपदेश किया गया है। सूत्रकार का निवेदन है कि शक्ति से अनुविद्ध अन्तरङ्ग में, यदि यह अर्थ लगता है तब मैं स्वयं अथवा अन्य कोई प्रत्यवार का भागी नही है।

गुरु की कृपा से शिवानन्द मुनि ने श्रीमातृकाचक्र-विवेक के पञ्चम खण्ड में इन पदों की रचना की है।

इति श्री स्वतन्त्रानन्दनाथ विरचित श्रीमातृकाचक्रविवेक की शिवानन्द कृत संस्कृत व्याख्या एवं कृष्णानन्द कृत हिन्दी व्याख्या का पञ्चम खण्ड सम्पूर्ण।

पञ्चम खण्डः



(१) अत्रायंश्लोको मूलश्लोकानुपूर्वीसमानप्रायः आदर्श पुस्तके टीकायामधिकमुपलभ्यते।

इति परमरहस्यं मातृकार्थस्वरूपं
स्फुटतरमुपदिष्टं चक्रराजामिनीतम्।
लगति यदयमर्थ्र शक्तिविद्धेऽन्तरङ्गेन
तु पुनरपरत्र प्रत्यवायोऽस्ति तस्मै।।१।।